अजूबा भारत

पूरे विश्व मे भारत सबसे अजूबा, अनोखा, अद्भुत; अनूठा तथा अलौकिक देश है । यहा की धरती, आसमान तथा उसमे विचरण करने वाले प्राणियो का ही वैचित्र्य चकित नहीं करता अपितु जो अदृश्य लोक है वह उससे भी कहीं अधिक चमत्कारी और चकाचौंध देने वाला है । विज्ञान चाहे कितनी ही उथल पुथल मचा दे तब भी जो रहस्यमय है वह अजाना ही रहेगा ।

ऐसी रहस्यमय परतो को जानना, उन्हें खोज निकालना और उन पर विवेचन करना बडा मुश्किल है । मनुष्य स्वय की यह बिसात भी नहीं कि वह इसके लिए समर्थ हो सके । सामर्थ्य जुटाने के लिए उसे उन देव-शक्तियो की शरण मे जाना पडेगा जिनकी यदि कृपा हो गई तो कुछ पा लिया । स्वाभाविक भी है, देवलोक की समृद्धि मनुष्य लोक की कैसे हो सकती है ।

मनुष्य के लिए उसका अपना लोक ही बहुत है । वह उसी को ठीक से देख-समझ नहीं पा रहा है । अन्य जितने भी जो लोक है उन तक मानव की पहुँच सभव भी नहीं है । सभी लोक के प्राणी अपनी-अपनी सीमाओं और मर्यादाओ मे जी रहे हैं । जिसने भी इनका उल्लघन किया उसे वह बडा भारी पडा है ।

लोकजीवन की शक्ति और सामर्थ्य अकूत और अलभ्य है । उसे जितना अधिक खगालेगे उतने ही अजूबेपन के टीम्बे और टीले बढते मिलेंगे । अजूबेपन की जानकारी सबको ही सम्मोहित करती है और उतना ही विस्मय भी देती है । परियो, देव गधर्वो और भूत प्रेतो के किस्से जितना रोमाच देते है उससे कहीं अधिक खडहरो के वैभव और खजानो के किस्से हमे आह्लादित करते है ।

अजूबा '

पूरे विश्व मे भारत स
अद्भुत; अनूठा तथा अलौ
धरती, आसमान तथा उस
प्राणियो का ही वैचित्र्य चा
जो अदृश्य लोक है वह
चमत्कारी और चकाचौंध
चाहे कितनी ही उथल पुथ
रहस्यमय है वह अजाना ही

ऐसी रहस्यमय परता
निकालना और उन पर विवे
है । मनुष्य स्वय की यह
सक लिए समर्थ हो सके ।
उसे उन देव-शक्तियो की
जिनकी यदि कृपा हो गई
स्वाभाविक भी है, देवलोक
की कैसे हो सकती है ।

मनुष्य के लिए उसक
। वह उसी को ठीक से
। अन्य जितन भी जो लं
पहुँच सभव भी नहीं है । स
अपनी सीमाओ और मर्या
भी इनका उल्लघन किया
है ।

लोकजीवन की शक्ति
अलभ्य है । उसे जितना
अजूबेपन के टीम्बे औ
अजूबेपन की जानकारी म
है और उतना ही विस्मय
गधर्वो और भूत प्रेतो के
हैं उससे कहीं अधिक खड
के किस्से हमे आह्लादित

अजूबा भारत

लेखक
डॉ. महेन्द्र भानावत

" राजाराम मोहन राय पुस्तकालय प्रतिष्ठान
कलकत्ता के सौजन्य से प्राप्त "

संघी प्रकाशन
जयपुर 302017

३

पूरे विश्व मे
अद्भुत; अनूठा त
धरती, आसमान
प्राणियों का ही वै
जो अदृश्य लोक
चमत्कारी और च
चाहे कितनी ही
रहस्यमय है वह अ

ऐसी रहस्यम
निकालना और उ
है । मनुष्य स्वय
इसके लिए समर्थ
उसे उन देव-शा
जिनकी यदि कृ
स्वाभाविक भी है,
की कैसे हो सकर्त

मनुष्य के लि
है । वह उसी को
है । अन्य जितने
पहुँच सभव भी न
अपनी सीमाओं अ
भी इनका उल्लघन
है ।

लोकजीवन
अलभ्य है । उसे
अजूबेपन के टी
अजूबेपन की जा
है और उतना ही
गधर्वो और भूत
है उससे कहीं अ
के किस्से हमें अ

प्रकाशक :
विजेन्द्र कुमार संघी
संघी प्रकाशन
सी–177, महावीर मार्ग,
मालवीय नगर, जयपुर – 302017

ISBN 81-87466-19-7

मूल्य 200.00 रुपये
सघी प्रकाशन, जयपुर द्वारा प्रकाशित / प्रथम सस्करण 2002
सर्वाधिकार लेखकाधीन
कम्प्यूटर सैटिंग : **फ्रेण्ड्स कम्प्यूटर्स**
2683, सूरतँवाला बिल्डिग, घी वालो का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर। फोन 562
शीतल प्रिटिग प्रेस, जयपुर मे मुद्रित

AJOOBA BHARAT
By Dr Mahendra Bhanawat **Rs 20**

अनकही

पूरे विश्व में भारत सबसे अजूबा, अनोखा, अद्भुत, अनूठा तथा अलौकिक देश है। यहां की धरती, आसमान तथा उसमें विचरण करने वाले प्राणियों का ही वैचित्र्य चकित नही करता अपितु जो अदृश्य लोक है वह उससे भी कही अधिक चमत्कारी और चकाचौंध देने वाला है। विज्ञान चाहे कितनी ही उथल पुथल मचा दे तब भी जो रहस्यमय है वह अजाना ही रहेगा।

ऐसी रहस्यमय परतों को जानना, उन्हें खोज निकालना और उन पर विवेचन करना बडा मुश्किल है। मनुष्य स्वयं की यह बिसात भी नही कि वह इसके लिए समर्थ हो सके। सामर्थ्य जुटाने के लिए उसे उन देव-शक्तियों की शरण में जाना पडेगा जिनकी यदि कृपा हो गई तो कुछ पा लिया। स्वाभाविक भी है, देवलोक की समृद्धि मनुष्य लोक की कैसे हो सकती है।

मनुष्य के लिए उसका अपना लोक ही बहुत है। वह उसी को ठीक से देख-समझ नही पा रहा है। अन्य जितने भी जो लोक हैं उन तक मानव की पहुँच सभव भी नहीं है। सभी लोक के प्राणी अपनी-अपनी सीमाओ और मर्यादाओ में जी रहे है। जिसने भी इनका उल्लघन किया उसे वह बड़ा भारी पडा है।

लोकजीवन की शक्ति और सामर्थ्य अकूत और अलभ्य है। उसे जितना अधिक खगालेगे उतने ही अजूबेपन के टीम्बे और टीले बढते मिलेंगे। अजूबेपन की जानकारी सबको ही सम्मोहित करती है और उतना ही विस्मय भी देती है। परियों, देव गंधर्वो और भूत प्रेतो के किस्से जितना रोमांच देते हैं उससे कहीं अधिक खडहरो के वैभव और खजानो के किस्से हमें आह्लादित करते हैं।

इस पुस्तक मे दो तरह के आलेख संग्रहीत हैं। एक वे जो लोकजीवन के अध्ययन और अनुभव से निखारे गये है और दूसरे वे जो लोक शक्ति से परे देव शक्ति के सरक्षण, सबल और संवर्धन के प्रतिफल है। यह देव शक्ति भी लोक की ही सवेदनाओं और सरोकारो से रूबरू होती हुई हमारे समक्ष मुखातिब होती है लोक की अनगढ आस्था अटूट विश्वास और अचूक समर्पण से यह देव शक्ति की रक्षा

करती है, सुध लेती है और मगल मागल्य बनाये रखती है ।

मुझे यह शक्ति लोक देवता कल्लाजी के रूप में मेहरबान हुई । कल्लाजी राजस्थान के वीरवर राठौड घराने के बडे बलशाली, बहादुर और रणबंके ऐतिहासिक व्यक्ति थे । उनके वीरोचित निष्काम कार्य ने ही उन्हें लोकजीवन मे लोकदेवता के रूप में प्रतिष्ठित किया ।

अपने अनन्य सेवक सरजुदासजी के साथ लोकदेव कल्लाजी ने मुझे काशी, मथुरा, वृन्दावन, डाकोर, गिरनार, सोमनाथ, मेडता, चित्तौड, देशनोक, मंडोवर, माडू, चित्रकूट, पढरपुर, नासिक, शामलाजी, एलीफेंटा, कन्याकुमारी, उज्जैन, गया, रामेश्वरम् आदि कई स्थानो का भ्रमण कराया और वह अन्तर्दृष्टि दी जिससे मैं वहां के रहस्यमय वैभव-विन्यास को देख सका और उन घटना-तथ्यों एवं कहानी-किस्सों से वाकिफ हो सका जो अब तक न किसी इतिहास के पन्नों पर चढ पाये और न लोकजीवन के ही साक्ष्य बन सके ।

कल्लाजी के सान्निध्य से यह रहस्योद्घाटन भी हुआ कि अकबर के मनसबदार और सेनापति रहे राजा मानसिंह की आत्मा आज भी लोकहितार्थ विचरणशील है । स्वय मानसिंहजी ने मेरी यात्राओं में कई दिव्य जानकारिया देने के लिए अपनी उपस्थिति दी । वे अब कल्लाजी के सेनापति हैं ।

मुझे विश्वास है, ये आलेख सामान्य पाठकों के अलावा समाजविज्ञानियो, नृतत्वशास्त्रियों, इतिहासज्ञो, लोक साहित्य प्रेमियो, पुरातत्व खोजियों तथा मौन साधकों को भी रूचिकर लगेंगे कारण कि उनके लिए भी इनमें वह कुछ मिलेगा जिसकी उन्हें चाह है ।

यह सब अध्ययन, शोधानुसंधान का एक मार्ग आत्माओं के साक्ष्य की ओर भी ले जाता है और यह धारणा विकसित करता है कि अतीत की परते खोलने के लिए देवात्मा-दिव्यात्माओ की जुबानी इतिहास लेखन के पारम्परिक स्रोतों के अलावा एक विशिष्ट स्रोत के रूप मे स्वीकार्य हो जो कि लोकजीवन के लिए तो पाषाण-रेखा है ही ।

अन्त में इस पुस्तक के प्रकाशक भाई वी. के. संघी को हार्दिक धन्यवाद कि जिन्होंने एक माह से भी कम समय में यह सुरूचिपूर्ण प्रकाशन सबके लिए सुलभ कर दिया ।

मकर सक्रान्ति 2002

डॉ. महेन्द्र भानावत

अनुक्रमणिका

1

मूठ

अनिष्टकारी विद्याओं में मूठ एक ऐसी विद्या है जिसका नाम सुनते ही रोम-रोम मरा-मरा हो उठता है। भयावनी अकाल मृत्यु सामने दिखाई देती है इस पापिनी पिशाचिनी का नाम लेना ही नरक जाना है। मूठ मारो या सात पीढी तारो जैसी कहनी से स्पष्ट है कि इसके साथ कितनी घृणा और हेय दृष्टि जुडी हुई है मगर राजस्थान में तो इस मारक विद्या का बडा कोप प्रकोप है। मूठ का बणज करने वाला कभी फला फूला नही है। उसकी मौत कुत्ते से भी गई बीती मौत समझी गई है। वह स्वय ही नही, उसका सारा परिवार कण कण का होता देखा गया है और कहते हैं उसकी सात पीढियों तक इसका कुअसर रहता है फिर भी लोग है कि जो जरा-जरा सी बात पर अपने दुश्मनों को मूठ द्वारा अगत मौत देकर ही दम लेते हैं।

रिद्धि सिद्धि मगल के दाता गणेशजी भी मूठ के पके पकाये खिलाडी थे, आदिवासी भीलों के गवरी नाच का भारत में एक किस्सा आता है कि दशहरे के दिन देवियॉ मानसरोवर मे पाती विसर्जित करने गई तब बेढव डीलडौलधारी गणपत को सोया ही छोड गई। सुबह जब आंख खुली तो गणपत अपने को अकेला पा बडे आग बबुला हुए। उन्होने आव देखा न ताव, वहीं से उडद मंत्र कर फैंके जिससे जाती हुई देवियों के रथ के पहिये पाताल मे जा घुसे और धरूडे आकाश में जा लगे। सारे देवी देवताओ में खलबली मच गई। पचासों उपाय किये मगर रथ टस से मस नहीं हुए तब किस समझे बुझे की शरण ली गई। रथ पर मुट्ठी वारी गई और धारनगर ले जाकर धारिये भील को बताई गई मुट्ठी देखकर धारिये ने देवी अबाव को सारी घटना कह सुनाई। यह कि देव लमालिये में गणपत को अकेला छोड देने के कारण उसी ने मूठ चलाकर यह गडबड किया है। उसे जाकर मनाओं तो ही स्थिति पूर्ववत् हो सकेगी। यही हुआ। देवी ने गणपत को मनाते हुए कहा कि आगे से जो भी नया शुभ कार्य किया जायगा, सबसे पहले तुम्हारी मानता होगी। तब जाकर गणपत ने अपनी मूठ वापस झेली और अब हर नये शुभ कार्य पर विघ्नहरण के लिये लबोदर गणराज को पाट बिठाया जाता है

मूठ कई प्रकार की होती है। मोतीरामबा ने अपने उस्ताद से इसके तीन सौ साठ प्रकार सुने थे। मानजीबा ने तो इसे पोप विद्या कह कर भी इसके अतिरिक्त को कई किस्सो मे कह दिया। बोले कि मूठ यूं तो हवा का गोटा है जिस पर फेंको उस पर हनुमानजी के गोटे की तरह असर करती है।

आषाढ माह मे मूर्दे की खोपडी को जमीन में गाडकर उसमें उडद बोये जाते है और जब जो उडद तैयार होते है उन्हे मंत्र द्वारा पकाया जाता है, उडद के अलावा मक्कई, ज्वार, मूग के दानों को भी मूठ के लिये साधते है पर उडद ज्यादा असरकारी समझे जाते है। एक व्यक्ति ने तो मुझे कंकडियों के माध्यम से मूठ का एलम पकाने की बात बताई।

उसने कहा कि कलाल जाति के किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर रात को बारह बजे उसके सिरहाने खडे होकर एक मंतर पढते जाओ, एक कंकरी छोड़ते जाओ, इस प्रकार एक सौ आठ बार मंतर पढकर एक सौ आठ कांकरिया साध ली जाती है, यह जल्दी-जल्दी में मत्र कुछ इस तरह बोल गया -

ॐ हडुमान हठीला/दे वज्र का ताला/
तो हो गया उजाला/हिन्दू का देव/
मुसमान का पीर/वो चलै अनरथ/
रैण का चलै/ वो चलै पाछली रैण को चलै/
जा बैठे वेरी की खाट/दूसरी घडी/
तीसरी ताली वैरी की खाट मसाण में/

मैने जब उसे ठीक से पूरा मत्र बोलने को कहा तो उसने कहा कि मंतर बताने का नही होता। जो कुछ उसने बताया वह भी गलती कर गया।

कलाकार रमेश ने बताया कि एक मूठ यह बोलकर भी साधी जाती है -

डकणी बांधूं सकणी बांधूं चलती बांधूं मूठ।
दुसमण की बत्तीसी बाधू पडे कालजो टूट॥

मूठ श्मशान जगाकर, निर्जनवन में प्राय: बबूल वृक्ष के नीचे, कंठ तक पानी में डूबकर, उल्टी घट्टी चलाकर भी साधी जाती है। इन सबमें नग्न साधना आवश्यक है। यह प्राय: नवरात्रा में या फिर धनतेरस, रूपचवदस तथा दीवाली की काली रातों में पकाई जाती है। भैंसा, बकरा तथा मुर्गे का रक्त भी इसके लिये अनिवार्य है।

एक मूठ तो वह होती है जो तीसरी ताली में सारा काम तमाम कर देती है और

एक मूठ वह जो मियादी होती है । इसमे तीन घटे से लेकर तीन दिन, तीन महीने, तीन वर्ष जेसा समय होता है । इन मूठों में जहा कंकड, मूंग, मोठ के दाने चलते हैं वहां मात्र शब्द भी चलते हैं । देवेन्द्र मुनि शास्त्री ने बताया कि अहमदाबाद मे मुनि जेठमल और यति वीरविजय के बीच शास्त्रार्थ चला तो जेठमल मुनि पर एक-एक कर बावन मूठ आई । जैन साधु होने के कारण मुनिजी किसी अन्य पर उसका प्रहार नहीं चाहते थे अत. उन्होने बावन ही मूठ किवाड पर झेलली जिससे उस पर बावन छेद हो गये । देवेन्द्र मुनि ने बताया कि ग्रंथो में पेशाब पीकर तथा शौच जाते हुए मूठ साधने के उल्लेख मिलते है । सचमुच में यह असुर साधना है । मूठ ततर, मतर, जंतर तीनो है । मूठ फैकने वाला मूठ को झेलने, थामने, ठहरा देने तथा वापस करने का भी जानकार होता है ।

मूठ सिक्खड सर्वप्रथम वृक्षों पर अपना प्रयोग करते है । ऐसी स्थिति में जब मूठ डालने पर लहलहाता वृक्ष सूखकर कांटा बन जाय और पुन: कांटा बना वृक्ष लहलहाने लग जाये तो समझ लिया जाता है कि मूठ की सार्थक पकाई हो गई है तब मनुष्यो पर इसका प्रयोग प्रारभ कर दिया जाता है । मेवाड का आमेट क्षेत्र तथा पाली का चामुण्डेरी, नाणा एवं जालोर का सियाणा, बागरा क्षेत्र मूठ का बडा प्रभावी क्षेत्र रहा है । आदिवासियों मे इसका प्रचलन सर्वाधिक मिलता है । इनमें आम तथा महुवा जैसे वृक्षों पर खूब मूठ मारी जाती है जो इन आदिवासियों की आजीविका के मूलाधार है ।

ये आदिवासी मूठ बाधने में बड़े तगड़े होते है । फसल पकने पर अपने पूरे खेत को ऐसा बांध देते है कि कोई भी फसल को नुकसान नही पहुँचा सकता । यदि कोई खेत मे घुस जायेगा तो वह वहीं घूमने लग जायेगा और वहां से भागता बनेगा । इसी प्रकार गन्ने का रस उकलते गुड के कढाव बाध दिये जाते हैं । बकरे का लौह करने जाते वक्त तलवार बाध दी जाती है । और तो और शराब की भट्टी तक बांध दी जाती है जिससे लाख प्रयत्न करने पर भी शराब की एक बूंद नहीं बन सकती ।

मनोविनोद के सार्वजनिक अवसरों-सस्कारों पर भी मूठ का प्रयोग बहुतायत में देखा गया है । भीलों के सुप्रसिद्ध गवरी नाव में जब सारे गांव के भील मिलकर अपने आदि देव महादेव शंकर को रिझाने के लिये सवा महीने की गवरी लेते है तो उसे जादू टोना तंतर मंतर मूठ आदि सर्वनाश से बचाने के लिये किसी होशियार मादलिये की खोज करते है । मादलवादक ही ऐसा जानकार होता है जो समग्र गवरी की रक्षा करता है । अच्छे जानकार मादलिये के अभाव मे गवरी ली ही नही जायेगी ।

डालू भील ने बताया कि गवरी में अक्सर कर भियावड़ गोमा नट

बूडिया तथा राइयों पर मूठ फैकी जाती है । मादल बजाने वाला मादलिया गवरी प्रदर्शन के दौरान बडा सचेत रहता है और मूठ आदि को झेल कर, कभी कभी जैसी आई वैसी थाम कर अभिनेताओ की रक्षा करता है । एक बार की गवरी में जब बणजारे का अभिनय चरम सीमा पर था कि मादलिये ने बिना किसी खेल के व्यवधान के अपने पास म पडे एक जूते को त्रिशूल के ऊपर ठहरा दिया । जूता बिना किसी सहारे के अपने आप चक्कर खाता रहा । गवरी का खेल भी यथावत चलता रहा । बाद में पता चला कि बणजारे पर किसी ने मूठ फैकी थी जिसे मादलवादक ने जूते के सहारे थाम ली । यह मादलिया अपने साथ एक लाल झोली रखता है जिसमें कुछ नींबू मतरे हुए पड़े रहते हैं । गवरी में नाचने वाले लोगर ने बताया कि दो वर्ष पूर्व भारतीय लोक कला मंडल में काम करने वाला कलाकार गोपाल गवरी में बणजारे का साग करते मारा गया जिस पर किसी ने मूठ की थी । यही नही नाथद्वारा के पास थोरा घाटा में रम रही सम्पूर्ण गवरी ही मूठ की ऐसी शिकार हुई कि वहीं की वहीं ढेर हो गई । जहा सभी खेल करने वाले खेल्ये मरे वहां उन सबके स्मारक के रूप में पत्थर के पूर्वज बिठा रखे हैं जो उस घटना को ताजी किये है । यह गवरी भवानी माता की भागल गाव की थी ।

पुतलो के रूप मे मूठ के भी कई अजीब करिश्मे देखने सुनने को मिलते है । इस प्रकार की मूठ मे जिस व्यक्ति को मौत देनी होती है उसके नाम का पुतला बनाया जाता है । यह पुतला आटे का, नमक का, मिट्टी का अथवा कपडे का बना होता है और इसे मतर कर किसी कुए बावड़ी मे या जमीन में डाल दिया जाता है । ज्यों-ज्यों यह पुतला घुलता रहता है त्यो-त्यो मूठ किया व्यक्ति क्षीण होता रहता है और अन्त में यदि किसी समझे-बुझे से पुख्ता इलाज नही करवाया गया तो उसे मृत्यु की शरण लेनी पड़ती है । इन पुतलों मे जगह-जगह पिनें भी लगाई जाती है । इसका आशय यह होता है कि जिस-जिस स्थान पर पिन लगाई गई है, मूठकारी व्यक्ति का वह-वह स्थान बड़े कष्टो से गिरा रहता है और ऐसा दर्द होता है जैसे किसी ने एक साथ हजारों पिने चुभो दी हों ।

पुतलो की तरह ऐसे ही प्रयोग पिनें चुभे नीबू को लेकर किये जाते हैं । युवा पत्रकार श्री ब्रिजमोहन गोयल ने अपने जन्म स्थान फालना का किस्सा सुनाते हुए कहा कि एक बार वहां के रकबा मोची और उसकी एक महिला रिश्तेदार के बीच बडी जोर की तनातनी हो गई तब उसकी रिश्तेदार महिला ने उससे कह दिया कि यदि सात दिन के अन्दर-अन्दर तेरे को नही देख लिया तो अपने बाप की असली मूत नहीं । रकबा के दिमाग से यह बात आई गई हो गई मगर सातवें ही दिन जब वह अपनी दुकान में बैठा

गोयल से स्वस्थ चित्त मन बात कर रहा था कि अचानक मुँह के बल गिरा, पेशाब छूटा और स्वांस निकाल दी । बाद में गोयल ने वहा एक नीबू पडा देखा जिसके सात पिने लगी हुई थी मगर वह नीबू कहां से कैसे वहा आया, अब तक एक पहेली बना हुआ है । लोग-बाग आज भी कहते सुने जाते हैं कि रकबा को उस महिला ने मूठ से मरवा दिया ।

कभी-कभी आपस मे बडी जोर की अदावदी हो जाती है तब एक पक्ष दूसरे को मूठ से मरवाने का खुला निमंत्रण दे बैठता है । ऐसा ही एक निमत्रण आज से कोई पैंतालीस वर्ष पूर्व नागौर जिले के डोडियाना गांव में जेठमल दरजी को दिया गया । कहा गया कि फला दिन सुबह तुम्हारे घर पर मूठ आयेगी - हिम्मत हो तो उसका मुकाबला करना । उसी दिन सुबह ठीक साढे आठ बजे जेठमल के घर से धुआ उठा । धुंआ उठते ही सारा गाव उलट पडा और अपने-अपने घरों तथा बावडियों से पानी ला-लाकर मकान को भस्म होते बचाया । यह अच्छा हुआ कि केवल मकान जल पाया, कोई आदमी मरा नहीं । बाद में वहां से कपडे का एक पुतला निकला जिसमें पिनें लगी हुई थी । डॉ. नेमनारायण जोशी ने अपने गांव की यह घटना सुनाते हुए कहा कि समझे-बुझे ऐसे आदमी भी देखे गये हैं जो हाथ की पाचों ऊगलियों की पांचो नाडियो को देखकर बीमारी का पता लगा लेते हैं । कहते हैं कि अगूठे और उसके पास वाली ऊगली की नाडी यदि नहीं चलती है तो सुबा हो जाता है कि किसी ने कोई कला कर दी है यानी मूठ फैंकी है या कि वीर चलाया है या सिकोतरी-सिकोतरा किया है ।

यह मूठ पुरूष ही चलाते फेंकते हैं, कहीं नहीं सुना कि औरतें भी मूठ फैंकती हों । लेकिन औरतों में एक अलग प्रकार है माईजी का जो मूठ का भी बाप कहा जाता है । यह पशुओं को यदि लग जाय तो उनका वहीं कलेजा निकल जाये । भोमट के प्रत्येक आदिवासी परिवार में सिकोतरी साधा व्यक्ति मिलेगा । यह उनके घर की रक्षिका है । यदि कोई पशु आदि चोर ले गया तो यह उसकी प्राप्ति कराकर ही रहेगी । दीवाली की काली रात को कई लोग उल्लू वश में करने की कठोर साधना करते हैं । कहते हैं यह बडी मुश्किल से वश में होता है । यदि वश में आ गया तब तो जो चाहो सो पाओ पर यदि विपरीत स्थिति पैदा हो गई तो सिवाय अपनी जान गॅवाने के और कोई चारा नही । उदयपुर के पास कुडाल गाव के एक डांगी ने चार उल्लू इसी दृष्टि से पाले मगर उल्लू उसके वश में नहीं हो सके उल्टा डागी ही उल्लूओं द्वारा मार दिया गया ।



2

भूतों का मेला

राजस्थान में एक से एक बढ़ चढ़कर कई दुर्ग हैं मगर 'गढ तो चित्तौड़गढ और सब गढैया' ही कहे जा सकते हैं। चित्तौड़ कई बार जाना हुआ। कभी ग्राम्य मनोरंजन के सूर्य की पहली किरण तक रात-रात भर खेले जाने वाले तुर्रा ख्यालों के उस्ताद चैनराम से मिलने तो कभी बहुरूपियो की स्वांग-झांकियों के सिलसिले में। बस्सी गाव भी इसी के पास स्थित है जहा की काष्ठकला-कठपुतलियां और कावड़ों ने विदेशियों तक को प्रभावित कर रखा है। चित्तौड के छीपे भी बड़े प्रसिद्ध हैं जो कपड़ों पर पुरानी चाल की छपाई करने मे करीगर उस्ताद है। चित्तौड का किला तो बडा जोर जबर्दस्त है ही। यहा का प्रत्येक कण अपने आप में इतिहास शौर्य का जीता जागता दस्तावेज है किन्तु उतना ही अब मौन शान्त गुपचुप। चाहिये उसे कोई जगाने वाला। जो कुछ यहा सुनने-पढ़ने को मिलता है वह तो 'कुछ नही-कुछ नहीं' है। यहीं लोगों के मुह से सुना कि हर दीवाली भूतों का बड़ा भव्य मेला लगता है। जानने को तो सारा चित्तौड जानता है यह बात। आसपास के इलाके भी जानते है मगर देखा किसी ने नही।

यह देखा मैंने। पहली बार एक देहधारी मनुष्य ने, लोकदेवता कल्लाजी की दिव्यात्मा ने अपने सेवक सरजुदासजी के शरीर में प्रविष्ट हो मेरे अन्तर्चक्षु खोले और 15 नवम्बर 1982 की दीवाली को इस अद्भुत, अलौकिक एव अविस्मरणीय मेले का साक्षात्कार कराया। इस साल दो दीवाली पड़ी। यह मेला भी दोनों दीवाली को भरा।

दीवाली के एक दिन पूर्व, रूप चवदस को ही मैं सरजुदासजी के साथ चित्तौडगढ पहुच गया। वहा अन्नपूर्णा माता के मन्दिर में हमारे ठहरने की व्यवस्था हो गई। रात को दस बजे करीब हम सोने को ही थे कि अचानक सरजुदासजी के शरीर में सेनापति मानसिह का भाव आया। नीची बन्द आखें किये बडे नपेतुले शब्दो में वे बोले - 'मुझे दो दिन पहले भेजा है सारी व्यवस्था के लिए। दस हजार सैनिक जगह-जगह नाकेबदी कर खडे हैं आप लोग जब तक यहा रहेंगे तब तक वे आपकी रक्षा के लिए यहीं रहेंगे

दुनियां ने मुझे नमकहराम कहा पर मै नमक को कभी नही भूला । बडे-बडे राजा हमारे पीछे थरथराते थे । कोई नही जानता कि दुश्मन के घर रह हमने खाया पीया मगर काम अपना किया ।'

'यह जय चित्तौड है । यहां बडी-बडी सतिया हुई है । यह एक ऐसी धरती है जिसे जब-जब भी प्यास लगी, इसने पानी के बजाय खून लिया है । इस मेले मे सभी तरह के लोग आयेंगे । अच्छे भी होंगे और बुरे भी । जो कुछ देखें मन में रखें ।'

मैने विनीत भाव से उनकी यह बात सुनी और 'हुकम-हुकम' कहा । अपनी इस बात के दौरान उन्होने बार-बार 'दुनिया के बेटे' और 'जय विश्वम्भर' शब्द का उच्चारण किया । यह सब कहकर, हमे सावचेत कर, भलावण देकर मानसिह जी चले गये पर रात को जब-जब भी मेरी नीद खुली, मैंने पाया कि मानसिहजी उस पूरी रात सारी व्यवस्था ही करते रहे । कभी मैने सुना वे निर्भयसिहजी को बुलाकर आवश्यक निर्देश दे रहे है तो कभी सिणगारी-बाई से बातचीत कर रहे है कि सारी व्यवस्था देख लेना । यह कर लेना, वह कर लेना । वे कइयों के नाम लेते जा रहे है और फटाफट निर्देश देते जा रहे हैं ।

दीवाली के दिन, दिनभर मैने शिवमन्दिर और उसके अहाते में बने महल मे मीरा बाई का निवास देखा । महल के सामने मीरां की दोनों दासियों के खडहर-चबूतरे देखे । पास में बना भोजगज का महल देखा । गोमुख देखा और जौहर कुंड देखा । उधर लाखोटिया बारी का वह लम्बा फैला परिक्षेत्र देखा । वह स्थान देखा जहा जयमलजी रात को टूटी हुई दीवाल ठीक करा रहे थे कि धोखे से अकबर ने अपनी 'संग्राम' नामक बन्दूक का उन्हे निशाना बनाया । उनकी टाग में गोली लगी । वे जिस चट्टान पर जाकर सोये वहा अभी भी खून गिरा हुआ है । मेरे साथ सरजुदासजी कम, कल्लाजी अधिक रहे । जब-जब भी उन्हे किसी स्थान के सम्बन्ध मे किस्से, बीती घटना, इतिहास और उससे जुडे प्रसग बताने होते वे सरजुदासजी मे साक्षात हो आते और एक-एक कण-कण का विस्तृत हाल बता जाते, रोमांचित कर जाते । उनके जाने के बाद मुझे वे सारी चीजें सरजुदासजी को बतानी पडती कारण कि तब सरजुदासजी नहीं होते कल्लाजी होते । मीरां के सम्बन्ध मे तो कई चौकानेवाली बातें बतायी । उसका तो सारा इतिहास ही अलग है । वह फिर कभी कहा जायेगा ।

शाम को 7 बजे करीब मैं और सरजुदासजी मेले के लिए अन्नपूर्णामाता के मन्दिर से चले, साथ में मिठाई, नमकीन, धार (शराब), गूगल, अतर, अगरबत्ती, अमल, ककू, केसर, चांवल, रोली, पानी, हुक्का, गुड मिश्रित गेहू की घूघरी, (बाकला) आदि लिया ताकि मेले मे आये सुगरे नुगरे देवताओ को राजी कर सकें । मंदिर के अपने कमरे से बाहर आकर सर्वप्रथम हमने सबको नूता न्यौता दिया कहा 'जितने भी देवी देवता

पीर पैगम्बर शूर सती हैं, सब मेले मे पधारजो, हम आपको नूतने आये हैं । हमें और कुछ नहीं चाहिये, केवल आपके दरसन करने आये हैं ।'

हम कालिका मन्दिर के सामने जाकर बैठ गये ओर एक बिछात पर सारा सामान तरतीबवार रख दिया । अधेरा घना बढता जा रहा था । कोई आवागमन नही था । लगभग साढे आठ बजे तक हम चुपचाप बैठे रहे और प्रतीक्षा ही करते रहे । इस बीच कभी कोई जोर की आवाज आती, कभी जोरों का कोई प्रकाशबिब आता दिखाई देता । कभी हवा जोर की सन्नाटेवाली लगती और कभी बिल्कुल शांत । कभी किसी स्थान विशेष पर लगता कि आदमियों का जुडाव है तो कभी पास दूर महल-खण्डहरों मे चहलपहल होने का अहसास होता । हम ऑखे फाड-फाड़ कर दूर नजदीक अपने आसपास चारों ओर देखते । मुझे लगता जैसे कोई पुष्पक विमान आया और पुन- लोप हो गया ।

लगभग साढे नौ बजे अचानक मानसिंह जी आये और बोले - 'जल्दी करो, अपना सामान समेटो, सब इधर ही आने वाले है, दो दीवाली होने के कारण इस दीवाली पर नुगरे (बुरे) ही अधिक आये हैं मगर आप डरें नही । मै आपके साथ रहूंगा ।' सारा सामान समेटने में मुझे कोई समय नहीं लगा और मैं चल पडा उनके साथ । ऐसा लग रहा था कि किसी बडी भीड़ मे मैं जा फंसा हू । जैसे जानवर भडक गये हों और बेरोकटोक भाग रहे हों ऐसे भूतप्रेत भागे जा रहे थे धक्कामुक्की करते । भीड भरे मेलों में जो स्थिति होती है वैसी ही मेरी होती रही मगर उसी तेजी से मानसिंह जी कभी बाकले लुटाते, कभी मिठाई, कभी धार देते । पूरे रास्ते हम त्वरा से बढते रहे । बीच राह पर एक जगह मुझे उन्होंने रोक दिया । सामने देखा, पत्ता महल के पास वाले तालाब में घुड़सवार के रूप में जयमलजी की आकृति । एक तेज प्रकाशपुंज । पृष्ठभूमि में घना काला अंधेरा । काफी देर तक मैं उस दिव्यात्मा के दर्शन करता रहा । बडा आत्मीय सुख मिला । जब तक मेरा मन भरा नहीं तब तक वह दिव्य आत्मा मेरे सम्मुख बराबर बनी रही । इसी फत्ता महल के आसपास डेरे डले हुए थे । तम्बू लगे हुए थे । थोडी देर बाद पत्ता महल से जोर-जोर की आवाज आई । मुझे सावचेत किया गया । मैंने देखा, महल के बीचों बीच ठेठ भीतर तक वैसा ही एक प्रकाशपुज कुछ अधिक तेजोमय दिखा आकृति विहीन यह दाताजी कृष्ण की छवि थी, इसके पश्चात एक अपेक्षाकृत छोटी दिव्याकृति और दिखाई दी । यह कुभाजी की थी । एक विराट आदमकद आकृति ।

यह सब कुछ दस ही मिनट का खेल रहा होगा । कालिका मन्दिर से मोती बाजार तक की कोलतार से बनी पक्की सडक हमने कैसे नापी कुछ पता नहीं चला । पता चला कि इतनी मिठाई और नमकीन और बाकले मुट्ठी भर भर डाले बिखेरे पर धरती पर

इनका एक कण तक नही गिरा । धार की बोतल खाली की मगर कोई बू तक नहीं आई । अत में बोतल फैक दी पर उसकी कोई आवाज नही सुनाई दी । रास्ते मे एक क्षण को मुझे लगा कि जैसे मैं भी हवा में बह गया हूँ पर दूसरे ही क्षण मैं अपनी सही स्थिति मे आ गया । मोती वाजार पहुंचते-पहुचते एक ट्रक सामने आती हुई मिली । मानसिंहजी ने बताया कि ट्रक में बैठे आदमियो में से दो भूतों की झपट में आ जायेंगे । सुबह सुन लेना कि दो के कलेजे चले गये ।

इस बार मुख्य दरबार जुडा कुभा महल मे । वैसे प्रतिवर्ष पद्मिनी महल में जाजम बिछती है । आम दरबार जुडता है वैसा ही जैसा चित्तौड़ में राणाओं के समय जुडता रहा । एक-एक पंक्ति में 6-6 बैठके रहती है । सब अपनी-अपनी जगह, अपनी हैसियत के अनुसार बैठते हैं । सरदार, उमराव, ठाकुर, महाराणी, ठुकराणी, दास, दासी, नौकर, चाकर सब उसी तरह के ठाठ । सारा राजसी रग ढ़ंग । यह मेला भरता है दो-ढाई घटे के लिये । वे ही सब दुकानें जो तब लगा करती थीं । अकाल मृत्यु में जो खो गये उन सबका मिलन मेला है यह । इस मेले में सबसे ज्यादा मिठाइया बिकती है । भेष बदल-बदल कर आदमी वेश में ये लोग जाते हैं और मणों बंध मिठाइया खरीद लाते हैं ।

चित्तौड के किले पर कुल सत्रह जौहर हुए । तीसरे जौहर के बाद संवत् 1702 मे यह अदृश्य मेला प्रारम्भ हुआ । अकाल मृत्यु प्राप्त कर जो जीव इधर-उधर भटक गये उनसे आपसी मेल-मिलाप हेतु प्रतिवर्ष दीवाली को इसका आयोजन रखा गया । कई राजपूतों के बालक मुसलमानों के हाथो चले गये जो मुसलमान बना दिये गये परन्तु उनकी खांपें मुसलमानों में अभी भी उनकी साक्षी है । चुहाण, सिसोदिया, राठौड, डोड्या ये सब खापें राजपूतों की है जो आज मुसलमानों में भी पाई जाती हैं । इन खापो के लोग मूलत: राजपूत रहे है । सांईदास, ईसरदास और वीसमसिंह तो बडे जबरे वीर थे । इन तीनों ने मिल कर 50 हजार दुश्मनों का सफाया कर दिया । एक ही तलवार से साढे तीन सौ का खेल खत्म कर दिया । जयमलजी तो सारे युद्ध का सचालन करते थे । उन जैसा युद्धवीर रणबाज दूसरा नही हुआ । उनमें दस हाथियो जितना बल था ।

चित्तौड की चप्पा-चप्पा भूमि की अखूट गौरव गाथा हैं । मेरे लिये तो सबसे बडी यही उपलब्धि रही कि मैं इस अदृश्य मेले के अलौकिक रहस्य को अपना दृश्य बना सका, अपनी दृष्टि दे सका । यह मेला मेरे लिये तो गूगे का गुड ही बना हुआ है । कल्लाजी बावजी ने यह कृपा केवल मेरे पर की तो मैने यह ठीक समझा कि इसका जायजा वे लोग भी ले जो कभी इसे साक्षात् सम्भव हुआ नहीं मान सकेंगे, केवल सुन अवश्य सकेंगे - जब जब भी वे चित्तौड आयेंगे कि यहां प्रतिवर्ष भूतों का मेला दीवाली की गहन रात को लगता है परन्तु जिसका कोई साक्षी नहीं हो सकता



3

कूंडा एवं ऊंदर्‌या पंथ

हमारे देश मे प्रचलित धार्मिक-अध्यात्मिक पंथों में कांचलिया अथवा कूंडा एवं ऊंदर्‌या पंथ ऐसे विचित्र, अद्‌भुत और अनूठे पथ हैं जिनकी तुलना किसी दूसरे पंथ से नहीं की जा सकती ।

कूंडा पथ :

इसे बीसनामी पथ के नाम से भी जाना जाता है । लोकपुरुष रामदेवजी इसके मूल उपजीव्य रहे है । अछूतो एव पतितों के उद्धारक के रूप में रामदेव जी की लोक कल्याणकारी सेवाये बडी उल्लेखनीय रही है । रामदेवजी बडे अच्छे भजनी थे । अच्छे गायक के साथ-साथ अच्छे तन्दूरा-मजीरा वादक भी थे । उनकी वाणी का विचित्र व्यापक प्रभाव था । वे जहां भी जाते, सबको सदैव के लिए अपना बना लेते । वे जहां भी बैठते, कीर्तनियों-भजनियों का अपार समूह उमड पड़ता । सभी लोक भजनभाव में तल्लीन हो जाते और रात-रात भर अलख-आनन्द की बरसात होती रहती । इस भजन संगत में दूसरे सत भक्त-साधकों के साथ-साथ स्वय अपने भजन रचते रहते और भक्त लोग बडी तन्मयता के साथ उनकी वाणी को विस्तार देते रहते । रामदेवजी के ये भजन मुख्यत: 'परवाण' कहलाते है । ये परवाण भजनो के ही अनुरूप होते हैं, फर्क केवल इतना ही रहता है कि ये भजन थोडे बडे होते है । इनका गायन भजनों के अंत मे होता है । आज भी कूडापंथी लोग अपने भजनो के अन्त में रामदेवजी के परवाणों का उच्चारण कर श्रद्धाभिभूत हो उठते है ।

रामदेवजी के भक्त-भजनियों में जरगा नामक भजनी उनका प्रमुख चेला था । यह जाति से बलाई था जो आगे जाकर उनके घोडे का चरवादार नब कर रामदेवजी की चरण-सेवा में रहा । प्रसिद्धि है कि एक बार रामदेवजी जरगा के साथ कहीं परचा देने जा रहे थे । देर रात हो जाने के कारण रामदेवजी जरगा तथा घोडे को एक स्थान पर छोडकर शीघ्र ही लौट आने को कह कर अकेले ही परचा देने चले गये रामदेवजी परचा तो दे

आये परन्तु जरगे की स्मृति उन्हें नही रही और वे कही अन्यत्र जन-कल्याणार्थ निकल गये। रामदेवजी की आज्ञा से जरगा और घोडा खडे के खडे रहे तो निर्जीव हो गये। बाद मे रामदेवजी को अचानक जब जरगे की याद आई तो वे तत्काल उस स्थान पर पहुंचे। देखा तो जरगा व घोडा दोनों सूखे काठ बने हुए है। उन्होने अपने आलम से दोनो को सरजीवित किया और जरगे को वचन मांगने को कहा। जरगे ने कहा कि मैं और कुछ नही चाहता, केवल यही चाहता हूं कि आपके साथ-साथ मेरा नाम भी अमर रहे। रामदेवजी ने कहा कि इसी स्थान पर प्रतिवर्ष तुम्हारे नाम से मेला लगा करेगा। इस मेले में नाम तो तुम्हारा रहेगा परन्तु धाम मेरी चलेगी। तब से वह स्थान और मेला जरगा के नाम से लोकप्रिय हुआ।

जरगाजी का मेला उदयपुर से 35 किलोमीटर गोगुन्दा के पास शिवरात्रि को लगता है। इस मेले में रामदेवजी के भक्त कामड, बलाई, रेगर, चमार, मेघवाल, मोग्या आदि अधिकाधिक संख्या में एकत्रित होते हैं। रात्रि जागरण के रूप में इस दिन रात-रातभर भजन भाव होते हैं। बहुत से श्रद्धालु रामदेवजी की मनौती के रूप में कामड़ लोगो से झमा दिलवाते हैं और उनकी महिलाओं से तेराताली के प्रदर्शन करवाते हैं। कामड औरतें रामदेवजी की उपासना में ही अपने शरीर पर तेरह मजीरे बाधकर तेराताली के प्रदर्शन में तेरह प्रकार के विशिष्ट साधनापरक हावभाव व्यक्त करती हैं। इसी जरगाजी मे काचलिया पथ की खास धूणी है। कालान्तर में रामदेवजी के इन्हीं भक्त भजनियों ने कांचलिया पंथ का शुभारम्भ किया।

अकेला पुरूष और अकेली स्त्री इस पथ के सदस्य नहीं हो सकते। पति-पत्नी सम्मिलित रूप से इसके सदस्य बनते हैं। इसका अपना एक गुरू होता है। जब कभी इसकी संगत बिठानी होती है, गुरू के आदेश पर कोटवाल द्वारा सदस्यो को सूचना पहुचवा दी जाती है। रात्रि को लगभग दस बजे सभी लोग निश्चित स्थान पर एकत्र होते है। यह स्थान किसी सदस्य विशेष का घर अथवा कोई एकान्त स्थान होता है। आयोजक सदस्य की ओर से इस सगत का समस्त खर्च वहन किया जाता है। वही सभी सदस्यों के लिये चूरमा बाटी के भोजन की सामग्री जुटाता है। सदस्य लोग ही यह भोजन तैयार करते हैं और सामूहिक रूप से धूप ध्यान कर भोजन करते है।

मुख्य स्थल पर जहा इसका आयोजन किया जाता है, पाट पूरा जाता है। इसके लिए सवा हाथ के करीब कपडा जमीन पर बिछा दिया जाता है। यह कपडा सफेद होता है। इसके ऊपर लाल कपडा बिछाया जाता है। इसके चारों किनारों पर पचमेवा-खारक, बादाम, दाख, पिश्ता तथा मिश्री रख दिया जाता है। कपडे के बीच में सातिया,

ऊपर एक तरफ चाद तथा दूसरी तरफ सूरज तथा दोनों के बीच रामदेवजी का घोड़ा तथा नीचे बीच मे रामदेवजी के पगल्ये तथा दोनो ओर पाच पाच गाप माड जात है सातिये पर कलश स्थापित कर दिया जाता है। इस कलश पर जोत कर दी जाती है। पाट पूजने की इस क्रिया मे सवा सेर चावल लिये जाते हैं। इस पाट के पास के वेलू मे सूखे खोपरे की धूप लगा दी जाती है।

लगभग दो बजे तक भजनभाव होते रहते है। भजन समाप्ति के बाद गुरु के निर्देशानुसार सभी औरतें अपनी-अपनी कांचलियां खोलकर कोटवाल को देती हैं। कोटवाल इन कांचलियों को कलश के पास रखे हुए मिट्टी के कूडे में डाल देता है। पाट पर रखे हुए चावलो में से गुरू मन में धारे व्यक्ति को, कूंडे में पडी हुई काचलियों में से एक काचली निकालने पर जिस औरत की कांचली हाथ में आ जाती है उसके साथ भोग के लिए, निर्देश देता है। दोनो स्त्री-पुरूष कलश के पास डाले गये पर्दे के पीछे जाकर भोग करते है। भोग स्वरूप वीर्य को स्त्री अपने हाथ में लेकर आती है और गुरु के त्रहा रखे पात्र में डाल देती है।

इस प्रकार बारी-बारी से गुरू सादके धीरता रहता है और काचली उठा-उठाकर स्त्री-पुरूष को भोग के लिये आज्ञा प्रदान करता रहता है। गुरू द्वारा धारे पांच की संख्या वाले सादके (आखे) 'मोती' कहलाते हैं। पाच से कम ज्यादा की सख्या वाले सादके 'जोडे' कहलाते हैं। सादकों की यह संख्या आने पर पुन: पाट रख दिया जाता है। जब सबकी बारी पूरी हो जाती है तो जितना भी वीर्य एकत्र होता है उसमें मिश्री मिला दी जाती है और सभी सदस्यों को प्रसाद के रूप में दे दिया जाता है। मिश्री मिश्रित वीर्य का यह प्रसाद 'वाणी' कहलाता है। कोटवाल द्वारा प्रसाद देने की क्रिया 'वाणी फेरना' कहलाता है। पंच मेवे का प्रसाद 'भाव' नाम से जाना जाता है। प्रसाद देते समय लेने वाले और देने वाले के बीच सवाल-जवाब के रूप मे जो कडावे बोले जाते हैं वे इस प्रकार हैं -

हुकम, हडूमान को, आग्या, ईश्वर की; दुवो, चारी, चारी जुग में हुवो; चोकी, हिंगलाज की; परमाण, सत चढै निरवाण; थेगो, अलख रा घर देखो।

इस समय लगभग प्रात: हो जाता है तब सब लोग अपने-अपने घर की राह लेते है।

संभोग की ऐसी मर्यादित स्वच्छता-स्वच्छदता एक और रूप में भी इन बीसनामी पथियों में देखने को मिलती है। यही गुरू, जब इनमें से किसी का मेहमान होता है तो वह सदस्य अपने आपको धनभाग समझता है और अपनी पत्नी को संभोग के लिए गुरू के

पास भेजता है । सभोग क्रिया के पश्चात् पत्नी अपने हाथ में जो वीर्य लाती है उसे प्रसाद के रूप मे परिवार के छोटे-बडे सभी सदस्य स्वीकार करते है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यह पंथ रामदेवजी की ही आराधना का एक विशिष्ट रूप है । रामदेवजी के भक्तो का ही इसका सदस्य होना, पाट पूरना, भजनभाव, कलश स्थापना तथा जोत आदि सभी रामदेवजी की स्मृति उपासना के प्रतीक है । काचली और कूडे से सम्बन्धित जो क्रिया-प्रक्रियाएँ है वे मूलत: किस बात की सकेतक है इस ओर गहरे अध्ययन एव अनुसंधान की आवश्यकता है ।

चोली पूजन :

चोली पूजन नाम से इसी से मिलती-जुलती प्रथा मध्यप्रदेश के सीहोर जिले की काछी, टीमर, मछुए आदि पिछडी जातियों मे प्रचलित है । कहते हैं इस जाति के अनेक व्यक्ति अघोर तंत्र में बडी आस्था रखते हैं और इसीलिए मांस, मदिरा और महिला द्वारा तत्र साधना करते है ।

तत्र की यह साधना चोली पूजन कहलाती है । देवीकृपा से किसी इच्छा की पूर्ति होने पर श्रद्धालु भक्त-साधक इसका आयोजन करता है । यह आयोजन भी रात्रि ही को किसी एकान्त किन्तु नियत स्थान पर किया जाता है । इसमें भाग लेने वाले सभी साधक सपत्नीक होते है ।

सर्वप्रथम पुजारी किसी बडे पात्र में शराब भरकर उसकी पूजा करता है तब उस पात्र मे वहा आई महिलाएं अपनी-अपनी चोली (कंचुकी) उतार कर डालती है और उसे शराब मे भिगो-भिगोकर अपना वक्षस्थल साफ करती है तब तक पुरूष वर्ग घडे के चारो ओर नाचता हुआ शराब पीने पिलाने में मग्न रहता है ।

फिर पुजारी देवी की पूजा कर उसे नई चोली धारण कराता है । इस समय मेमने की बलि दी जाती है और उसका मांस पकाया जाकर देवी को भोग दिया जाता है । इस समय भी शराब पीने का दौर जारी रहता है ।

यह सब कुछ हो जाने के बाद प्रत्येक पुरूष उस शराब के पात्र से एक-एक चोली उठाता है और जिस महिला की चोली उसके हाथ आ जाती है वह उसी के पास जा खडा हो जाता है । सभी चोलियों का बटवारा हो जाने के पश्चात् देवी के समक्ष सारे नर-नारी यौन क्रीडा में मग्न हो जाते हैं ।

ऊंदर्‌या पंथ :

ऊदर्‌या पथ को मानने वाले भी नीची जाति के लोग होते हैं । इसका आयोजन

भी किसी एकान्त स्थान में ही होता है ताकि सामान्य व्यक्ति की पहुँच भी वहा तक न ह सके और किसी को इसका सूत्र तक हाथ न लग सके ।

इसमे भी महिला पुरूष दोनों होते हैं । दोनों आमने-सामने गोलाकार बैठ जाते है परन्तु वे पूर्णत. नग्नावस्था लिये होते है । दोनों के शरीर पर किसी प्रकार का कोई कपडा नहीं होता है । इस समय सबको पूर्ण सयम में रहना पडता है ।

बीच गोलाई मे चूरमा (घी में पके मोटे आटे में शक्कर मिलाकर तैयार किया गया) रख दिया जाता है जो वहीं तैयार किया जाता है । यह चूरमा माताजी के भोग के लिये बनाया जाता है । उस चूरमें से सटा हुए एक कच्चा धागा सीधा ठेठ ऊपर मकान की छत तक बांध दिया है । पहले चूंकि मकान कच्चे बने होते थे जो या तो घास-फूस से छा दिये जाते थे या कवेलू से ढक दिए जाते थे । अतः धागा घासफूस या फिर लकड़ी की छत से जोड दिया जाता था ।

इस धागे के सहारे-सहारे एक चूहिया आकर नीचे रखी चूरमे की ढेरी से अपने मुँह में उसका कण लेकर चली जाती तो समझ लिया जाता कि देवी को चूरमे का भोग लग गया है और उनकी साधना पूरी हो गई है । परन्तु यह कार्य बहुत आसान नहीं था । चूहिया का आना ही बडा मुश्किल था । इसमें कभी-कभी तीन-तीन, चार-चार, सात-सात दिन तक वहा बैठे रह जाना पडता और निरन्तर चूहिया की प्रतीक्षा बनी रहती । दूसरी बात यह थी कि चूहिया कभी दिन को नहीं निकलती । उसके निकलने का समय रात्रि हो और वह घर भी बिना किसी होहल्लेवाला हो अतः दिन को ये साधक भजनभाव में निमग्न रहते और रात पडने पर सब चुपचाप टकटकी लगाए बैठे रहते । चूहिया के वहा आने और प्रसाद ले जाने के दिन तक सभी लोग निराहार रहते हैं ।

ये लोग मात्र निराहारी ही नहीं रहते अपितु इनके आपस में भजनभाव होते रहते हैं और एक दूसरे के गुप्तांगों को स्पर्श करते हुए नाचते भी रहते हैं । यह सब देवी को प्रसन्न करने और उसे रिझाने के लिए किया जाता है ताकि देवी जल्दी रिझकर वहां चूहिया स्वरूप दर्शन देकर उनकी सेवासाधना को सार्थक करे ।

यह सारी साधना शुद्ध भावों से प्रेरित है । किसी महिला पुरूष में कोई विकृति नही आ पाती है । किसी में विकृति आने पर उसकी साधना निष्फल समझ ली जाती है और यदि कोई किसी से छेडखानी भी कर बैठता है तो उसके साथ बुरी बिताई जाती है । यहा तक कि सभी मिलकर उसकी हत्या तक कर देते हैं परन्तु अपनी पवित्रता पर जरा भी आंच नही आने देते हैं । इससे यह स्पष्ट है कि नीची जातियों में भी कितनी ऊँची साधना, देवी के प्रति निष्ठा और कठोर आत्म संयम पाया जाता है ।

एक दिन उदयपुर राजमहल के शिवशक्ति पीठ पुस्तकालय में जब मैंने प. बालकृष्ण व्यास से कूंडापंथ की चर्चा की तो उन्होने ही मुझे ऊंदर्या पथ के सम्बन्ध में यह जानकारी दी और कहा कि जयसमद की ओर किसी समय उधर के आदिवासियो में इस पंथ का बडा जोर था परन्तु सारा कार्य इतना गुपचुप होता है कि अन्य किसी को इसकी भनक तक नही पड सकती । यहा तक कि इसे इतना छिपया रखते हैं कि पंथ का कोई मानलेवा किसी का आजीवन घनिष्ठतम मित्र भी होता है तब भी इसका पता नहीं चल पाता है जब तक कि वह भी उस पंथ का सदस्य न हो ।



4

गणगौर अपहरण

गणगौर राजस्थान का बडा ही रसवंती त्यौहार हे । यहां के निवासियों मे इन दिनों जितने इन्द्रधनुषी रंग विविध रूप चटखारे लिये देखे जाते हैं उतने अन्य किसी त्योहार पर देखने को नहीं मिलेंगे । राजस्थानी गोरिया जहां अपने अटल सुहाग और अमर चूड़े के लिये गणगौर की बडी भक्ति-भावना से पूजा प्रतिष्ठा करती हैं वहां छोरियां होली के दूसरे दिन से ही मनवाछित वर प्राप्ति के लिये गवरल माता की पूजा-आराधना में लग जाती है । शादी के लिए दूल्हा तोरण पर आया हुआ है मगर बनड़ी गणगौर पूजने में मगन बनी हुई है । तभी तो गीत गूजा है - 'राइवर डोल रह्या तोरण पर बनड़ी पूज रही गणगौर' ।

राजस्थान मे गणगौर सम्बन्धी कई कथा-किस्से प्रचलित हैं । इनमें गणगौरा के अपहरण की भी कई घटनाये सुनने को मिलती है । गणगौर पर गाये जाने वाले गीतों में भी ऐसे कई सकेत भरे पडे है । राजस्थान की अपनी शोध यात्राओं में जगह-जगह गणगौर अपहरण की घटनायें मुझे बडे अजूबे रूप मे सुनने को मिली । अपना पराक्रम दिखाने और दूसरे को अपमानित करने के लिये राजा महाराजा या जागीरदार अपने-अपने प्रतिद्वन्द्वी की गणगौर उडा लिया करते थे । मध्ययुग में ऐसी घटनायें घटाटोप घटी हैं इसीलिये राजा महाराजाओ तथा ठिकानों के जागीरदारों की गणगौरें पुलिस के पहरे मे रहती । यह पहरा अन्त:पुर की गणगौर के साथ भी रहता जहाँ डावड़िया बड़ी सावचेत होकर गणगौर माता के चवर ढोलती रहती और अपने चारों कान चौकन्ने रखतीं ।

उदयपुर की गणगौर बूंदी का ईसर :

उदयपुर से ही शुरू करें तो कहते हैं यहां के राजघराने के संबद्ध किन्हीं बीरमदास की 'गणगौर' नामक बडी रूपाली गोरीगट्ट कन्या थी जिसे चाहने वाले कई राव रईस थे । बूंदी के ईसरसिह के यहा उसका सगपण कर दिया गया तो कई लोग उससे ईर्ष्या करने लग गये और किसी तरह गणगौर को पाने की कोशिश में लग गये । जब ईसरसिह को इस बात का पता चला तो वह रातों रात उदयपुर आया और गणगौर को अपने घोडे

पर बिठाकर चलता बना परन्तु रास्ते में चम्बल अपने पूर पर थी । ईसरसिह ने आव देखा न ताव, घोडा नदी मे छोड दिया । परिणाम यह हुआ कि नदी घोड़े सहित ईसर गणगौर को ले डूबी । गीत-पक्तियों मे यह घटना इस प्रकार वर्णित हुई है-

उदियापुर से आई गणगौर
आय उतरी बीरमाजी री पोल ।

और गणगौर विदाई का यह गीत-

म्हारे सोल्हा दिन रा आलम रे
ईसर ले चाल्यो गणगौर ।
म्हें तो पूजण रोटी खाती रे
ईसर ले चाल्यो गणगौर ।'

यह गीत बहुत लम्बा है जिसमें प्रत्येक पक्ति के बाद 'ईसर ले चाल्यो गणगौर' की पुनरावृत्ति मिलती है ।

भाले की नौक पर गणगौर का अपहरण :

गणगौर अपहरण सम्बन्धी बातचीत के दौरान रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत ने बताया कि उनके पीहर देवगढ की गणगौर भी इसी तरह उडाकर लाई हुई है । उन्होने बताया कि देवगढ के पास बरजाल नामक गाव है जहा रावतों की अच्छी आबादी है । एक बार यहां के जाला रावत को उसकी भोजाई ने किसी बात को लेकर ताना मार दिया कि ऐसी कौनसी तू जावद की गणगौर ले आयेगा ?

जावद तब एक बहुत बडी जागीरदारी थी और वहा की गणगौर की बडी प्रसिद्धि थी । जाला को भोजाई की बात चुभ गई । गणगौर के दिन जब जावद में गणगौर की भव्य सवारी निकली तो जाला हिम्मत कर वहा पहुंचा और भरी सवारी से भाले की नोक पर गणगौर उठा लाया । जाला ने भाभी को गणगौर लाकर दी तो रावतों मे जाला का सम्मान और गणगौर की प्रतिष्ठा हुई । भोजाई का दिया ताना एक नई कहावत को जन्म दे गया । आज भी बरजाल के रावतों में यह कहावत सुनने को मिलती हे - 'फलाणी तो जावद की गणगौर व्हिया बैठी है ।' यही गणगौर बाद में रावतों के यहा से देवगढ़ ठिकाने में लाई गई ।

अपने अध्ययन काल सन् 56-57 के दौरान गणगौर पर बीकानेर मे मैंने लाखणसी की लूर सुनी तब इसका कोई अर्थ मेरे पल्ले नहीं पडा पर जब चुरू जाना हुआ तो वहा के शोधकर्मी गोविन्द ने बताया कि इस लूर के पीछे गणगौर अपहरण की ऐतिहासिक

घटना गर्भित है । बोले कि जैसलमेर के महारावल की आज्ञा से मिरड़ गांव के भाटी मेहाजल आदि बीकानेर राज्य की गणगौर का अपहरण कर ले गये तब बीकावत खंगारसिंह के पुत्र लाखणसिंह ने भाटियों पर धावा बोल मेहाजल को मौत के घाट उतारा और गणगौर प्राप्त की । इस पर बीकानेर महाराजा कर्णसिंह ने लाखणसिंह को सार्वभौम सहित चुरू जिले के रतनगढ तहसील का लोहा गांव जागीर में दिया फलत: लाखणसी के नाम की लूरें प्रारम्भ हुई जो आज भी इस क्षेत्र में लाखणसिंह के शौर्य पराक्रम को जीवंत किये हैं ।

डिंगल साहित्य के विद्वान सौभाग्य सिंह शेखावत ने एक पत्र द्वारा मुझे सूचित किया कि जोबनेर के समीपस्थ सिंहपुरी का रामसिंह खंगारोत मेडता नगर की गणगौर बलात् अपहृत कर ले गया । यह सीकर ठिकाने का फौजदार था । इधर के गांवों में आज भी यह डर बैठा हुआ है इसीलिये ग्राम स्वामी के घर से जब गणगौर की सवारी निकलती है तो उसमें गांव के सब लोग सुन्दर वस्त्राभूषणों के साथ-साथ भाले, बन्दूक, तीर, कमान तथा लाठिया लिये चलते हैं ताकि गणगौर को किसी अपहरण से बचाया जा सके ।

भाले की नोक पर गणगोर का धड़ लाना :

उदयपुर के बेदला ठिकाने के राव मनोहरसिंह के यहां तो एक ऐसी गणगौर है जो केवल धड़ रूप मे ही है उन्हें याद नहीं कि कहा से इस गणगौर का अपहरण किया मगर अपने बाप-दादों से वे यह जरूर सुनते आये कि लड़ाई में तलवार से इसके हाथ-पांव जाते रहे और भाले की नोक पर इसका धड़ लाया गया । कोई तीन सौ-चार सौ वर्ष पुरानी यह गणगौर तीन दिन तक विशेष संस्कारों के साथ आज भी बड़ी श्रद्धा भक्ति के साथ पूजी जाती है । इसकी बणगट बड़ी मोहनी और लुभावनी है । बड़े कीमती वस्त्राभूषणों से इसकी ऐसी उत्तम सज्जा की जाती है कि इसकी विकलांगता का किसी को एहसास ही नहीं होता ।

घोड़े पर गणगौर उडा लाना :

मेवाड़ के महाराणा स्वरूपसिंह के सामने एक दिन किसी ने कोटा की गणगौर की तारीफ कर दी तब महाराणा ने कहा कि कोई उसे लाकर दिखाये तो जानूं कि वह कैसी है ? महाराणा का कहना क्या हुआ सबके लिये चुनौती बन गया । बीड़ा फेरा गया कि कोई माई का लाल ऐसा है जिसने सेर सूठ खाई हो जो कोटा की गणगौर उड़ाकर लाये ?

सब देखते रह गये तब गोगुन्दा के कुवर लाल सिंह ने बीडा झेला । ठीक गणगौर के दिन लालसिह अपने घोडे पर सवार हो कोटा पहुचा । दरबार गणगौर की मजलिस का आनन्द ले रहे थे । उसी समय लालसिह ने कहलवाया कि बाहर से एक घुडसवार आया हुआ है जो घोडे पर गणगौर नचाने में बडा प्रवीण है । यदि दरबार का आदेश हो जाय तो वह अपना करिश्मा दिखाये । दरबार ने ऐसा करामाती न तो पहले कभी देखा न सुना जो घोडे पर गणगौर नचा सके अतः इजाजत दे दी ।

लालसिह अन्दर पहुचा । उसने गणगौर उठाई । घोडे पर रखी और उसे धीरे-धीरे घुमाना प्रारम्भ कर दिया फिर थोडी घोडे की चाल बढाई और मौका पाकर ऐसी एड मारी कि घोड़ा वहा से छलाग मारता हुआ चल निकला । सब लोग हक्के-बक्के हो देखते रह गये । पल भर के लिये लगा कि जैसे कोई जादू तो नही हो गया । बाद में तो घुडसवार सिपाही उसकी खोज में भी निकले मगर कुछ पता नहीं लग पाया ।

लाल सिंह ने महाराणा को गणगौर लाकर नजर की । महाराणा ने उसकी बहादुरी की बडी तारीफ की और इनाम रूप में वही गणगौर उसे दी जो प्रतिवर्ष गोगुन्दा में आयोजित गणगौर मेले की शोभा बढाती है । यहां उस गणगौर के साथ ईसर की सवारी भी निकाली जाती है । यह मेला मुख्यतः रात को भरता है जिसमें आस-पास के सैंकडो आदिवासी स्त्री-पुरुष भाग लेते हैं और नृत्य गीतों द्वारा मेले को जगमग करते हैं । सन् 75 के गणगौर मेले के अध्ययन के लिये जब मैं गोगुन्दा गया तो वहां के वयोवृद्ध पुरोहित भेरूलालजी ने यह सारी घटना कह सुनाई ।

राजस्थान में गणगौर पर आयोजित घूमर नृत्य और गीत बडे लोकप्रिय रहे हैं । अलग-अलग ठिकानों की घूमरों की अपनी खासियत है । इन ठिकानों में उदयपुर, कोटा, बूदी, बीकानेर, प्रतापगढ की घूमरें विशेष उल्लेखनीय हैं । इनके अतिरिक्त लाखा फूलाणी, नथमल तथा गींदोली नामक लम्बे गीतों का भी यहा बोलबाला रहा है । ये गीत अपने आप में इतिहास के विशिष्ट पन्ने लिये है और गणगौर विषयक वीर संस्कृति के उज्ज्वल कथानक है ।

गणगौर पर गींदोली का अपहरण :

गींदोली के सम्बन्ध में तो रानी लक्ष्मीकुमारजी ने बताया कि गींदोली नाम की अहमदाबाद के बादशाह मेहमूद बेग की कन्या थी जिसे महुवा का कुंवर जगमाल लाया । हुआ यह कि पाटण का सूबेदार हाथीखा महुआ में तीज खेलती 140 कन्याओं को ले गया और के को भेंट कर दी तब कहीं बाहर था लौटने पर जब उसे पता चला तो उसके क्रोध की कोई सीमा नहीं रही उसी समय

उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं इसका बदला नहीं लूंगा हजामत नहीं बनाऊंगा धुले हुए कपडे नही पहनूंगा और न सिर पर पगडी ही धारण करूंगा ।

गणगौर के दिन बादशाह की बेटी गींदोली सवारी देखने निकली तब मौका देखकर जगमाल का प्रधान भोपजी हूल सवारों के साथ वहां जा पहुंचा और गींदोली को उठाकर चलता बना । महुवे मे गणगौर विसर्जन के बाद जब जगमाल की सवारी लौट रही थी तब भोपजी ने जगमाल को गींदोली ले जाकर दी । इस पर जगमाल के हर्ष का पार नहीं रहा । उसने उस सवारी मे गींदोली को आगे किया और स्वयं पीछे होकर चले तब महिलाओं से गीदोली का यह गीत फूटा - 'आगे-आगे गींदोलडी पाछेए जगमाल कवर ।'

इस घटना को कोई छह सौ वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु आज भी राजस्थानी महिलायें गींदोली गाकर महुवे से पकडकर ले जाई गई उन 140 कन्याओं के बदले में प्राप्त गीदोली की गूज ताजा कर देती हैं ।

प्रतिवर्ष गणगौर आती है और ये सारी घटनायें राजस्थान के प्रत्येक कण पत्थर में गूंजने लग जाती है परन्तु गणगौर के चले जाने के साथ-साथ फिर वर्ष भर के लिये न जाने कहां अलोप हो जाती है ?



5

लोकदेव ईलोजी

राजस्थान के लोकदेवताओ मे ईलोजी सर्वथा भिन्न किस्म के लोकदेवता है जिनकी होली पर ही विशेष पूजा प्रतिष्ठा होती है । अन्य देवी देवताओं की तरह इनका सजाधजा मन्दिर भी नही होता और न विधिवत पूजा अनुष्ठान ही । न वैसी साप्ताहिक चौकी लगी ही कही देखी गई और न वैसे विशिष्ट पुजारी भोपे ही ।

राजसी वेश में ईलोजी :

ईट-पत्थर से बनी प्लम्तर की हुई विशाल राजसी वेश विन्यास वाली इनकी प्रतिमाए यत्र-तत्र देखने को मिलती है । इनका चेहरा भरा भारी, हृष्टपुष्ट शरीर, बाकी तनी मूछें, कानो में कुंडल, गले में हार, भुजाओं पर बाजूबन्द, कलाइयों में कगन, सब मूर्ति में ही उभारे हुए या फिर तरह-तरह के रंगों में चितेरे मिलेंगे । जहा इनका कमर से ऊपर का सारा शरीर सजाधजा मिलेगा वहा नीचे का भाग खुली नग्नता लिये एक अजीब माहौल खडा कर देता है । लिंग के स्थान पर लकड़ी का एक मोटा गोटा रखा रहता है जो बालको के लिये जहा मनोविनोदकारी होता है वहा निपूती औरतें इसे अपनी योनी से छुवाकर सन्तान प्राप्ति का वरदान लेती हैं ।

ईलोजी की बरात :

राज परिवार से जुडे हुए ये ईलोजी राजा हिरण्यकश्यप के बहनोई थे । जिस दिन ईलोजी नास्तिक राजा हिरण्यकश्यप की बहिन होलिका को ब्याहने के लिए विशाल बारात और अपने वैभवशाली स्वरूप के साथ आ रहे थे कि हिरण्यकश्यप को होलिका के माध्यम से प्रहलाद से मुक्ति पा लेने की सूझी । दोनों भाई-बहन के बीच प्रगाढ़ प्रेम था । एक दूसरे की कही बात को कोई टालने की स्थिति में नही था । उसने होली से प्रहलाद का खात्मा करने को कहा ' कहते हैं कि होली के पास एक दिव्य चीर था जिस पर अग्नि का कोई प्रभाव नहीं पड पाता था उसी को ओढ को अपनी गोद में

लेकर होली अग्नि में बैठ गई परन्तु हुआ यह कि प्रहलाद तो बाल बाल बच गया और होली ही अग्नि को समर्पित हो गई ।

इधर ईलोजी की बरात आ पहुंची । जब सब लोगों को इस घटना का पता चला तो बडा दुख हुआ । ईलोजी तो सुधबुध ही खो बैठे । उन्होंने अपने सारे राजसी वस्त्र उतार फैंके और होली के वियोग में विलाप करते हुए दहनस्थल पहुचे और उस गर्म राख को ही अपने शरीर पर लपेटने लगे । ईलोजी ने फिर विवाह नहीं किया । आजीवन कुंवारे रहे इसलिये आज भी जिसका विवाह नही हो पाता है उसे ईलोजी नाम ही थरप दिया जाता है । ईलोजी द्वारा अपने शरीर पर राख लपेटने का यही प्रसंग धुलेंडी नाम से प्रारम्भ हुआ । इसलिए प्रथम दिन होलिका दहन होता है और दूसरे दिन धुलेंडी को सारे लोग धूल-गुलाल उछालते मौज-मस्ती करते हैं ।

भैरव रूप में ईलोजी :

क्षेत्रपाल व भैरव के रूप मे भी ईलोजी की मान्यता रही है । विवाह के तुरन्त बाद क्षेत्रपाल अथवा भैरूजी की पूजा करने की परम्परा यहां घर-घर गांव-गांव रही है । इससे वैवाहिक जीवन सुखी व सुरक्षित मान लिया जाता है । यदि क्षेत्रपाल नहीं पूजे गये तो ईलोजी जैसे आजीवन कुंवारे रहे वैसा ही अनिष्ट आकर घेर लेगा, ऐसी धारणा घर कर लेती है । इसलिये किसी अनघड पत्थर को लेकर उसके सिन्दूर पन्नी लगा दी जाती है और नारियल की धूप देकर पति-पत्नी एक साथ उनके ढोक देते है और जोड़ी अमर रहने का प्रसाद पाते हैं ।

ईलोजी की मान्यता होली से लेकर शीतला सप्तमी तक चलती रहती है । कई जगह ईलोजी की सवारी निकलती है । जैसलमेर में कभी धुंलडी के दिन एक आदमी ईलोजी बन निकलता जिसके लिगाकर बडा डडा जिसके ओरछोर मूंज के बाल लगे रहते । यह व्यक्ति राजमहल में जाकर राजाजी को सलामी करता ।

ईलोजी के स्यांग :

उदयपुर में भी ईलाजी के नीमड़े से एक ब्राह्मण काले कपडे पहन ईलोजी बन निकलता । इसी नीमडे के यहा गोबर के ईलोजी बनाये जाते तब महाराणा स्वयं यहां पधारते । दो दिन तक ऐसा अश्लील वातावरण छाया रहता कि औरतें घरों से बाहर तक नहीं निकलतीं । महाराणा सज्जनसिंह के पश्चात् यह कार्यक्रम नहीं चला । पहले कभी ढोलामारू की सवारी भी इस दिन निकला करती । तैली लोग भी उल्टे खाट पर ईलोजी की सवारी निकालते तब किसी मनचले व्यक्ति को उसका सारा शरीर मिट्टी से पोत थोप कर खाट पर बिठा दिया जाता और हाहुल्लड़ में लोग बाग निकलते होली पर दरबार के

छल्ले मे अश्लील चित्र लगे रहते । चितेरे इन चित्रों को दो माह पहले से ही बनाने शुरू कर देते ।

नंगी औरतों द्वारा ईलोजी की पूजा .

उदयपुर के देवगढ कस्बे में तो शीतला सप्तमी को लकडी के बने ईलोजी ही मुख्य सडक पर रख दिये जाते है । रास्ते से जो भी बस, ट्रक आदि वाहन उधर होकर गुजरते है उन्हें अनिवार्यत· उन ईलोजी के एक रूपया नारियल भेंट करना होता है नही तो उनका उधर से निकलना ही वर्जित कर दिया जाता है । इधर के गांवो मे इस दिन लोग-बाग भोजन कर दूर जगलों मे शिकार के लिये निकल जाते है । पीछे से प्रत्येक घर की औरतें नगी होकर रहती है और ईलोजी का पिंड अपने से छुडवाती हैं ।

कहने का तात्पर्य यह कि ईलोजी एक ऐसा विचित्र लोकदेवता है जो एक ओर नि:संतान औरतों को संतान देता है तो दूसरी ओर हंसी, मजाक व तिरस्कार का पात्र भी बनता है । नामर्द व्यक्ति के लिए भी ईलोजी शब्द का प्रयोग एक गाली के रूप में सुनने को मिलता है ।

हिमाचल के ईलोजी :

हिमाचल प्रदेश के आदिम जातीय त्यौहारों में चेत्रोलखोन नामक पर्व का मुख्य आकर्षण ही ईलोजी का स्वांग रहा है । यह पर्व चैत्रमास में मनाया जाता है जो भूत-प्रेतो से सम्बन्धित है । चगांव में इस अवसर पर बडे आकर्षक स्वांग निकाले जाते हैं ।

इस सम्बन्ध में प्रो. एन डी. पुरोहित ने रगायन के जून, 80 के अंक में लिखा है- 'इसमें एक विशेष परिवार का व्यक्ति अपने चेहरे पर ब्रकलिड लकडी का बना राक्षस का प्रतीक भीमकाय मुखौटा (खोर) लगाता है और शेष शरीर को देवता के कपडों से ढकता है । इस वीभत्स मुखौटे में दांत बाहर निकले होते हैं और सिर पर जानवरों के सींग लगे रहते है । मुखौटा काले-सफेद रगों की धारियों वाला होता है और कपडे पीले । इसकी गर्दन के पास लकडी का बना मोटा लिंग हड्डियों की माला के बीच फंसाकर लटका दिया जाता है । इसका अग्रभाग लाल और शेष काला होता है ।

गांव के मुख्य पर्वस्थल पर ईलोजी का स्वॉग गाजे-बाजे के साथ जुलूस रूप में ले जाया जाता है । इसमें भाग लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति के हाथ में लिंगाकार लम्बी लकडियां होती हैं । ये शिश्न का प्रतीक मानी जाती हैं । इन्हें ग्रामीण युवक अपने हाथो में हिलाकर अश्लील क्रियाओं का अनुसरण करते है । स्त्रिया भी ईलोजी के गले मे झूलते लिंग का स्पर्श करती हैं ।'



6

छेड़ा देव लांगुरिया

छेडा देव से तात्पर्य छेडखानी करने वाले देव से है । होली के दिनों में खासतौर से राजस्थान में ईलोजी और लांगुरिया; ये दोनों देव बड़े विचित्र रूप में याद किये जाते हैं । ईलोजी तो बाझ औरतों को सन्तान देने वाले देव हैं बशर्ते कि औरतें इनका पिंडपूजन कर, इनके सम्मुख नाक रगड़े और इनके लिंग को अपनी योनि से छुवाये । राजस्थान में कई जगह ईलोजी की राजशाही पुरूषाकृति में प्रतिमाएं मिलेंगी और ऐसी औरतें भी कई मिलेगी जिन्होंने ईलोजी की कृपा से सन्तानें प्राप्त की हैं । ये ईलोजी बाल-बच्चों में हंसी-मजाक के पात्र भी बनते है । कई मनचले इन दिनों इनके डंडाकार भारी बने लिंग से छेडखानी करते हैं । कई जगह ईलोजी की विचित्र सवारी भी निकाली जाती है तब भी लिंग ही एक लकड़ी के गोटे के रूप में सबका ध्यान आकृष्ट करता है ।

लांगुरिया ईलोजी से भिन्न है जिसकी खासकर राजस्थान के करौली क्षेत्र में बड़ी मान्यता है । ब्रज प्रदेश में भी इसके बडे चर्चे है । जो लोकगीत इसके संबंध में प्रचलित है उनमें यह पर पुरूष के रूप में भी याद किया जाता है । लांगुरिया के मूल में प्रचलित लंगर शब्द का अर्थ भी पराई स्त्री से अनुचित सम्बन्ध रखने वाला रसिक पुरूष है । अपने संबध में स्वंय लांगुरिया जवाब देता है-बम्मन के हम बालका, उपजे तुलसी पेड़ । यह देव ऐसा जोधा कि छः माह की लम्बी रात्रि भी हो जाय तो तनिक भी सोवेगा नहीं । यह देवी का परम भक्त है । देवी आज्ञा दे तो असुर के नौ कीलें टोक दे पर भक्तजन यह अच्छी तरह जानते हैं कि इसे राजी रखने से ही देवी प्रसन्न होगी । यह यदि बिगड़ गया तो देवी का वरदान मिलने का नहीं । इसलिये जहां वहा लांगुरिया गीतों की ही झड़ी लगी मिलती है । एक अवधारणा यह भी है कि एक पैर से लंगडा होने के कारण काला भैरव देवी चामुंडा के अखाडे का वीर लांगुर-लांगुरिया कहलाया ।

चैत्रकृष्णा एकादशी से चैत्र शुक्ला दशमी तक करौली के केला देवी मेले में लांगुरिया गीतों मनौतियों की बाहर देखने को मिलती है । तब राजस्थान ही नहीं

मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, गुजरात, पंजाब, हरियाणा तक के लोग इस मेले में उमड पडते हे। मैने देखा औरते अपने हाथों में हरी-हरी चूडिया पहने, माथे पर कलश धरे, हथेलियों मे मेहदी रचाये कोरे पीले पहनावे में देवी के साथ-साथ लागुरिये की पूजा मे भी उतनी ही मग्न बनी हुई हैं। पीले-पीले परिधान में, अपने खुले बालों के साथ नाचती ठुमकती रात-रात भर गीतो की गम्मते ले रही है। मेले का हर पुरूप लागुरिया और हर औरत जोगणी बनी हुई है। जहा औरतें-

दे दे लम्बो चौक लांगुरिया बरस दिनां में आयिंगे
अबके तो हम छोरा लाये परके बहुअल लायिंगे
अबके तो हम बहुअल लाये परके नाती लायिंगे

गाकर छकीपकी जा रही है वहीं पुरूष भी 'चरखी चलि रही बड के नीचे रस पीजा लागुरिया' जैसे गीत गाकर जोश-खरोश में मदछक हो रहे है। मैं इस सारे माहौल को देख सुनकर लांगुरिया के देवत्व और उसके लुंगाड़ेपन मे खो जाता हू। इतने में कुछ पकी उम्र की महिलाओ में से आवाज आती है - 'जरा ओडे-डोडे रहियो नशे में लागुर आवेगो।'

भक्त लोग इस लागुरिया को भेंट पूजा मे गांजा चढाते है। गीतो मे वर्णन आता है कि इसके लिये दस बीघा जमीन में गाजा बोया है। जब यह नशे नें चूर होकर आयेगा तो छेडाछेडी करेगा और खासतौर से उन्हें छेड़ेगा जिनके हरी-हरी चूडिया पहने को है, काजल टीकी दी हुई है। उन्हीं को यह नाना नाच नचायेगा। इसलिये उन्हीं को इससे ओडीडोड़ी रहने की जरूरत है। अपनी सर्वेक्षण यात्राओं में मैने इधर लकडी के बने आदमकद राजशी लांगुरिये देखे हैं जिनकी शीतला सप्तमी को घर-घर पूजा होती है।

केला देवी और उसके लांगुरिये की कितनी मानता है, यह इसी से लगता है कि सन् 75 में 2 लाख 65 हजार नकद, 38 हजार की चादी, 3 लाख 35 हजार का 6 कीलो सोना, 10 हजार का कपडा, 1 लाख 65 हजार के 30 हजार नारियल और 75 हजार दुकानों का किराया। इसके तीन वर्ष बाद के चढाने का अन्दाज लगाइये जब 10 लाख व्यक्तियों ने इस मेले में भाग लिया और 2 लाख नारियल भेंट चढाये गये। अब इस वर्ष की कल्पना आप स्वयं कर लीजिये। छेडा देव लांगुरिये का कमाल आपको लग जायेगा।



7

स्मारक जानवरों के

यो तो हमारा देश ही कई प्रकार की विचित्रताओं से भरा पूरा है जिसकी सानी विश्व में अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलती, पर राजस्थान इन विचित्रताओं में अपनी विशिष्ट विलक्षणता लिये है । सतियों के स्मारक के लिये तो यह प्रांत प्रख्यात है ही पर सताओं के स्मारक भी यहां पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं । मानव हित के लिये किये गये विशिष्ट कार्यों के लिये यहां का मनुष्य किसी को आदर देने में कभी नहीं चूका । गांवों के देवरों मे प्रतिष्ठित देवी-देवता और लोक जीवन में प्रचलित कथा-आख्यान गीत-गाथा इसके साक्षी हैं कि जिसने भी यहां पर हित के लिये अपने प्राणों को उत्सर्ग कर दिया वह सदा-सदा के लिये अमर हो गया । यह बात मनुष्य के साथ ही नहीं, जानवर तक के साथ घटित हुई मिलती है ।

किन्ही जानवरों में मानवीय किंवा देवीय गुणों को परख कर तदनुसार उनके प्रति सम्मान व्यक्त करने की भी यहा बड़ी प्राचीन परम्परा रही है । कई सांडों, बंदरों, गायों, कुत्तों, सांपों के ऐसे कथा-किस्से मिलेंगे जिनके सुकृत्यों के फलस्वरूप यहां के लोगों ने उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके स्मारक बनाये हैं । समाधियां खड़ी की है । बड़े-बड़े भोज दिये हैं । शव-यात्राएं निकाली हैं । बस्तियों का नामकरण किया है । मंदिर प्रतिष्ठित किये हैं, हवन कीर्तन किये हैं । जानवरों को भोजन पर न्यौता है और उनकी अस्थियां तक गंगाजी मे प्रवाहित की हैं । इससे यह स्पष्ट है कि हमारे यहां गुण-पूजा को प्रधानता सदैव दी जाती रही है चाहे वह जानवर भी क्यों न हो ।

गाय को हमारे यहा माता कहा गया है । प्राचीन शास्त्रों में भी इसके कई उल्लेख मिलते हैं । बहिन-बेटी को शादी के पश्चात् गाय दी जाती है । बछ बारस का तो त्यौहार ही गाय पूजन का है । गायों के साथ-साथ बछड़ों का भी हमारे यहां बड़ा प्यार-आदर है । दीवाली पर हीड़ गाई जाती है जिसमें गौ-पुत्र को सर्वाधिक महत्व-गौरव दिया जाता

है । दीवाली के दूसरे दिन गाव-गाव बैलों की विशेष पूजा की जाती है । चौपों में गाये भड़काई जाती हैं और इन्हें लपसी-चावल का भोजन कराया जाता है ।

जयपुर जिले के सुमेरपुर के निकटवर्ती गाव बीसलपुर में गाय-बछडे का बडा भव्य मन्दिर बनाया गया है जिस पर चालीस हजार रुपये खर्च किये गये हैं । इस मन्दिर के पीछे भी एक अजीब घटना-प्रसंग जुडा हुआ है । सन् 74 की जलझुलनी एकादशी को इस गाव की महिलाओं ने पांच दिवसीय उपवास किया और एक गाय तथा बछड़े का पूजन किया । आखिरी दिन उपवास खोलने के एक घटे पहले वह गाय मृत्यु को प्राप्त हुई । गाव वालों ने सोचा कि गाय बडी पुण्य वाली थी । पूर्व जन्म मे उसके द्वारा किये गये अच्छे कार्यों के फलस्वरूप उसे महिलाओं का पूजापा मिला और उपवास के दौरान उसने शरीर छोड़ा अत: उसकी स्मृति को अमर रखा जाना चाहिये । इसी भावना ने वहा मन्दिर का निर्माण कराया और उसमें गाय-बछड़े की पत्थर की बनी प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई । आस-पास के लोग आज भी बड़े श्रद्धाभाव से मन्दिर के दर्शन करते हैं और गाय-बछडे के प्रति सम्मान के भाव ग्रहण करते हैं ।

गाय-बछडे के साथ-साथ सांड को भी बडी पूज्य भावना से देखा जाता है । मारवाड में तो इन साडों को लोग प्रतिदिन नियमित रूप से मिठाई आदि खिलाते भी देखे गये हैं । कभी किसी दुकान में यदि किसी सांड ने कोई चीज खाली तो भी दुकानदार उसके प्रति बुरी भावना नहीं लायेगा । शेखावाटी के फतहपुर में तो सांड का एक स्मारक बना हुआ है जिसके साथ एक शिलालेख तक एक सेठ ने लगवाया था । कहते हैं, साड की मृत्यु पर यहां के एक सेठ ने ऐसा मृत्युभोज किया जिसमें सात तरह की मिठाइया बनवाई गई और सारे नगर को जीमने के लिये बुलाया गया । उसी समय एक बडे चबूतरे पर सांड की मूर्ति स्थापित की गई और शिलालेख लगवाया गया जिसे आज भी पडा जा सकता है । उस पर अंकित लेख इस प्रकार है-

श्री गणेशजी।। श्री गोपीनाथजी गुलराजजी सिंघानिया माह सुदी 13 शुक्रवार स. 1930 श्रीजी सरण हुआ उमर वर्ष 50 का जिकालर साड छोड्यो जै साड को स्वर्गवास हुयो भादवा सुदी 15 गुरूवार सं. 1945 न जै सांड को यो च्युतरो करायो ।

कई जगह सांड की मृत्यु हो जाने पर उसकी गाजे-बाजे के साथ शव यात्रा निकाली जाती है । ऐसी स्थिति में उसे कफन ओढाकर भैंसा गाडी में लादकर पूरे कस्बे में घुमाया जाता है । पुष्प गुलाल से उसे सम्मान-श्रद्धा भाव दिये जाते हैं । धूप अगरबत्ती की जाती है । बीकानेर के पुनास गांव के लोगों ने तो सांड की मृत्यु पर उसकी समाधि बनाई और चौतरफा वृक्ष लगाये नाथद्वारा में तो एक बार एक साड की शव यात्रा

निकाल कर उसे दो बोरी नमक के साथ दफनाया । उदयपुर के अशोक नगर श्मशान घाट मे सती की चबूतरी के पास सांड की चबूतरी बनी हुई है । यहां के गुलाब बाग में महाराणा फतहसिह (1884-1930) की कुतिया की छतरी है । इस कुतिया का विवाह बड़ी धूमधाम से खास ओदी के महत के कुत्ते से हुआ । इस कुत्ते का स्मारक पीछोला के किनारे खास ओदी पर बना हुआ है । धूणी पर दोनों के विवाह का फोटू भी लगा रखा है । वर्तमान में यहां के महंत प्रयागदासजी है ।

कुत्तों की मृत्यु पर तो तालाब तथा छतरी तक बनाये गये हैं । जोधपुर में एक बणजारे ने अपने प्रिय पात्र रातिया नामक कुत्ते की यादगार में एक नाडा तालाब व छतरी बनाई । यही इलाका जब बस्ती में परिवर्तित हुआ तो उसका नामकरण ही रातिया तथा नाडा के सम्मिलित रूप मे 'रातानाडा' हो गया जो आज भी इसी नाम से जाना जाता है, कहा जाता है कि यहा के बालसमद उद्यान में जोधपुर के राजपरिवार के कुत्तो के कई स्मारक हैं । ये स्मारक इस परिवार के स्वामिभक्त कुत्ते टेनी, पिदगी, ब्यूटी, शाम्पर, किवी, फार्म, काजी, चांग, मायल, मिसचीफ मेकर आदि के हैं ।

जनवरी सन् 77 में नसीराबाद के सायर ओली बाजार में शेरसिंह नामक कुत्ते की मृत्यु पर बैंडबाजो तथा फूल गुलाल की उछाल के साथ शवयात्रा निकाली । पूरे बारह दिन तक उसका शोक मनाया गया । बारहवें दिन नगर के तमाम कुत्तों को गुल्लो (गुलगुलों तथा रसगुलो) का भोजन कराया गया । इस दिन सुबह भजन कीर्तन हुए । एक कूकर सिह नामक कुत्ते को शेरसिंह का उत्तराधिकारी बनाया गया । फलस्वरूप उसके पगड़ी बधाई की रस्म पूरी की गई । रात को अच्छी रोशनी की गई । इस अवसर पर कुत्ते की यादगार को बनाये रखने के लिय फोटो तक खिंचवाये गये । उदयपुर के गुलाब बाग में भी कुतिया की स्मृति में किसी महारानी की बनाई हुई छतरी है ।

बन्दर को हनुमान का रूप माना जाता है । इसकी मृत्यु पर तो सजी सजाई डोल निकाली जाती है जिसमे बन्दर बैठा हुआ रखा जाता है । कई जगह रात्रि जागरण तथा हवन आदि किये जाते हैं । समाधि देने पर चबूतरा बनाया जाता है और दाह संस्कार पर चन्दन नारियल दिये जाते हैं । रेवाडी के चौक बाजार में हनुमानजी की मूर्ति के चरणों में शरीर छोडने वाले बन्दर को जगनगेट के पास वाली ठठेरों की बगीची में समाधिस्थ किया गया । कुचेरा में तो एक बन्दर की विद्युत करंट से मृत्यु होने पर उसकी डोली निकाली गई । कहते हैं कि मरते वक्त उसके मुंह से 'राम' शब्द सुनाई दिया । इस बन्दर को यहा से लीराई ले जाया गया और किसी तरह उसकी यादगार बनाये रखने के लिये एक समिति का निर्माण किया गया जिसने करन्ट बालाजी के नाम से एक मन्दिर का निर्माण किया

सापों की मृत्यु पर भी इसी तरह के विचित्र क्रियाकर्म किये जाते है। जैसलमेर मे तो साप को कफन देकर समाधिस्थ करते है। भवानी मंडी के निवासी रामप्रताप तेली ने तो अपने कुए पर रह रहे सर्पराज की मृत्यु होने पर उसे चदन का दाग दिया और विधिवत् क्रियाकर्म करने के उपरान्त उसके अवशेष लेकर हरिद्वार की यात्रा की और गगाजी मे उसकी अस्थिया प्रवाहित की।

साधारण जनता में ही समाधियों का प्रचलन नहीं रहा, राजा-महाराजाओं ने भी अपने प्रिय जानवरों की यादगार में स्मारको का निर्माण कराया।

मुगल बादशाह अकबर को एक हथिनी बहुत प्रिय थी जिस पर बैठकर वे शिकार को जाया करते थे। इस हथिनी ने कई बार बादशाह की रक्षा की। जब वह मर गई तो बादशाह ने फतहपुर सीकरी में इसकी स्मृति में एक मीनार बनवाई जो हिरण मीनार के नाम से प्रसिद्ध है।

इसी प्रकार बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह के स्मारक के पास मोरों का स्मारक भी अपने मे बडी दिलचस्प घटना है। कहते हैं जब महाराजा अनूपसिंह की मृत्यु के बाद उनका दाहसस्कार किया जा रहा था तो पास ही के एक वृक्ष से एक-एक कर कई मोर कूद कर चिता में जल मरे। लोग जब इन मोरो को बचाने लगे तो कहते हैं चिता से आवाज गूजी 'इन्हें मत बचाओ, जलने दो। ये पिछले जन्म के राज परिवार के सदस्य है। जलने से ही इनकी सद्गति होगी।' ऐसी स्थिति में उन मोरों का भी वहा स्मारक बनवा दिया गया।

तमिलनाडू के रामनाथपुरम जिले की एक पहाडी के शिखर पर एक हाथी के दात का स्मारक बना हुआ है। कहते हैं पहाडी पर बने शिव मंदिर में प्रतिदिन हाथी आया करता था जिसके एक ही दात था। जब वह मर गया तो शिव भक्तों ने उसका एक स्मारक बनाकर उस दांत की भी वहीं स्थापना कर दी।

यह तो हमारे देश की बात हुई पर विदेशों में भी ऐसे स्मारक देखने को मिलते है। अमेरिका के एक गांव में एक बार पकी फसल पर भयानक टिड्डी दल उमड पडा। लोग-बाग बहुत परेशान हुए। उसी समय देवयोग से चीलों का समूह आ पडा जिसने टिड्डी दल का खातमा कर दिया। इस पर गांव वालों ने चीलो का अहसान माना और एक स्मारक बना दिया। यह बात कोई 125 वर्ष पुरानी कही जाती है।

इसी प्रकार रोम में एक बार रात्रि को टाइवर नदी में बाढ आ गई। इसकी सूचना मुर्गों ने बाग लगा कर दी लोग जग गये और अपना कीमती सामान लेकर सुरक्षित हो

गये रोमवासी मुर्गों की इस करामात से बड़े प्रभावित हुए और उनकी स्मृति में नदी पर एक पुल बनवा दिया ।

जानवरों के प्रति मनुष्य का यह प्रेम और ममत्व यह सिद्ध करता है कि गुणों की पूजा का प्रत्येक प्राणी अधिकारी है चाहे वह जानवर ही क्यों न हो । महाराणा प्रताप का प्यारा साथी चेटक भी प्रताप ही की तरह अमर हो गया । हल्दी घाटी के मैदान में बनी उसकी समाधि प्रताप के प्रति उसकी स्वामिभक्ति और शौर्य वीरत्व के कई इतिहास पृष्ठ खोल देती है । सच तो यह है कि पशुओं के बिना मनुष्य अपना जीवन सूना मानता है । मनुष्य की यदि कोई मजबूरी नहीं हो तो कोई मनुष्य ऐसा नहीं मिलेगा जो अपने साथ कोई न कोई जानवर नहीं रखना चाहेगा ।



8

एक मेला दिव्यात्माओं का

सन् 82 में दीवाली की घनी अधेरी झाड्यूं करती डरावनी रात में लोकदेवता कल्लाजी ने अपने सेवक सरजुदासजी के शरीर में अवतरित हो मुझे चित्तौड़ के किले पर लगने वाला भूतों का मेला दिखाया तब मैंने अपने को अहोभाग्यशाली माना कि मै पहला जीवधारी था जिसने उस अलौकिक, अद्भुत एवं अकलपनीय मेले को अपनी आँखों से देखा ।

इस बार सन् 84 की बैकुंठ चतुर्दशी को कल्लाजी के दर्शन किये तो उन्होंने हुकम दिया कि आज ही चित्तौड चलना है । वहां कल की देव दीवाली को दिव्यात्माओं का लगने वाला मेला दिखायेंगे । लिहाजा हमने उदयपुर से एक टैक्सी ले ली । मैं, डॉ सुधा गुप्ता और मेरा छोटा बच्चा तुक्तक सरजुदासजी के साथ निकल पडे । रात को दस बजे हम चित्तौड़ पहुँच गये । वहां बिडला धर्मशाला में हमने अपना पड़ाव डाला जहा सभी हमसे परिचित थे ।

करीब साढे दस बजे जब हम अपना सामान तरतीबवार जमा कर कमरे में बैठे ही थे कि अचानक सेनापति मानसिंहजी पधारे और अपनी सयत वाणी में बोले- 'देखो बेटा यह चित्तौड है । आज नदी समुद्र में मिलना चाहती है बेटा । हम समझ गये, संसार की नजर ठीक नहीं है दुनिया के बेटों; विश्वम्भर आपका भला करे, जय विश्वम्भर । सारे राजाओं ने हमें गुनहगार ठहराया है बेटों । हम तो गुनहगार है । जय विश्वम्भर' ।

यह कहकर मानसिंहजी चले गये । ये मानसिहजी सेनानायक कल्लाजी के सेनापति हैं । मेरा जब-जब भी कल्लाजी के साथ बाहर शोधयात्राओं में जाना हुआ, कल्लाजी के आदेश से मानसिंहजी सदा हमारे साथ रहे । मीरां सम्बन्धी मेडता की शोध यात्रा में भी पूरे सप्ताह भर मानसिंहजी अपने कुछ विशिष्ट अदृश्य सैनिकों के साथ हमारे साथ रहे । जब मानसिंहजी सरजुदासजी को आते हैं तब उनका आसन उनका साफा और उनका अमल का कटोरा सभी कुछ अलग होता है यहा तक कि तमाखू पीने की चिलम भी

जुदा जुदा होती है हमे पहले से यह मालूम था [illegible] कर रखी थी ।

हम बातचीत में मग्न हैं । इतने मे मेरा ध्यान अपने हाथ पर बंधी घड़ी की ओर चला जाता है । सुधाजी पूछ बैठती है-'कितनी बजा रहे हो, क्या अभी से नींद सताने लग गई है ? अभी तो तुक्तक भी जग रहा है. अपनी बातों में सबसे अधिक, [illegible] ले रहा है ।' मैंने कहा-'एक-एक ग्यारह बजी है, सोने की बात ही कहां ? बाहर कितनी अच्छी चांदनी है, अभी तो थोड़ा घूमेंगे. कुछ हवाखोरी करेंगे, तब जाकर सोयेंगे ।'

मैने अपनी बात पूरी की ही कि उसी कमरे के एक कोने में लगे खाट पर सरजुदासजी जिन्हें सब बापूजी कहते हैं, जाकर सो जाते हैं और आदेश-निर्देश की भाषा में बोलना शुरू कर देते हैं ।

हमें समझने मे तनिक भी देरी नहीं लगती है कि कल्लाजी बावजी का पधारना हो गया है जो चुपचाप अपने सैनिकों को यहां की व्यवस्था बाबत आदेश-निर्देश दे रहे है । हमें कल्लाजी की बात तो स्पष्ट सुनाई दे रही है पर सैनिकों में से कोई आवाज या कि उनकी भनक तक नहीं सुनाई पड रही है । मै चुपचाप अपनी डायरी में लिखता चलता हूं -

- छोगमलजी ने के दे के वनैं जेन्यांरा मन्दर कनै ऊबा राखे । जो आवे वनै राम कीजो, जवार कीजो ।
- परवतसिंहजी कठे ? हूरजपोल कूण है ? दखण री दिशा मे कूण-कूण है ? गोरधनसिंहजी और. .. और.....हा-हां-कालूसिंहजी कठे ? मद में मेल्या कालूसिहजी ने ? हा-हां-ठीक है-ठीक है । वांने कै दीजे के सब त्यार उभारेवे ।
- कासीबाई ने कीजे के वांरो ध्यान रेवे हां भलो । रतनसिंहजी रे म्हेलां री तरफ कूण है ? वठे 6 जणा कई करे रे ? ठीक भला ..हां तो वाने कै दीजे के मीणा नैं वठेई रोक्या राखे । 6 जणा ने राख्या जो सोको कीदो ।
- मानसिंहजी भेज्या है । वारो बराबर देखणो वेइर्‌यो है । कठे गाजो पीने पड्‌यार्‌या तो कूटू लो । मानसिंहजी फरमायो । हां भला, फाटक पर उबा रो ।
- वक्तावरसिंहजी ने कीजे के कल्यो आयो है । जनाना बराजे वांने जो चावे वांरो ध्यान राखे । कासी ने पोसाकां में मेली तो वठे कूण है ? सिंगारी । सिंगारी ने पोसाका मे मेलो । कासी जूनी है ।
- बागसिंहजी सा रे वठे कूण है ? अमरसिंहजी ओ ठीक हे । हड़मतसिंहजी कठे ? हडमतसिहजी ने म्हारे कनै भेज तो ।

आओ चोवाणा । जै आसापुराजी । कई है । [illegible]
त्यागुया । भलो-हां-हां । [illegible]
है ? ठीक है वन्दोबस्त सब करा देवो । [illegible]
करीजो ।

जे आसापुरजी । आप आपरे काम लागो । जै मातारजी ! [illegible]
न-न-म्हांतो भला ऊई ठीक हां रे । नायकजी आया है ? [illegible]
रे । बूडा जीव है । किण दरवाजे ऊबा हो ? ठीक है-ठीक है । [illegible]
काल री रात है । और कई है ? कोई पधारणो चावे नां...

नायकजी आप तो भुवा री घणी रक्षा करी । आपने कूकर भूल सका । [illegible]
थाणी पागद्र्याई फाटगी भला । हा म्हू अरज कर देऊं । जै माताजी री । [illegible]
रामदेवजी । पीरजी पधारया । कद खबर आई ? कुण आयो ? [illegible]
ओ हो भलो भाग भला चित्तौड़ रो । म्हांने पधारसी । [illegible]
वाने जै गुरु म्हाराज री कीजो ने अरज करजो [illegible]
करा । हा जरणी तो अन्तर में भी ने ऊपर भी [illegible] है । [illegible]
गुरू म्हाराज पधारे तो वाने भी लेता पधारे ।

आपरे सब त्यारी है । और कई पासवास री त्यारी [illegible]
नोसादखांजी रे वठे थाणी पगल लगा लीजो । कोई [illegible]
तकलीफ पड़े । कोई बायां आई वे तो कासी ने के दीजो ।

बतुलखारी । भला आ नारी अठे क्यां आई है ? अणी ने [illegible]
अभैसिंहजी ने कै दीजो के नारी पर जुलम नी करे [illegible]
करे । अरे नारी कई करे ? नारी म्हारी मावड़ है या कोई भी [illegible]

सलाम-सलाम-सलाम और कई तकलीफ वे तो [illegible]
है । म्हूंतो ऊई थांणे भेरो बैठ्यो हूं ।

जै रूघनाथ री । मेताबसिंहजी थे तो भला रजपूत [illegible] भला । [illegible]
अरे भला पण माथे रजपूती राखो । खाली नाम मेताबसिंहजी [illegible]
राखियो व्हेतो तो कई व्हेतो ? पेलां [illegible]
रेवण रो कित्तो मजो आयो ? कठे नपुसकां री जमात [illegible]
मेताबसिंहजी कूटाकूटी ना करो तो कूट्‌ कूटं तो करो ।

पूरणसिंहजी ने भेजो ता म्हू आपरो काम करी दू आओ भया पूरणजी

कालीजी । मेतावसिंहजी ने डोड्या में मेलो है । थाने तो [illegible] हो अबे आयोडा जीव नें कठे काडों ?

- एक बात और केईदूं के डोड्यां रै रुवाजे है बानै के डोड्यां रे 'अगम' [illegible] मान मे कोई कमी नी राखे । जै कालीजी ।

लगभग साढे ग्यारह बज रहे हैं । हमने जान लिया कि मेले की सारी व्यवस्था का जिम्मा कल्लाजी का है इसलिए वे सारी जानकारी ले रहे हैं और [illegible] आवश्यक निर्देश दे रहे हैं । उनमें व्यवस्था सम्बन्धी कितना अनुभव, पैनी दृष्टि और प्रशासनिक क्षमता है और नारियों के प्रति कितना मान-सम्मान है । अपने सैनिकों के साथ उनकी कितनी आत्मीयता और पारिवारिकता है । वे किसी का दिल नहीं दुखाते हैं और रंग-व्यंग्य में कैसी चुटकी छोड़ते हैं हर छोटी से छोटी बात का उन्हें कितना ध्यान है । वे स्वयं कितने मर्यादित हैं और दूसरों की मान-मर्यादा का उन्हें कितना ख्याल है ।

यह मेला दिव्य आत्माओं का है । जो आत्माएं सद्गति में है वे सब इस मेले मे सम्मिलित होती हैं । जितने भी अच्छे संत, संतियां महापुरुष हुए है वे सब आते हैं । महाराणा मोकल के समय से इस मेले का प्रारम्भ हुआ । तब से अब तक लगता रहा है । इस मेले में जगतजननी जोग माया सबको काम की जिम्मेदारी सौंपती हैं और पिछले दिये गये कार्य का लेखा-जोखा करती है । ऐसे मेले और भी लगते हैं । कहीं एकादशी को, कहीं पूर्णिमा को । चित्तौड़ के इस मेले की बड़ी भव्य तैयारी करनी पड़ती है । मुख्य दीवाली पर जो भूतों का मेला लगता है उसकी तैयारी तो दो दिन में कर ली जाती है पर इस मेले की तैयारी मे पूरे नौ दिन लगते हैं ।

रामदेवजी का इस मेले में पहली बार पधारना हुआ । मारवाड़ के मुख्य सोलह उमरावों मे रामदेवजी का बिराजना होता है । जो गादी ढलती है उस पर पहली पंक्ति सोलह उमरावों की लगती है । उसके पीछे बत्तीसो की । फिर साहूकारों की पंक्ति । फिर रावराजा आदि बैठते है । रावराजा पासवान्यों के लड़के होते थे । रखैत के बालक रावराजा कहलाते थे । राजा के साथ उसके बावड (पिता) का नाम चलता जबकि राव राजा के साथ उसकी मावड (माता) का नाम चलता ।

धर्मशाला के ठीक सामने सडक के परले किनारे भामाशाह की हवेली है । हमने हवेली के ऊपरी हिस्से में काफी देर तक दिव्यात्माओ का निरन्तर आना जाना देखा । लग रहा था जैसे इस पूरी हवेली में कोई महा महोत्सव हो रहा है जिससे निरन्तर लोगों का इधर-उधर आवागमन हो रहा है । आदमकद परछाइया हम अपनी आखें फाड-फाड कर देख रहे हैं यह नहीं कि ये स्थिर हैं सब अपने-अपने कार्य में व्यस्त हैं दिन

को खूबसूरत लगने वाली रोशनी हमें कहीं भी विराम शून्य नहीं लग रही थी । कभी-कभी प्रकाश भी कम दिखाई देता ।

इसी दौरान हम बाहर सड़क पर भी निकले । हमने देखा कि भामाशाह की हवेली से कुम्भा महल तक के उस पूरे पोल आकाश में निरन्तर कोई न कोई विम्ब आता दिखाई दे रहा है । इनमें कभी कोई हल्की रोशनी होती । कभी तेज । बहुत तेज । कभी पीली । कभी नीली । कभी लाल । कभी एकदम तेजी वाली तो कभी लपलपाती । एक अजीब सुहावना नजारा हम देखते रहे । इनकी सारी दिखती, अलोप होती, लम्बे समय तक निरन्तर आती दिखाई देती रोशनियों से हमने अनुमान लगा लिया कि कल के मेले में कितनी दिव्यात्माएं जुटेंगी । कल्लाजी ने बताया कि सबके सब महल और हवेलिया दिव्यात्माओं के ठहरने के लिए व्यवस्थित रूप सजा दी गई हैं । सबकी ठहरने की जगह तय है । सब जगह उनकी सेवा के लिए नौकर-चाकर सैनिक तैनात हैं । लगभग एक बजे हमने धर्मशाला में प्रवेश किया । देखा तो कुत्ते इधर से उधर दौड़ रहे है और ऊंचे आकाश की ओर अपना मुंह किये भौंक रहे हैं । सही भी है कि कुत्तों को यह सब प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है । मुक्तक ने मजाक छेड़ी, कहा कि आज के दिन तो कुत्ता होना भी बुरा नहीं था । हम सब हंस पड़े और अपने कमरे में सोने को चल पड़े ।

दूसरे दिन कार्तिक पूर्णिमा का पूरा दिन हमारे लिए खाली था । दिव्यात्माओं का मेला तो रात ही को देखना था अतः हम सुबह ही वहां के दर्शनीय मुख्य-प्रमुख स्थानों को देखने निकल पड़े । सबसे पहले हमने भामाशाह की हवेली देखी । हवेली के सबसे ऊपरी कक्ष की छत के भीतर बनी गुलाखिया देखी जो तब भीतर से पूरी हीरे जवाहरात से ठस भरी हुई थीं पर अब जगह-जगह से टूटी-फूटी लगीं । इनसे पता चलता है कि भामाशाह कितने दौलतवान थे और कहां-कहां उसका धन नहीं छिपा रहता था । पूरे खण्डहर बने प्रसिद्ध मोतीबाजार के नीचे के तलघर देखे । ये तलघर पाँच-पाँच, सात-सात मंजिल के हैं । एक तलघर में हमने देखा दीवार में से कोई धन-कलश निकाल ले गया है जिसकी जगह सब कुछ साफ बता रही है । इसी के पास नाग की बडी गहरी मोटी वाबी देखी जिससे लगा कि कितना मोटा नाग यहां धन की रक्षा के लिए रहा होगा ।

विशाल किला कुम्भा महल देखा । उसका तोशखाना देखा । यह नीचे नौ मंजिला है जिसमें हाथी घोड़ों के जेवर रहते थे । यहां एक ओर नीचे भोजराज की माता करमावती का जौहर-स्थल देखा । जौहर की राख आज भी सब कुछ बता रही है । चाहिये कोई देखने-समझने वाला । भोज के मीरा के महल देखे जहां शादी के बाद सर्वप्रथम इन्हीं महलों में इनका वास रहा सोलह बत्तीसों का बैठक खाना देखा इसके चारों ओर चौके

पड जाती जहा ऊपर जनाना सरदार बिराजता । सारी बातचीत रानिया भी सुनती । कोई निर्णय होता और उन्हें जचता नहीं तो दासी के माध्यम से व अपनी असहमति भिजवाती । उनके निर्णय को सभी मान देते । नारियों की तब बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रहती थी ।

इसी महल में कभी 141 हाथी पलते थे । सुबह होते ही ये हाथी अपनी सूण्ड से राणाजी को सलामी देते । घोड़े ऐसे थे कि जरासी आहट से धरती धूजा देते । गज गोले झेलते । उनकी दृष्टि ऐसी होती कि दुश्मनों की ताकत पहले भांप लेते और चिंघाड़कर मालिक को सकेत कर देते । जवाहरबाई का निवास महल देखा । अपने व्यक्तित्व से यह इतनी रौबदार थी कि अच्छे-अच्छे रजपूतों की मूछे नीची हो जातीं । कासी बाई का दाहस्थल देखा । चबूतरे पर पांच लकडों में जलाकर उसे विशिष्ट मान दिया । यह बड़ी समझदार और खैरख्वाह दासी थी । तीन महाराणाओं की धाय-माय के रूप में इसने बड़ी सेवा की ।

जौहर कुण्ड देखा । सोलह हजार नारियों ने एक साथ इसमें जौहर किया था । लडाई मे कई वीर मारे गये । इधर खाद्य सामग्री नही रही । जितने भी वृक्ष पौधे झाड़ियां थीं उनके पत्ते खाने की सामग्री बने । यहां तक कि हरी पतली डालिया तक खाने के काम में ली गई । वृक्ष केवल ठूठ के रूप में रह गये तब क्या होता । जौहर के अलावा कोई चारा नहीं था । तय किया गया कि नारियों का तन चला जाये अच्छा है मगर शील न जाये । कोई नारी किसी दुश्मन के हाथ न पड़ सके । इसीलिए जौहर करना पड़ा । वृक्षों के जितने भी ठूंठ बचे रहे उन सबको काट-काट कर कुण्ड में डाला और चिता तैयार की ।

जौहर की यह दास्तान सुनाते-सुनाते स्वयं कल्लाजी फफक पड़े । हमारे सम्मुख भी सारा वातावरण आसुओं से भीगा टपक-टपक धार दे गया । कल्लाजी बोले-तब कोई नारी मरना नहीं चाहती थी । पकड-पकड कर एक-एक को चिता में झोंकते रहे । इन हाथों ने अनगिनत नारिया अग्नि को भेंट की थीं । वे चिल्लाती रहती कि हमें अपने पीहर भेज दो, मत मारो मगर इसके अलावा कोई चारा ही नहीं था । बाहर चारों ओर से अकबर की सेना ने घेरा डाल रखा था । उससे बचने का कोई रास्ता नहीं बचा था ।

जौहर कुण्ड के पास ही ऊपर के मैदान में दासियों ने एक दूसरे के कटार भोंककर कटार जौहर किया । इन दासियों की चिता कहां से होती । इतनी लकडियां कहां थीं । लगभग 20 हजार दासियों का यहां इतना ऊंचा ढेर लग गया कि अकबर की मोर मंगरी भी इसके सामने पानी भरने लग गई । अकबर को बता दिया कि उसकी मोर मंगरी लाशों की इस मगरी के सामने कितनी तुच्छ नाचीज है यहां तो दासियों तक ने आपस में कटार

[illegible] मुसद्दे [illegible]

[illegible]

बल्कि [illegible] दुश्मनों [illegible] उन पर [illegible] परकोटा, [illegible] दुश्मनों को [illegible] नीचे [illegible] दीवाल पर [illegible] हवेली के [illegible] करते हैं।

[illegible] कोई [illegible] आकर [illegible] कोई [illegible] मकान [illegible] नहीं हुआ। [illegible] कोई निशान नहीं [illegible]

[illegible] दुश्मनों का [illegible] के लिए [illegible] [illegible] [illegible] अपनी [illegible] [illegible] दुश्मनों [illegible] [illegible] कोई [illegible] नहीं सकता। पता भी [illegible] मरना चाहते थे। मुसलमानों के हाथों [illegible] अपने [illegible] उन्होंने ठीक समय [illegible] हथियार हाथ लिये और अपने विश्वस्त हाथी के

सम्मुख जाकर मृत्यु मागी तब हाथी न अपने पाव के नीचे उनका एक पाव दबाकर दूसरे पाव को सूड से चीरकर काम तमाम कर दिया ।

हर महल मे नारी खण्ड, दौलत खण्ड, बैठक खण्ड, दासी खण्ड तथा छिपने के खण्ड बने हुए है । युद्ध में योद्धा ही नहीं, बेताल, बीर और शक्तियां भी काम करती । अकेले पत्ता ही नहीं । उनकी मां, पत्नी और बहिन ने भी युद्ध में बड़ी वीरता दिखाई ।

यहां से कालिकाजी के दर्शन कर पद्मिनी महल देखते हुए कीर्तिस्तम्भ देखने चले गये । यह कीर्तिस्तम्भ बनवाया हमीर ने पर इसके मूल में शाह छोगमलजी थे जिन्होंने सारा धन लगाया । छोगमलजी बनिये थे जिन्होंने अपने जीवन में कभी सब्जी तक नही काटी पर वक्त आने पर अपना पराक्रम दिखाने में कोई कसर बाकी नहीं रखी । पास के बने जैन मन्दिर में एक समय जब मुसलमानों ने आक्रमण कर दिया तो इन्हीं छोगमलजी ने अपने हाथ में तलवार धारण कर तीन सौ मुसलमानों का पत्ता साफ कर दिया ।

कीर्तिस्तम्भ से हम लोग लाखोटिया बारी पहुंचे । यहां हमें पत्थर का बना रूपसिहजी का सिर मिला जिसकी सिन्दूर मालीपना लगाकर कल्लाजी ने स्थापना कर दी । यह स्थापना उसी जगह की जिस जगह तब जयमलजी ने नागणी माता की स्थापना की थी । ये रूपसिंहजी जयमलजी के बडे लड़के थे । ये लड़ने में जितने बहादुर थे, बुद्धि मे भी उतने ही तीव्र थे । लड़ते-लडते जब लोहे के गोले बनवाये और तोपों में दाग-दाग कर दुश्मनों का मुकाबला किया । ये सवामणी गोले थे जो आज भी चित्तौड़ के किले पर यत्र तत्र देखने को मिलते हैं । इनके सिर की स्थापना करते हुए कल्लाजी ने बताया कि रूपसिंहजी का जितना बडा सिर था । बहादुर तो इतने थे कि आंतें बाहर निकल आई तब भी जब तक सास रहा, बन्दूक नही छोडी, लड़ते ही रहे । अन्त में जब गोला आ लगा तब इनका सिर नीचे जा गिरा । लगभग 327 बरस तक इधर-उधर ठोकरें खाने के बाद आज यह सिर प्रतिस्थापित हुआ है । हमने नारियल की, अगरबत्ती की अच्छी धूप की और उस सारे स्थान को भी अच्छी तरह साफ किया ।

लाखोटिया बारी से हम रतनसिंहजी के महलों की ओर चले । सध्या का समय हो गया था । यही महल के ऊपरी छोर पर करणीजी और उनके पति दीपाजी के रूप में दो सफेद चीलों के दर्शन हुए । इस रूप में अकेली करणीजी के दर्शन तो हमें मेडता के दूदाजी के महल-खण्डहरों मे भी हुए थे पर दीपाजी और करणीजी के एक साथ दर्शन तो आज ही हुए बहुत देर तक हम लोग इन्हें देखते रहे दोनों चीलें आपस में काफी देर

[illegible] इसके [illegible] से हमने अपने को बहुत-बहुत भाग्यशाली माना ।

[illegible] कल्लाजी के आदेश की प्रतीक्षा ही कर रहे थे कि [illegible] । [illegible] औलिया देव अपनी-अपनी जगह हैं । अब आप [illegible] । दक्षिण दिशा में आइये जहां राठौड़जी (कल्लाजी) [illegible] । [illegible] जहां हम आपकी इन्तजार करेंगे । [illegible] फकीरों औलियों को सलाम करना । उत्तर की ओर कुछ [illegible] हुए हैं । कुछ औलिया फकीर पीर दक्षिण में हैं । आप किसी को [illegible] मत करना । नज़र फिराते रहें और चलते रहें । उंगली बतायेंगे तो दीपक बुझ जायेगा और आप कुछ भी देख नहीं पायेंगे । जयपुर की ओर से हमारे भी कुछ पुरखे आये हैं, [illegible] सो यहां आने में देरी हो गई । [illegible] । [illegible] से आइये और जाइये । [illegible] आपके, विश्वम्भर आपका भला करे, जय विश्वम्भर' ।

उनके जाते ही [illegible] की तैयारी कर ली । हमने फलों में संतरा, [illegible] तथा केला अपने साथ लिया । तीन-चार तरह की मिठाई ले ली । कुछ [illegible] ले लिये । दूध की [illegible] ले ली । कल्लाजी ने संकेत दे दिया कि 'रास्ते में कोई बोलेगा नहीं । मैं एक अंगुली का इशारा करूं तो नमन करना । दो अंगुली बताऊं तो फल डाल देना, मिठाई डाल देना और हाथ पीछे करूं तो अमल-दूध की धार दे देना ।' इस समय रात [illegible] बज चुकी थी । हम धर्मशाला से निकलकर सीधे कालिका मन्दिर पहुंचे और कालिका को श्रीफल चढ़ाकर विजयस्तम्भ के रास्ते लौटे ।

[illegible] आते हमें कई प्रकाश बिम्ब दिखाई दिये । दूर पहाड़ी पर एक लम्बी कतार दीपकों की दिखाई दी । बताया कि ये सब कल्लाजी के सैनिक हैं और उनके बीच एक सफेद रोशनी वाले [illegible] हैं । रास्ते में छोटी बड़ी तेज कम तेज वाली रोशनियां दिखाई दीं । कई जगह हमने खड़े रहकर इन रोशनियों को काफी देर तक देखा, जब-जब जहां-जहां कल्लाजी ने इशारा दिया हमने नमन किया और अपने साथ की सामग्री उन्हें भेंट की । [illegible] महल में गुजरते हुए हमें मालपुओं की बड़ी तीव्र खुशबू आई और दो परछाइयां दिखाई दीं जिनसे कल्लाजी ने बात करते हुए- 'राजी रीजो' । हमारे पूछने पर उन्होंने बताया कि यहां मरदाना भोज चल रहा है । यदि मैं आपके साथ नहीं होता तो इस भोज में शामिल होता

कुम्भा महल में हमें बहुत समय तक बहुत सारी भीड़ लिये परछाइया देखने को मिलीं , कल्लाजी न बताया कि यहा जनाना सरदार का जीमण रखा गया है भोजन की तैयारी चल रही है । कुछ देर तक हम भी वहीं घूमते रहे और लगातार परछाइयों का आना-जाना देखते रहे । ऐसा ही लग रहा था कि महिलाओं की पूरी की पूरी भीड़ उमड़-घुमड कर घटाटोप हो रही है । कुछ समय बाद जौहर कुण्ड से आने वाली सतियों की पंक्तिबद्ध कतार दिखाई दी जो भोजन के लिए आ रही थी । यहां इस सारी व्यवस्था का जिम्मा पुरानी दासी कासीबाई को सौंप रखा था । मुसलमान आत्माओं के खाने की व्यवस्था नौ गजा पीर के वहां रखी गई थी ।

दिव्यात्माओं का यह मेला मुझे भूतों के मेले की तरह कतई डरावना नहीं लगा । चांदनी रात का यह मेला हम लोगों के लिये बड़ा सुखद और शांतिमय रहा, इसके आनंद की अनुभूति को क्या शब्द दूं । शब्दो में बांधने का यह मेला है भी नहीं । यही कहना फिलहाल तो बहुत पर्याप्त है कि जो दिव्य अनुभूति हुई वह इस लोक की अनुभूति तो नहीं ही कही जा सकती और वैसे भी अभी तो इस यात्रा का प्रारम्भ मात्र है । कौन जाने कहां-कहां की यात्रा अभी शेष है ।



9

रावण ने विवाह किया मंडोवर

जोधपुर के पास मंडोवर बड़ा प्राचीन और ऐतिहासिक नगर कहा जाता है । वहा जाकर कोई देखे तो उसे कल्पना नहीं करनी पड़ेगी पर पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग ने जो कुछ बताने को संग्रह कर रखा है, लोगबाग तो प्राय- वही देखकर चले आते है । ऊपर भी जहां तक सड़क बनी है वहां तक भी बहुत कम लोग जा पाते हैं । चारों ओर पत्थर ही पत्थर चट्टानें पसरी धसरी पड़ी है । वहा जो रचना आज भी जिस रूप में जमी बिखरी हड़बड़ हुई मिलती है उससे उस नगर का वैभव, उसकी समृद्धि, उसका ठाठबाट, ललित लावण्य और सौन्दर्य-शौर्य तथा कला-सस्कृति परिवेश खुल खुल खिलाखिला पड़ता है ।

ऊपर जहां तक नजर जाती है पत्थर ही पत्थर, चट्टानें जमी बिखरी पडी है । कहते है 24 कोस तक यह नगर फैला हुआ था । कई महल उल्टे पड़े हैं । ध्यान से देखने पर लगता है जैसे सारा नगर ही किसी ने उलट दिया है । हमने एक-एक चट्टान देखी, गिरे हुए महल-खंडहर देखे, सब कुछ यही-यही आभास दे रहे हैं । जब मैं अपना केमरा आँख पर टिकाये जा रहा था तब मुझे एक बुढिया ने कहा भी - 'लाला, कांई फोटू लेवे है, आखी नगरी ही उलटी पड़ी है ।'

इतने में कल्लाजी साक्षात हो आये । उन्होंने सारी स्थिति स्पष्ट कर दी । बोले - साढे सात हजार वर्ष पूर्व रावण ने यहां आकर मंदोधरी से विवाह किया था । मंदोधरी का पिता मंदूजी था । उसी के नाम से मडोवर नाम पड़ा । हमें वह चंवरी बताई, पत्थर की बनी 10 खंभों वाली जहां रावण का विवाह सम्पन्न हुआ । पास ही पत्थर में उत्कीर्ण बड़ा कलात्मक तोरण भी बताया जो अब तो टुकड़ों-टुकड़ों मे वहां पडा है परन्तु उसे देखने से यह पता तो लग ही जाता है कि यह विवाह कितना शाही ठाटबाट वाला और ऐश्वर्य सम्पन्न रहा होगा । इसके लिए कितनी तैयारी करनी पड़ी होगी । कितने कारीगरों ने रातदिन एक कर कई रात दिन काम कर विवाह को स्वर्गिक सुख दिया होगा अपनी

कला की कीर्ति गाथा तो वहा पड़े पत्थर स्वयं मुँह बोल बयान कर रहे हैं । कल्लाजी ने एक महल के सर्वोच्च सिरे पर लेजाकर हमें बताया कि यह ध्वस्त महल 24 खण्डों का था । 12 खण्ड ऊपर तथा 12 इसके नीचे थे, नीचे के खंड तलघर तो आज भी सुरक्षित हैं । इसकी बनावट इस ढग की थी कि प्रत्येक खंड में जाने आने तथा हवा रोशनी पहुंचने का पूरा-पूरा प्रबध था । आसपास के कुछ महलों के नीचे हम गये, उनके तलघर देखे, रजा जाने के स्थान देखे । बडी-बडी चट्टानो के नीचे दबे मुख्यद्वार देखे जिनमें नीचे पहुंचा जाता है पर आज उन भीमकाय चट्टानों को कौन हिला सकता है । नीचे के तलघरों में छिपे खजाने भी हैं जिनमें करोडों मन निधि दबी-छिपी पडी है । एक तलघर में तो पूरा मन्दिर दबा पडा है जिसकी दीवारों पर उत्कीर्ण रगबिरंगी आकृतियां आज भी ताजा लग रही है ।

वे स्थान देखे जहा रजपूत रहते, रानियां रहती और अपनी-अपनी कुल देवियो की पूजा करती तब ही जाकर अन्न जल ग्रहण करतीं । मंदोधरी का महल देखा । उसकी कुल देवी का पूजा स्थल आज भी वैसा ही है, पुराना होते हुए भी बिल्कुल ताजा, कई महल ध्वस्त हो गये पर कई यू के यू जमे हुए है । जिसके झांकते मुह बोलते पत्थर कितने सुहावने, सौम्य और कातियुक्त लग रहे हैं । बडे-बडे दरवाजे विरान पड़े खंडहरों के मूक साक्षी हैं कि तब कैसी-कैसी रही होगी सारी रचना ।

कल्लाजी ने बताया कि रावण जितना बलशाली था उतना ही अभिमानी, वह सारे ससार को अपने अधीन कर लेना चाहता था । उसने मेंदूजी को भी कह दिया कि वे उसके अधीन हो जायें । मेंदूजी को भला यह क्यों कर स्वीकार्य होता । उन्होंने अपने जंवाईराजजी का मान रखते हुए विनयपूर्वक रावण की यह बात नहीं मानी । रावण को कहा धैर्य था । वह बड़ा कुपित हुआ । उसने कुम्भकरण व मेघनाथ की सहायता से सारी नगरी को ही उलट दिया । इसलिए आज भी यह सारा नगर उल्टा पड़ा है । यहीं चवरी के पास राणी महल, जनाना महल के ध्वसावशेष देखे । कुछ कमरे तो यहां आज भी ऐसे हैं जिनमें की गई कला-कारीगरी देखते ही बनती हैं । वह रंग और रूप विन्यास आज भी वैसा ही बना हुआ है ।

लोकदेवता कल्लाजी ने बताया कि प्राचीन इतिहास की सही जानकारी नहीं होने से बडा अर्थ का अनर्थ हो रहा है । हर बात का इतिहास भी तो नहीं लिखा गया । कौन इतिहासकार लिखता मंडोवर की यह कहानी । उसे कौन बताता ? इसलिए बहुत सी चीजें काल की परतों में दबी पड़ी हैं जैसे मंडोवर बडी-बडी चट्टानों के नीचे औंधा पड़ा हुआ है । हमने राई-आंगन- सभा मंडप हाथी-घोडों के ठाण दासियों के रहवास गृह

सब कुछ देखा । नीचे वह एक पत्थर का महल तो सभी दर्शनार्थी देखते है । उसी से पता चलता है कि उस समय की पत्थर की कला-कारीगरी कितनी बेमिसाल बडी-चढी थी ।

बहुचर्चित रावण की लका के सम्बन्ध में पूछने पर कल्लाजी ने बताया कि वह लका तो पानी में, समुद्र में डूबी हुई है । उस लका का एक झूपड तिरुपति बालाजी है । लकापुरी पर राम ने 100 योजन का पुल बाधा था । तिरुपति वह स्थान है जहा राम-विभीषण मिलन हुआ था । उन्होंने कहा कि बातें तो कई हैं मैं बता भी दूगा तो जगत विश्वास नहीं करेगा । उन्होंने बताया कि इसी मंडोवर में नीचे 3 सुरंगे हैं । इनमें से एक अयोध्या, दूसरी लका व तीसरी द्वारिका जाती है ।

ऐसा नहीं कि तबसे यह मडोवर ऐसा ही पडा हुआ है । इन्ही पत्थरों से नये महल बनते रहे और जगत बसता रहा । आज जो जोधपुर है उसका बहुत कुछ निर्माण यहीं के पत्थरों से हुआ है । उन्होंने बताया कि आज से तीन हजार वर्ष पूर्व श्रीकृष्ण ने भी यहा आकर विवाह रचाया था । यह विवाह हुआ जामवंती से । दरअसल यह वैवाहिक कार्यक्रम योजनाबद्ध नहीं रहा जैसा रावण का रहा । अर्जुन के साथ श्रीकृष्णजी मणि ढूढते-ढूंढते यहां आ गये । इसलिए कि वह मणि जामवती के पास थी । इससे वह खेल रही थी । कृष्णजी ने वह मणि मांगी तब जामवती का पिता जामवंत बोला - 'मणि दूगा पर उसके साथ-साथ इस बालकी को भी देना चाहूंगा' । कृष्णजी ने यह बात मानली तब वहीं उनका विवाह हो गया ।

मंडोवर अपने में बहुत कुछ छिपाये है । सारी की सारी परतें यों की यों जमी दबी पडी हैं । कौन खोले इन इतिहास-परतों को । मडोवर के प्रस्तरों को । काल कितना हावी होता चलता है । ऐसे में मनुष्य की क्या बिसात । वह कहां-कहां जीयेगा - वर्तमान मे कि भूत में या भविष्य में । बहरहाल मंडोवर तो सबमें जीता हुआ अजीत बना हुआ है ।



10

एकलिंगजी सबसे बड़ी धजा वाले

मन्दिरों पर धजा चढाने का भी पूरा संस्कार है । यदि इन धजाओं का ही अध्ययन किया जाय तो ऐसी बहुत सी सामग्री हाथ लग सकती है जो धजा परम्परा और उनके जुड़े देवता का रोचक इतिहास ही प्रस्तुत कर दे । धजाओं के विविध रंग, उनके आकार-प्रकार उनकी साज-सज्जा, उन पर लगे धगे विविध कलात्मक चित्र प्रतीक बड़ा रोचक दास्तान देते है । नाथद्वारा के श्रीनाथजी की सात धजाएं, सातों अलग-अलग रंगों की, एक-एक धजा एक-एक लाख की, श्रीनाथजी को इसीलिये सात धजारी भी कहते हैं ।

मेवाड का एकलिंगजी का मन्दिर बडा शांत और सुखद पुरातन मन्दिर, भगवान एकलिंगजी की सेवापूजा मेवाड़ के महाराणा इन्हीं एकलिंगजी के दीवान, ये एकलिंगजी कहां से आये लाये ? लिखावटी इतिहास तो जो कहता है वह पढ़ने को मिलता ही है पर लोक का इतिहास कुछ दूसरा ही है । कहा जाता है कि मीरां के पति भोजराज पहुंचे हुए शिव भक्त थे । भक्ति के क्षेत्र में मीरा से भी अधिक पहुंचे हुए । इसीलिए कहा जाता है कि मीरां और भोज का विवाह दो घर नहीं बिगड़ कर एक ही घर बिगड़ने जैसी घटना है । मीरां कृष्ण की भक्ति में सुधबुध ही खो बैठती तो भोज शिवमय हो अपने को भूला देते । रतनसिंह इसीलिये मीरां और भोज दोनों से नाखुश था ।

इन्हीं भोज ने अपने जीवनकाल में चित्तौड में दस शिवलिंगों को प्रतिष्ठा दी । सात तो गौमुख के उसी तलैये में स्थापित हैं और तीन ठेठ नीचे जमीन से लगे जिन पर उसी गौमुख का पानी निसर कर अभिसिंचित हो रहा है । यह एकलिंगजी वाला ग्यारहवां लिंग था, जिसकी प्रतिष्ठा भोज करवाना चाहते थे पर उनके जीवनकाल में वैसा नहीं हो सका । मृत्यु के बाद जब उनके महल का सम्भाला लिया गया तो यह लिंग बन्धा बन्धाया पैक मिला जिसे बाद में एकलिंगजी के रूप में नागदा में स्थापित प्रतिष्ठित किया गया इस सम्बन्ध की काफी शोध खोज बाकी है

जब यह मन्दिर बनकर पूर्ण हो गया तब इस पर कलश चढ़ाया गया पर रात को वही कलश गिर गया। दो तीन बार जब ऐसी घटना घट गई तो महाराणा को इसकी जानकारी कराई गई। महाराणा को भी इस बात का बड़ा असमजस रहा। उसी रात एकलिगजी स्वप्न गये और महाराणा से कहा कि धारा नाम का एक दर्जी है यदि उसका हाथ लगे तो कलश चढ सकेगा। सुबह पता लगाया गया। धारा वहीं रहता था। उसका हाथ लगा तो कलश चढ गया। महाराणा ने धारा को बुलवाया और मुंह मागा चाहने को कहा। धारा ने यही कहा कि मुझे तो और तो कुछ नही चाहिये, हजूर से यही निशानी चाहता हू कि मेरा नाम अमर रहे। तब वहीं धारेश्वरजी का मन्दिर बनवाया गया जिसमें धारा शिवजी पर पानी भरे लोठे से अर्ध्य दे रहा है। यह मन्दिर एकलिंगजी के मुख्य दरवाजे के बाई ओर है।

धारा चूकि दर्जी था तो दर्जियो को कलश पर धजा चढाने का अधिकार ही क्या जैस पट्टा ही मिल गया तब से प्रतिवर्ष चेती अमावस्या को धजा चढाने की रस्म पूरी की जाती है। धीरे-धीरे दर्जियों में जुदा-जुदा खांपे हुई तो वे अपनी-अपनी अलग-अलग धजा चढाने लग गये। इन खापो में सुई दर्जी, छीपा दर्जी, सालवी दर्जी और रंगाडा दर्जी नामी चार खांपे हैं। महाराणा फतहसिंहजी के समय छीपा दर्जियों के अपना प्रभुत्व अलग से दरसाया फलत: वे चेती अमावस्या की बजाय चेती पूर्णिमा को धजा चढाने का अपना कार्यक्रम रखते हैं। शेष तीनों खापो के दर्जी मिलकर अपनी-अपनी धजा चढाते हैं।

चेती अमावस्या के एक दिन पूर्व सभी दर्जी परिवार एकलिंग मंदिर में रात्रि जागरण करते हैं। इस दिन एकलिंगजी को हीरों का नाम धारण कराया जाता है। रात भर भजन भाव होते रहते है।

सुबह होते ही 'एकलिंगनाथ जी की जै' के उच्चारण के साथ धजा के लिए सफेद खादी के थान खुलते हैं। 30 इन्च करीब चौडी धजा के लिए थान के ककू केसर के छीटे देने के उपरात सिलाई चलती रहती है। फिर एक पुरानी लकडी, जिसे ये लोग गज कहते हैं, से उस धजा को नापा जाता है। यह धजा 108 गज तक तो नापी जाती है उसके बादजितनी बडी और करनी होती है, की जाती है पर एक सौ आठ गज तक की लम्बाई होनी तो आवश्यक ही है। धजा नापने का काम मेवाड पटेल के जिम्मे रहता है। यह पटेल परम्परागत रूप से चलता रहता है वर्तमान में मेवाड़ पटेल नाथद्वारा का कन्हैयालाल कनेरिया है। धजा के लिए प्रत्येक घर से दर्जी परिवार एक-एक रुपया देता है। यह चन्दा भी धजा ही है धजा की कोथली में सारा चन्दा जमा होता है प्रत्येक गाव

वाले मिलकर अपना-अपना चन्दा जमा करते हैं। इसीदिन इनकी पच पंचायती भी यही होती है। साल भर का लेखाजोखा भी तब कर लिया जाता है।

सबसे पहले धजा मूल मंदिर के सोने के छत्र से प्रारम्भ होती है। छत्र के धजा की किनारी बाध दी जाती है। उसके बाद जहा दर्शनार्थी खडे रहते हैं वहा दरवाजे के उसका आटा दे दिया जाता है। वहा से नंदकिशोर मन्दिर के आटा लगाया जाता है फिर मंदिर के पीछे से ऊपर छतपर धजा लाकर कलश से आटा दिया जाता है, फिर मंदिर की बाउण्ड्री के बाहर पीछे की पहाडी पर धजा ले जाई जाती है। तीनों दर्जियों की धजायें वहा जाकर नप जाती हैं कि किसकी कितनी बडी होती है। नापते समय कोई अपनी धजा को खीचता नही है। ऐसा करने से उस समाज में खींच पड़ना समझा जाता है। जिसकी धजा छोटी निकलती है उसकी समाज छोटी पडती रहेगी, माना जाता है। नंदकिशोर तथा निजमंदिर पर जो चढते हैं वे डामर कहलाते हैं। यह भील होते हैं जो वंश परम्परा से चढते आ रहे होते हैं। ये ही नापने के बाद पूरी धजा समेटते हैं और तदनंतर मन्दिर में जमा कराते है।

ध्वजा का यह लम्बा कपडा फिर टुकडों -टुकड़ों में कर दिया जाता है और वहां आसपास जितने भी मन्दिर हैं उनमें नियमानुसार उस कपड़े के टुकडे में चावल, सुपारी पैसा रखकर दे दिया जाता है। इन मन्दिरों की पूरी सूची बनी हुई है। ये टुकड़े भी धजा ही कहलाते हैं। किसी मंदिर के सात धजा (टुकडे) तो किसी के नौ। इस प्रकार एकलिंगजी के अलावा ऐसी सौ सवासौ धजा मदिरो में दी जाती है। धजा समाज के मेरे मित्र श्री उदयप्रकाशजी ने यह जानकारी दी।

धजा चढाने की यह परम्परा एक ऐसी परम्परा है जो अपने आप में बडी अनोखी और अद्भुत है, एक तो इतनी बडी धजा शायद ही कहीं और किसी मंदिर में चढती हो और फिर चढ़ती हुई भी जहा अनचढी रह जाती हो। जो धजा चढ़ती तो है पर कभी लहराती-फहराती नहीं है। दर्जी लोग भी जो परम्परा से इतने शिव भक्त शायद नहीं होते मगर अपने पूर्वज धारा की शिवभक्ति ने इन्हे भी इतना आस्थावान बनाये रखा है कि आज भी उसी विरासत और वैभव का दिल लेकर प्रतिवर्ष ये लोग धजा चढाकर परमसुख पाते है।



11

सांस पीने वाला सांप

राजस्थान के बाडमेर-जैसलमेर नामक रेगिस्तानी इलाकों में कोटड़िया, वशमोचन, बेडाफोड, ओवा, कालिन्दर, गोरावर, चंदन, गो, बोगी, परड़, गोफण जैसे साप तो धातक हैं ही पर इनसे भी अधिक खतरनाक यहा का पीवणा सांप बना हुआ है जो मनुष्य की स्वांस पीकर अपना जहर छोड जाता है और सूर्योदय होते-होते उसे मरधट पहुचा देता है ।

पीवणा -रात का राजा :

पीवणा साप रात का राजा है, अन्धेरी रात का । अपनी यात्रा यह रात ही को करता है । चादनी रात भी इसके लिये अभिशाप कही गई है । रोशनी तो इसकी पक्की दुश्मन कही गई है । जहां कही इसे रोशनी नजर भी आ गई कि यह अन्धा हो जायेगा । यही स्थिति इसके द्वारा जहर दिये आदमी की है । यदि रात ही को उस आदमी का इलाज कराया और वह बच गया तो ठीक अन्यथा सूरज की पहली किरण निकलने के पश्चात् वह बच नहीं पायेगा । ऐसे खतरनाक साप से इधर के लोग इतने भयभीत हैं कि कोई उसका नाम तक नहीं लेता । इसीलिये इसे सब चोर-चोर कहकर पुकारते हैं । तीन से पाचफीट तक की लम्बाई वाले इस सांप का रेंगने वाला हिस्सा सफेद-पीला तथा ऊपर का गहरा भूरा-काला घुमावदार आडे तिरछे कटे सफेद चकते लिये होता है । इसका मध्य भाग मोटा, मुह पाव के अंगूठे जैसा तथा पीछे का भाग पतला होता है । इसके चलने पर पतली लकीर बनती जाती है ।

स्वांस पीकर जहर टपकाने वाला सांप :

पीवणा आदमी को काटता नहीं । इसके विषदंत ही नही होते कहते हैं जब इसके मुह की मिसराइयां पक जाती है तब इसे भयकर घबराहट होती है । घबराहट होने से यह इधर उधर भागता है और सोये हुए मनुष्य की गरम गरम स्वास पीता है जिससे मिसराइया

फूट जाती है और इसे शांति मिलती है पर सोये हुए मनुष्य को यह सदैव के लिए शान्ति दे जाता है ।

जो लोग सोते समय खर्राटे भरते हैं उन्हें यह अक्सर अपना शिकार बनाता है । अन्य साप जहां चारपाई पर नही चढ सकते, यह चढ जाता है और बिना किसी प्रकार का अहसास दिये सोये व्यक्ति की छाती पर जा बैठता है । आदमी का जब यह स्वास पीना प्रारम्भ करता है तो धीरे-धीरे उसका मुह खुलता जाता है और बेहोशी आती जाती है अन्त में साप उसके मुंह में विष उगल पूछ का झपट्टा दे भाग जाता है ।

खाट से उल्टा लटकाने का इलाज :

पीवणा का जहर तेज तेजाब की तरह होता है । इससे आहत व्यक्ति न कुछ बोल पाता है न कुछ खा पी पाता है । उसका शरीर टूटने लगता है और तालू में फफोला हो आता है । इस समय रोगी को फिटकरी खिलाई जाती है जो फफोले को तोड़कर स्वासक्रिया को सुचारू करती है । मयूर का अण्डा पिलाकर भी इसका उपचार किया जाता है अण्डा पिलाने से बीमार को कै हो आती है जिससे सारा जहर बाहर निकल आता है । ऐसे कई समझे-बूझे लोग भी हैं जो जिससे सारा जहर बाहर निकल आता है । ऐसे कई समझे-बूझे लोग भी हैं जो फफोले को फोडकर भी रोगी को मरने से बचा लेते हैं । जैसलमेर के रणधा गांव के भगवानसिंह भाटी, अग्रीबाई तथा चन्दनसिंह सोढ़ा इस इलाज के जाने माने लोग हैं जिन्होंने अपने इलाज से कई लोगों को मौत के घाट जाने से बचाया है । धापूबाई नामक एक महिला ने तो अपनी नवविवाहित पुत्री को फफोला फोड़कर नया जीवन प्रदान किया जिसकी कहानी आज भी इधर के लोगों की जबान पर सुनने को मिलती है ।

जैसलमेर से 25 किलोमीटर पिथला गाव के रावलोत भाटी के यहां जब गोमती शादी कर आई ही थी कि रात को उसे पीवणा ने पी लिया । गोमती सांप के पूंछ के झपट्टे से अचानक जागी तो उसने अपने सुसरालवालों से तत्काल अपनी मां को बुला लाने को कहा जो पीवणे का छाला फोडने मे उस्ताद है । रातो रात ऊटगाडी लेकर पिथला से कोई 30 किलोमीटर से उसकी मा धापू लाई गई । धापू ने अपनी बिटिया को उल्टी खाट के लटका अपनी अंगुली से तीन बार छाला फोडा और सारा जहर बाहर निकाल उसे बचा लिया । कई लोग पीवणा के रोगी को खाट के बांध उल्टा लटका देते हैं और मलमल के साफ कपड़े को बंटकर सींक बनाकर उससे फफोला फोडते हैं । यह सारा इलाज रातों रात होता है

बीमार के लिए जीवित कब्र :

काफी कुछ इलाज के बाद भी जब साप का रोगीसचेत नही होता है तो उसका शरीर नीला-काला धब्बेदार होना प्रारम्भ हो जाता है । चेहरे पर झुर्रिया आने लग जाती है और रोगी हाथ-पॉवो के झटके देना प्रारम्भ कर देता है । बाजवक्त ये झटके इतने जोर-जोर के दिये जाते है कि इनसे पांव की खुडियां तक घिस जाती है । छह आठ घण्टे बाद रोगी मूर्छित हो जाता है । ऐसी स्थिति मे सूर्य की रोशनी से रोगी को बचाने के लिए तीन फीट चौड़ी और छह फीट के करीब गहरी खाई खोदकर उसे गोबर मिट्टी से लींप पोत कर बीमार को अन्दर सुला ऊपर काला कपडा ओढा दिया जाता है और उसके बाद झाडफूक तथा तन्त्र मन्त्र करने वाले ओझा भोपों को बुलाया जाता है इससे भी कई रोगी बचते देखे गये हैं ।

थाली की आवाज और चमड़े की धूणी से बचाव :

जैसलमेर में वहां के मालीपाडा के रहने वाले शिक्षक मनोहर महेचा ने पीवणा साप के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने हेतु कई गायकों मंगणिहारों तथा अन्य लोगों से मेरी भेंट कराई । देवीकोट, सागड, सम, नाचना, अर्जुना आदि गावो की यात्राओं से मिले नन्दलाल बिस्सा, जैनसिह पाऊ, प्रेमसिंह सोढा, अजीत स्वामी, भगवानसिह भाटी आदि की पीवणा विषयक कई आखों देखी घटनायें और इनके वर्षों के अनुभवों ने भी बहुत सारी जानकारी हमें दी ।

पूछने पर कई महिलाओं ने बताया कि सोने से पूर्व वे प्रतिदिन कांसी की थाली बजाकर सोती हैं । ऐसा कहा जाता है कि जहा तक इस थाली की झनकार पहुंचती है उस क्षेत्र तक पीवणा प्रवेश नहीं करता है । जनसम्पर्क अधिकारी डॉ अमरसिंह राठौड ने बताया कि पीवणा पीये को ऊट के चमड़े की धूणी देकर भी ठीक किया जाता है । उन्होंने यह भी बताया कि खाट पर सोई औरत की लटकी चोटी के सहारे पीवणा चढ गया । पीवणा द्वारा जानवर मारे जाने के समाचार भी इन्हे प्राप्त हुए ।

श्री पुरुषोतम छंगाणी ने बताया कि होहल्ला, रोशनी, लहसुन, प्याज तथा शराब पीवणा के पक्के दुश्मन है । सोते समय गांवो में इसीलिये लोग अपने धरों मे प्याज बिखेर देते हैं । श्री महेचा ने भवानीदान नामक एक ऐसे झाडगर कानाम भी मुझे बताया जो नीम की डाली से मन्त्र पढ़ते हुए पीवणा झाडते हैं तब पीवणे का जहर पत्तियों में आ जाता है औरसारी पत्तिया हरी से काली हो जाती है

पीवणा का रहन-सहन :

अन्य सांपो की तरह पीणा-पीवणा भी बिल में ही रहता है । ये बिल रेगिस्तान में पाये जाने वाले जाल, फोग व लाणें की जडों के पास अधिकतर बने होते हैं । जाल वृक्ष की खोखल में भी पीणे को रहते कुछ लोगों ने देखा है ।

जैसलमेर से 60 किलोमीटर अर्जुना गाव के विरधसिंह को पीवणा के पीने पर जब गाव वाले इकट्ठे हो गये तो उनमें सांप के चिन्ह को पहचानने वाले 50 वर्षीय पागी शोभसिंह हिम्मत कर अपने साथ चार अन्य साथी लेकर पीणे के चिन्ह देखते-देखते चलते रहे और 7 किलोमीटर दूर जाकर एक बिल मिला जिसे उन्होंने खोदा तो उसमें से बारह सांप निकले । इनमें से केवल एक ही पीवणा था । शोभसिंह ने सभी सांप मार डाले । इससे यह स्पष्ट है कि यह सांप कभी अकेला नहीं रहता ।

पीवणा मारना आसान नहीं .

पीवणा को मारना बड़ा आसान नहीं है । यह बड़ा चालाक सांप होता है । नंदलाल व भगवानसिंह ने तो 30-35 सांप मारे हैं । मनोहर महेचा को इन्होंने बताया कि यह रबड़ की तरह बडा लचीला होता है । कई लाठियां टूट जांय तब यह मरता है । मारते वक्त यह अपनी ठोड़ी अन्दर की तरह घुसा लेती है । जब तक इसकी ठोड़ी नहीं कुचली जाती, यह मरता नहीं ।

लाठी मारने पर इससे पी-पी की ध्वनि निकलती है । और जब इसका शरीर फूट जाता है तो बड़ी भयंकर दुर्गन्घ आती है । यह दुर्गन्ध इतनी भयंकर होती है कि वहां खड़ा आदमी उसके मारे बेचैन हो उठता है और उसे उल्टी तक होने लग जाती है ।

पेड़ पर लटके सांपो के कंकाल :

अपनी यात्रा में इन सापों के अस्थि पंजर पेड़ों पर लटके भी देखने में आये । सापमारक बाबूसिंह ग्रामसेवक, देवीकोट स्कूल के प्रधानाध्यापक सैयद अली, समरथराम देशान्तरी, भेड़ ऊन विभाग के ऊंट सवार शैतानसिंह ने बताया कि गांवो में सांप मारकर उसे ऊँट के गले तक हल को जोडनेवाली लकड़ी के अंतिम हिस्से में छेदकर निकालते हैं और उसके बाद उसे आग में जलाकर यातो पेड पर लटका देते हैं या जमीं में गाड़ देते हैं ।

रेगिस्तानी इलाकों में पीवणा से अधिक डरावना, भयानक और खौफनाक और कोई अन्य प्राणी नहीं हैं ।



12

पड़ की साक्षी में सतीत्व परीक्षा

राजस्थानी लोक चित्रांकन का एक प्रमुख प्रकार है पड़ चित्राकन इस चित्राकन में मुख्यत: कपडे पर लोकदेवता पाबूजी और देवनारायण की जीवन लीला चित्रित की हुई मिलती है। इन पेडों के भोपे गाव-गांव इस फैलाकर रात्रि को विशिष्ट गाथा गायकी में पडवाचन करते हैं। इससे पडभक्त जाह अपनी मनौती पूरी हुई समझते हैं वहीं भावी अनिष्ट से भी अपने को बचा हुआ मान बैठते है।

इन्हीं पडों में एक पड माताजी की होती है। इस पड का किसी प्रकार कोई वाचन नहीं किया जाता। बावगी लोग इसके पुजारी होते हैं और अपनी जात में इसी पड की साक्षी में स्त्री के सतीत्व की परीक्षा लेते है। तब माताजी की पड सबके सम्मुख फैला दी जाती हे और माताजी का धूप ध्यान करने पश्चात् पचायत के सम्मुख उस स्त्री विशेष को उफनती हुई तेल की कढ़ाई मे हाथ डालने को कहा जाता है। सबके सामने माताजी की साक्षी में वह स्त्री तैल की कढाई में अपने हाथ डालती है। यदि उसके हाथो पर उकलते तैल का किसी प्रकार का कोई असर नहीं होता है तो वह स्त्री चरित्रवान तथा सद्चलनी समझ ली जाती हे।

अग्नि परीक्षा की ऐसी परम्परा अन्य जातियों में भी विद्यमान है। सासी जाति में एक नवोढे को सुहागरात के दिन हीअपनी नई नवेली के चरित्र पर सन्देह हो आया तब उसने सुहागरात मनाना छोड दिया और आसपास के गांवों के पचो की साक्षी मे सोलह वर्षीय दुल्हन लीलीवाई की अग्नि परीक्षा ली गई। सूर्योदय के समय लीली ने तब अग्नि परीक्षा दी। पहले उसे नहलाकर निर्वस्त्र कर दिया। केवल एक छोटा सा धुला हुआ सफेद लट्ठा औढने को दिया। फिर उसके दोनों हाथों पर पीपल के पत्ते रखकर कच्चे सूत से उन्हें बाध दिया। मुहूर्त के अनुसार तब पंचों द्वारा कोई ढाई किलो वजन का लाल गर्म लोहे का गोला उसके हाथ में रख दिया गया और कहा गया कि सात कदम चलकर पास पड़े सरकडो पर वह गोला रख आये

लीली ने ऐसा ही किया । वह बेदाग बच गई और चरित्रवान सिद्ध हो गई नव दुल्हे राजा को बतोर जुर्माना ढाईसौ रूपया देकर अपनी नवविवाहिता से माफी मागनी पडी ।

राजस्थान के अत्यन्त लोकप्रिय कांगसिया गीत में भी कांगसिया चुराकर ले जाने वाली पणिहारिनो के लिये हथेली पर गर्म गोले रखकर चोरी का पता लगाने का उल्लेख मिलता है । गीत की पक्तिया है -

धमण धमाई लूं, गोला तपाई लूं
तातो तैल तपाई लूं, रे
अणी कांगसिया रे कारणे म्हूं
मंदर थीज धराइलूं रे
पणिहार्‌यां ले गई रे
म्हारे छैल भंवर रो कांगसियो
पणिहार्‌या ले गई रे ।

बावरी लोग माताजी की इस पड काएक उपयोग और करते हैं और वह है चोरी करने के लिये जाने हेतु शुभ-अशुभ शकुन लेना कहते हैं कि पड़ जब अच्छे शकुन दे देती है तो ये लोग चोरी हेतु निकल पडते हैं और जब सफलतापूर्वक धर लौट आते हैं तो माताजी की इस पड को खूब धूपध्यान देते हैं ।

नवरात्रा में तो नौ ही दिन पड को धूपदीप किया जाता है । पड चितेरे श्रीलाल जोशी ने बताया कि चूंकि माताजी की पड़ का उपयोग अधिक नहीं होता है इसलिये ये पर्डे इक्की दुक्की ही बनवाई जाती है परन्तु बावरी लोग बड़ी श्रद्धा और भक्ति से इस पड को बनवाकर वडे यत्नपूर्वक अपने घरों में रखते हैं । उनकी तो यह पड़ की एकमात्र देवी, माताजी और रक्षिका है । अपना प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य सस्कार ये लोग इसी पड देवी की छत्रछाया मे सम्पन्न करते हैं ।

सतीत्व परीक्षा के हमारे यहां और भी कई रूप प्रचलित रहे हैं । सीता की अग्नि परीक्षा तो जग जाहिर है ही पर लोकजीवन भी ऐसी अग्नि परीक्षा से अछूता नहींरहा है ।



13

मृतक संस्कार शंखाढ़ाल

मृत्यु लोकजीवन का अन्तिम सस्कार है जिसकी समाप्ति प्राय: शोक एव विषाद में होती है । मृतात्मा की सुगत के लिये प्रत्येक जाति में अपने पारंपरिक क्रिया कर्म प्रचलित हैं । अनेक जातियों में नाना दस्तूरों के साथ मृत्यु गीत भी गाये जाते है । ये गीत बड़े मार्मिक तथा हृदयद्रावक होते हैं । कोई दस्तूर एवं क्रिया कर्म नहीं करने पर, ऐसा माना जाता है कि मृतक व्यक्ति को सद्गति नहीं मिल पाती है फलत: उसका भवरा आकुलावस्था में भटकता रहता है अत: विशेष दस्तूर सस्कार करने पर ही उसका भवरा ठिकाने लगता है और उसे गत मिलती है । मृत्युपरक इन संस्कारो मे शखाढाल नामक सस्कार भी एक है जो राजस्थान की मेघवाल, भील, गमेती, भावी, मोग्या, रेगर, वलाई, बोला, कामड आदि कई जातियों में प्रचलित है ।

शखाढ़ाल एक सत्संगी संघ विशेष होता है जिसके अपने सदस्य होते है । परिवार के सभी व्यक्ति उसके सदस्य हों यह आवश्यक नहीं । इसके अनुसार मृतक व्यक्ति यदि शंखाढाल का सदस्य रहा हो और उसके पीछे परिवार मे जो व्यक्ति शखाढाल का सदस्य है वह चाहने पर ही शंखाढाल का आयोजन करता है । यह आयोजन किसी की मृत्यु होने के तीसरे दिन किया जाता है । गुरु की आज्ञा से कोटवाल द्वारा शखाढाल की सूचना मृतक के सदस्य सम्बन्धियो को दिला दी जाती है । इसकी सवसे बडी विशेषता यह कि इससे सम्बन्धित जितने भी छोटे-मोटे कम ज्यादा महत्व के घटना प्रसग होने हैं उन सबका अपना बंधा बंधाया सवाल होता है जिसका अनिवार्यत: उच्चारण करना पड़ता है । इसके अभाव में कोई क्रिया पूर्ण हुई नहीं समझी जाती है । जब कोटवाल शंखाढाल की सूचना देने जाता है तो सूचना प्राप्त करने वाला सादका (आखा) प्राप्त करने से पूर्व सवाल बोलता है जो सादके का सवाल कहलाता है । यह सवाल इस प्रकार है -

'आखा साका सादका वेग तण्या विचार   कलश में कला   गत में नूर   आवो

सामी परवत सू । सादका जाप सम्पूर्ण व्हीया । गादी बैठा अलखजी भागीरथ । साद को सलाम, गुरु को हरनाम । बोलो सता सत साहेब की ।

इस सवाल से तात्पर्य यह है कि सवाल बोलने वाले ने शखाढाल में सम्मिलित होने का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया है और यथासमय वह यथास्थान पहुंच जायेगा । यदि किसी व्यक्ति को किसी कारणवश उसमें शरीक नहीं होना होता है तो वह उपर्युक्त सवाल नहीं बोलेगा और न सादके ही लेगा । ये सादके सुगरे व्यक्ति को ही दिये जाते है । नुगरे को नहीं । सुगरा से तात्पर्य शखाढाल का सदस्य होने से है । सुगरा बनाने की यह क्रिया शखाढाल के समय हीसपूरित होती है जब कहीं शंखाढ़ाल हो रहा होता है तब वहा उस बालक विशेष को आंख बन्दकर गुरु के पास लाया जाता है । गुरु दक्षिणा के रूप में एक रुपया नारियल गुरु केहाथ में रख दिया जाता है तब गुरु बालक के सिर पर हाथ रखता हुआ उसके कान में फूंक मार देता है । इससे बच्चा दीक्षित हुआ समझ लिया जाता है ।

मृतक गृह में जहाँ शखाढाल का आयोजन किया जाता है वहाँ दूसरे व्यक्तियों का आना-जाना बन्द रहता है । इसके लिये प्रायः अलग ही एक मेडी ओवरा रहता है । सर्वप्रथम गुरु के निर्देश में कोटवाल द्वारा पाट पूरने की रस्म पूरी की जाती है । यह पाट सवा हाथ कपड़े पर पूरा जाता है । आगन पर पहले सफेद और उसके ऊपर लाल कपड़ा बिछा दिया जात है । यह कपडा ओछाड कहलाता है । इस ओछाड़ पर चांवलों से कोटवाल द्वारा पाट पूरा जाता है । इसमें सबसे ऊपर तीन तिबारियाँ बनाई जातीहैं । इनमें पहली तिबारी में रोहिदास तथा सुगनाबाई, दूसरी में निशान, तुम्बी, चिमटा तथा पगल्या, समाधि एव तीसरी मे डालीबाई व हरजी भाटी कोरे जाते हैं । पहली तिबारी के नीचे एक के नीचे एक करके पांच पाडव, गणेशजी, गणेशजी के नीचे मालदे एवं रूपादे राणी तथा इनके नीचे प्रहलाद भक्त एवं रजा बलि दिखाये जाते हैं । बीच वाली तिबारी के नीचे रामदेवजी का घोड़ा, घोडे के नीचे हिंगलाज का कलश जोत तथा उसके पास गय एवं माताजी को अकित किया जाता है । तीसरी तिबारी के नीचे हनुमानजी और उनके साथ चिमटा लिये कोटवाल, इनके नीचे जेतलजी व रानी तोलादे तथा नीचे राजा हरिशचन्द्र एव रानी तारामती माँडे जाते है ।

पाट के बीच में जहां कलश रखा जाता है उसके दोनों ओर एक तरफ त्रिशूल तथा दूसरी तरफ वासक बनाये जाते हैं । यह सारा पाट सवासेर चावलों से बड़ी बारीक कलाकरी लिये होता है । बीच पाट पर सातिया मांढा जाता है इसी सातिये पर कलश

थोपा जाता है । इस कलश में प्रसाद रूप में चूरमा बाटी ठांड दिया जाता है । यह प्रसाद 'भाव' नाम से जाना जाता है । कलश के ऊपर जोत दीपाई जाती है । यह जोत पूरी रात प्रज्वलित होती रहती है । इस पाट के चारों कोनो पर चार व्यक्ति बैठते हैं । इनमें एक गुरु तथा तीन मृतक के मुख्य रिश्तेदार होते है । ये पूरी रात एकासन में वहीं बैठे रहते हैं । पाट पूरने का सवाल इस प्रकार है -

'ओम गुरुजी, पेला जुग में काहे का पाट ? काहे का ठाठ ? काहे का मनरा ? काहे की चेली ? काहे का नाद ? काहे की जनोई ? काहे की पत्थर पावडी ?'

'ओम गुरुजी, पेला जुग में रूपा का पाट, रूपा का ठाठ, रूपा का मनरा, रूपे की चेली, रूपा का नाद, रूपे की जनोई, रूपे की पत्थर पावडी । जाप से पाट पूरे बैठ पालकी अपरापुर जावे । बना जाप से पाट पूरे पुन्न परडा जावे ।'

इसी प्रकार दूजा जुग में रूपे की बजाय सोना, तीजा जुग मे मोती तथा चौथा जुग में माटी का नाम ले लेकर सवाल रहता है ।

पाट के पास ही कडों की आग पर चूरमे नारियल की धूप खेई जाती है । इस धूप से जो लौ निकलती है उससे कलश की जोत की ज्योति दी जाती है । यह ज्योति लकडी पर कच्चे सूत के केंकड़े की सहायता से गिराई जाती है । यह केकडा पांच व्यक्तियों से स्पर्श कराया जाता है । कलश पर जोत गिरते ही सभी बत्तीस करोड देवताओं की जय-ध्वनि उच्चारित की जाती है । यह समय रात्रि के दस-ग्यारह बचे के करीब का होता है । जोत करने के पश्चात् जिस धर में आयोजन किया जा रहा होता है उसके किवाड़ बन्द कर दिये जाते हैं तथा भीतर एक पर्दा डाल दिया जाता है । धूप चेताने देने का यह सारा काम कोटवाल के जिम्मे रहता है । यों भी सम्पूर्ण शंखाढाल में कोटवाल की भूमिका बड़ी महत्व की होती है । यह गुरु महाराज कासच्चा सेवक होता है जो श्रद्धा पूर्वक उनका हर हुक्म बजाता है । इसीलिये इसे गुरु महाराज का हजूरिया भी कहते है । धूप चेताते वक्त भी कोटवाल का सवाल होता है -

'ओम गुरुजी, धूप से रूप, पेप से पूजा, पांचोई देव मुख माडे, धूप पांचो अलख है धरबार, पाप करीने धूप करे, बैठ पालकी अपरापुर जावे । बना जाप से धूप करे पुन्न परडे जावे । साध को सलाम ......'

पाट पूरने के पश्चात् भजनों का कार्यक्रम प्रारम्भ होता है । तंदुरा, मजीरा तथा खजरी के सहारे रात-रात पर भजनियों की भजन तन्मयता देखते ही बनती है । करीब 4 बजे शंख ढोलने की रस्म प्रारम्भ होती है भजन भाव के साथ साथ मृतक संस्कार विषयक अन्य क्रियाए भी होती रहती हैं एक बैंत आठ इच के करीब बरु मकई के

डठल) की खाटली (अर्थी) बनाई जाती है । यह अर्थी 'हिंगलाट' कहलाती है । इसे कच्चे सूत पर लपेट कर इसके चारो किनारों पर चार धागे बांध दिये जाते है । इन चारों धागों को एक बडे धागे से जोड दिया जाता है । यह धागा मकान के ऊंचे डंडों से बांध दिया जाता है । पाट पूरने के स्थान पर मिट्टी के रखे कूंडे में यह हिंगलाट लटका दिया जाता है । इस हिगलाट पर उडद के आटे अथवा दाभ नामक घास का पुतला बनाकर सुला दिया जाता है । पुरुष मृतक का शंखाढालहोने की अवस्था में सफेद और स्त्री मृतक की अवस्था में इस पुतले को लाल कपडा ओढ़ाकर झुलाया जाता है । ऊपर डांडे लगे सूत में 9 पीपली के पत्ते बांध दिये जाते हैं । ये 9 पत्ते 9 पेड़ियां (सीढ़ियां) कहलाती हैं जिनके द्वारा भगवान तक पहुचा जाता है । कूडे के पास शंख पड़ा रहता है । शंखाढाल में आये सभी सगे सम्बन्धी शख में पानी भर-भर कर हिंगलाट पर डालते रहते हैं । पानी डालते समय हर व्यक्ति अपनी अगुली में दाब की अंगूठी धारण करता है । शख से हिंगलाट पर पानी यह क्रिया 'शखढ़ाल' कहलाती है । यह दृश्य बड़ा भाव विह्वल होता है जबकि सभी लोग सिसकियां भर-भर अश्रुपूरित अवस्था में होते हैं ।

शखाढाल का यह प्रारम्भ यूं ही नहीं हो जाता । इसके प्रारम्भ में पृथ्वी को बधाने वाले गणदेव गणेश की 'आवीनी गुणेश देवता धरती बधावणा' के रूप में आरती गाई जाती है । शख ढोलते वक्त का सवाल इस प्रकार है -

'ढोले शंख पावे मोक्ष, करणी करतां नहीं है दोष, सोना सींगो रूपा खरी जामर पूछी । सवासेर धडो दूध रो देती तार तार माता गवंतरी' । ये शख पांच सात तथा नौ तक ढोले जाते है तब इनका सवाल कुछ भिन्न प्रकार का होता है । यथा - 'ओम गुरुजी । आद शख अलख जी पाया, अधर आसान से आवाज लगाया । दूजा शंख सगरे दिया, बांध काकण जग मोया । नाभ कमल का वास किया । तीजा शंख गुरजी को दिया बेला के कान सुनाया । चौथा शख गधा को दिया स्वर शंख नाम धराया । पांचवा शंख पांडवां को दिया, अधर आसन से आवाज लगाया । धूमर घट्टी झूमर पूंछ सोना सींगी रूपा खरी तार तार माता गवंतरी । ढोले शंख पावे मोक्ष । पांच शंख गवंतरी जाप से ढोले, बैठ पालकी अमरापुर जावे । बना जाप के शंख ढोले पुन्न परडा जावे । पांच शंख गवंतरी सपूरण व्हीया । गादी बैठ अलखजी भाखिया . ..'

शख ढोलते वक्त नौ हीपेड़ियों का भी सवाल होता है । एक-एक पेड़ी को पकड-पकड़कर 'जय' उच्चरित किया जाता है और सवाल बोला जाता है । 'ओम गुरुजी । पेली पेड़ी परभात तणी । सरव धात के सांसे चढ़ी ' राई राई जीव अन्धेरा हुआ ।

कुण माता ने कुण पिता ? गोरज्या माता ने ईसरजी पिता । कहा हंसा कहां जावोगे ? म्हे जावूगा राजा धरम के दरबार । धरम राजा लेखा मागे । नाम नामणी जापट मारे । कई दाण देके उतरोगे पार ? रूपा दाण देके उतरूंगा पार' । इसी प्रकार एक-एक पेडी पकडते हुए क्रमश- रूपा, सोना, कपडा, अन्न, जोड़ी, भोम, माटी, ताबा तथा गऊ दाण बोलकर नौ पेडी का सवाल पूरा किया जाता है ।

प्रात: कोई पाच बजे पेडी खोलकर कूडे में रख दी जाती है । तत्पश्चात् चार व्यक्ति इस कूंडे को लेकर बाहर किसी एकात में उस हिंगलाट को समाधिस्थ कर देते हैं, इस समय गावंतरी जापी जाती है, बोल है -

'ओम गुरुजी । आवो हंसा खोलो अमर टाटी । अमर टाटी में करे उजियालो । सगरा जीव समाधि लेवे । नगरा जीव मसाण जले । कुण खोदे ? कुण खोदावे ? किसनजी खोदे, विष्णु जी खोदावे । खोद्या-खोद्या सवा हाथ जमीं पाया सोना की मिट्टी । रूपा का पावड़ा । अडी खडी पीर केवाणां । चोथी खडी जीव केवाणा । सात धूल की मुट्ठी, सात दाब का तरमा । समाधि गावंतरी जाप कर रटे । बैठ पालकी अमरापुर जावे । बना जाप के समाधि लेवे तो पुत्र परड़े जावे । समाधि गावतरी सपूरण व्ही । गादी बैठता नाथजी भाखिया.....'

इस समाधि पर बाद में एक छोटी सी चबूतरी बना दी जाती है । इसके नारियल चूरमे की धूप दे दी जाती है । समाधि पूरी होने पर चारों व्यक्ति यथास्थान जाते हैं । अन्दर प्रवेश करने से पूर्व कोटवाल उनसे सवाल करता है जिसका जवाब प्राप्त कर ही उन्हे अन्दर प्रवेश दिया जाता है । सवाल जवाब इस तरह है -

तुम कहाँ गये ?

अपरापुर गये ।

कितने गये ?

पांच गये ।

(चार व्यक्ति तथा एक मृतक - हिंगलाट)

एक कहां छोड आये ?

अपरापुर में ।

शंखढ़ाल की यह क्रिया सम्पूर्ण होने के बाद अन्त मे आरती की जाती है और ाशवाला प्रसाद सभी को बॉट दिया जाता है । शंखाढ़ाल सम्बन्धी भजनों में मीरा, कबीर रूपादे तोलादे बाणिया आदि के भजन गाये जाते हैं यहा बाणिया

तिलोकचन्द तथा रूपादे का एक एक भजन दृष्टव्य है

(क) आज म्हारा वीगजी को राज ए,
सावग्यो मले तो देसां ओलमो जी,
गिरधारी मले तो देसा ओलमां जी.... आज0

केसर ने कस्तूरी काली क्यू पडी,
क्यू आयो हलदी में रग म्हारा राज .. आज0

नेनकड़िया टाबरिया री माताक्यू मर्गी.
क्यू दीदो बाली ने रंडपो म्हारा राज.... आज0

एकलडी मत करजे वन रो रूंकड़ो,
मती करजे गाया रो गवाल म्हारा राज... आज0

बना भायां की कसी बेनड़ी,
नही म्हारे जामणजायो वीर म्हारा राज.... आज0

सासुजी बना तो सुनो सासरो,
नहीं म्हारे पोता रो परवार म्हारा राज.... आज0

बाणिया तिलोकचन्द री विनती,
भाईडा रो बेकूंठा में वास म्हारा राज.... आज0

(ख) ए माता म्हानै भली तो परणाई नगरा देश में ओ जी ।
मेले जावा नी दे, जमले जावा नी दे,
भाईडाऊं मलवा नी दे ए माता म्हाने........
यो जुग तो लागै दोइलोजी ए माता म्हाने........
ए माता म्हानै करती ए डेरी री कुनरी जी
इतो आवता साधुडा टुकडो नाकता म्हाने. .....
ए माता म्हारी म्हानै करती ए पंथरी बावड़ी जी
इतो आवता साधुड़ा पाणी पीवता म्हाने........
ए माता म्हानै करती ए बनड़ी रोजडी ओ जी

इतो आवता शिकारी गोली मारता म्हाने. . .

ए माता म्हाने करती ए पारस पीपरी ओ जी

इतो आवता पथीडा छाया बेठता ओ जी म्हाने.... ..

ए माता म्हारी राणी रूपादे री विनती ओ जी

इतो सुणजो सूरतां लगाय ए माता म्हाने.. .

इस प्रकार हम देखते है कि शंखाढाल एक ऐसा सस्कार है जो न केवल वर्तमान जीवन को ही सुखमय देखता है अपितु आगे का जीवन भी अच्छे सांस्कृतिक रूप मे जन्म धारण करे, इस ओर भी यह शखाढ़ाल मनुज को मृत्युलोक से अमरत्व की ओर पहुंचता है ।



14

रहस्य करणी माता के चूहों का

राजस्थान में देवियों के कुल नौ लाख अवतार माने गये हैं । प्रसिद्ध रणक्षेत्र हल्दीघाटी के पास नौ लाख देवियों का स्थान वडल्या हींदवा आज भी बहुप्रसिद्ध है । इस सम्बन्ध में यहा के देवरो मे नौरात्रा मे रात-रात भर जो भारत गाथा गीत गाए जाते है इनमे इन देवियों का यश वर्णन मिलता है । इन साधारण असाधारण देवियों में ८४ असाधारण शक्तियुक्त होने से वे महाशक्तियां कही गई हैं । इनमें करणीजी एक हैं ।

चारण जाति में मुख्यत- 4 देवियाँ हुई - आवड़, कामेही, बरवडी और करणी । इन चारों ने राजपूत जाति की भाटी, गौड, सिसोदिया एव राठौड़ शाखा पर प्रसन्न हो इनके बडे-बडे राज्य स्थापित किए । करणीजी ने जोधपुर एवं बीकानेर नामक शक्तिशाली राज्यो की स्थापना की ।

देशनोक करणीजी का मुख्य स्थान है । यहीं इन्होंने साधना तपस्या की । यह चारणों की तो कुलदेवी है ही पर अन्य कई लोग इष्टदेवी के रूप से करणीजी की मान मनौती करते है । वर्तमान करणी मन्दिर से दो किलोमीटर दूर नेहड़ी नामक प्रसिद्ध स्थान है । करणीजी सर्वप्रथम यही रहती थी । इनके पास दस हजार गाएं थीं । यहीं जिस सूखे ठूठ के सहारे वह बिलौना करती, वह ठूंठ आगे जा कर हरा वृक्ष बन गया और तब के दही मथने के छींटे आज भी उस जाल वृक्ष पर लगे हुए हैं । नेहडी विलोवणे की रस्सी को कहते है । कोई-कोई मथदण्ड को भी कहते हैं । इसीलिये यह स्थान नेहड़ीजी के नाम से प्रसिद्ध है । इसी जाल वृक्ष से सटी करणीजी की छोटी-सी मन्दरी बनी हुई है । अभी वशीदान चारण इसके पुजारी है जो करीब ८0 वर्ष के है । यहा आसपास में कोई बस्ती नही है । यह पूरा स्थान करणीजी का ओयण है, जहाँ कोई खेती नहीं होती ।

इतनी सारी गायों की देखभाल के लिये करणीजी के पास पर्याप्त सख्या में चारण थे दिनभर यहा काम करने के पश्चात् करणीजी साधना के लिये जहाँ आज मन्दिर बना

है वहां आ जाती । तब करीणी ने देशनोक नही बसाया था । यहां तपस्या करते-करते उनके नाक तक बालू जमा हो गई तब उनकी रक्षा के लिए अचानक चट्टान आई । आज भी पूरी की पूरी चट्टान करणीजी के मन्दिर के ऊपर स्थिर है । करणीजी का मन्दिर मठ कहलाता है । करणीजी की जहा मूर्ति स्थापित है उस गुम्भारे को करणीजी ने स्वय बनाया था । यहीं वह ध्यान किया करती थीं । वह स्थान जमीन स्थल से थोडा नीचे है ।

यह गुम्भारा पूरी की पूरी चट्टान लिये है । चट्टान मे जगह-जगह बिलनुमा छिद्र है जहा चूहे निवास करते है । ये चूहे कई हैं, पूरे मन्दिर में जहां तहां चूहे ही चूहे देखने को मिलेंगे । दर्शनार्थी को सम्भल-सम्भल कर इन चूहो से बचते हुए देवी तक दर्शन को पहुचना होता है । जो भी दर्शनार्थी आता है । इन चूहों के लिये लड्डू और बाजरा लाता है । चूहे इनका भोग लेते रहते हैं ये चूहे इतने अभ्यस्त हो गये है कि इन्हें किसी दर्शनार्थी का कोई भय नही है । कभी-कभी चूहे दर्शनार्थी के शरीर पर चढ जाते है और इसे शुभ ही माना जाता है । इतने अधिक चूहे होने के कारण करणीजी को चूहों वाली देवी भी कहते हैं ।

इतने सारे चूहे और खाने को भरपूर माल मिष्ठान्न होने के बावजूद मुझे सारे के सारे चूहे मडीयल, रेगते हुए चलने वाले, मांदे और खून से ऐसे सने लगे जैसे जगह-जगह से टीच दिए गये है । प्रत्येक की पूछ के नीचे निकली मोटी गाठ उनके लिए चलना मुश्किल किए हुए थी और चूहे ऐसे लग रहे थे जैसे तेल से भीगे हुए है । एक भी चूहा मुझे मस्त प्रफुल्ल नहीं दिखाई दिया । मैंने वहॉ सेवारत लोगों से पूछा भी पर कोई मुझे सन्तुष्ट नहीं कर सका तब मैने लोक देवता कल्लाजी का स्मरण किया । उन्होंने अपने सेवक सरजुदास के शरीर मे प्रविष्ट हो इस रहस्य की गुत्थी सुलझाते हुए बताया कि नेहडी के वहां अचानक कानजी ने आक्रमण कर दिया तब उससे भयभीत हो करणीजी के साथ रह रहे सारे चारण भागते बने । उन्हें भागते देख करणीजी ने उन्हें जोश दिलाते हुए कहा भी कि, 'ऊंदरा री नाई क्यूं भागरिया हो ?' (चूहों की तरह क्यो भाग रहे हो) पर वे चलते बने । इधर करणीजी ने कानजी को बुरी तरह परास्त कर दिया तब वे सारे चारण आ उपस्थित हुए और पछताने लगे, करणीजी ने उन्हे कायर कहते हुए चूहा बनने का श्राप दे दिया । मन्दिर मे जो चूहे हैं, वे ही सारे चारण हैं इनकी कोई अन्य गति नही हुई । एक चूहा मरने के बाद भी चूहा ही बनता है, देवी आज भी इन पर कुपित है जब देवी का रोष उतरेगा तब इनकी सुगति होगी । देवी के साथ रहने वाले होने के कारण देवी ने उन चारणों को चूहे तो बना दिए मगर खाने पीने और रहने में उन्हें किसी प्रकार की कमी नहीं आने दी ।

इन चूहों में सफेद चूहा काबा है यह देवी का प्रतीक माना जाता है

इसके दर्शन होना बडा मगलकारी मानाजाता है । यह बडा मस्त प्रफुल्ल है । दर्शनार्थी जो भी आता है, चार-चार छह-छह घण्टा प्रतीक्षा करता रहता है पर काबा के दर्शन करके ही लौटता है । यही सुना कि करणीजी का एक रूप सफेद चील है जो इसके दरसण कर लेता है वह तो बडा ही भाग्यशाली माना जाता है ।

देवी के चूहे बडे पवित्र माने जाते है । इनसे कभी कोई बीमारी नहीं फैली । जहा चूहा से प्लेग फैलता है, वहां इन चूहों का चरणामृत पी कर प्लेग से ग्रसित सैकडों आदमी मौत के मुह में जाने से बच सके । यहां के देवी भक्त अमरसिह चारण ने बताया कि वि स 1975 में प्लेग के कारण गाव खाली हो गये तब सैकड़ों लोगों ने यहा आकर बसेरा लिया और चूहो का अमृत जल पी कर अपने को चंगा किया । करणी जी की इष्टदेवी तेमडाजी थी । एक लकडी की बनी पेटी में इन्हें रखकर करणीजी प्रतिदिन इनकी सेवापूजा करती थीं । देशनोक में तेमडाजी की मदरिया में यह पेटी आज भी रखी हुई है । मुझे इसके दर्शनों का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ ।

करणीजी की मूर्ति जैसलमेर के पीले पट्टी पत्थर पर बनी हुई है । इसे वहीं के एक अन्धे खाती ने खोदकर बनाई । इसका नाम बना था । करणीजी ने इसे बनाने का सपना दिया था । इसे बनाने में तीन माह लगे । गुम्भारे में इसकी स्थापना संवत् 1595 चैत्रशुक्ला चतुर्दशी को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में हुई । गुम्भारा वि. सं. 1594 की चैत्र कृष्णा द्वितीया को करणीजी ने अपने स्वर्गवास के 5 वर्ष पूर्व बनाया । 21 माह गर्भवास कर 150 बरस जीने वाली जोगणी करणी आज भी उतनी ही शक्तिशाली बनी हुई है जिसकी धाम दिन दूनी रात चौगुनी बढती जा रही है । देवी उन सब पर रीझती है जो सच्चे मन से उसे राजी कर लेता है ।



15

विश्व के विचित्र खजानों वाला चित्तौड़

चित्तौडगढ़ सारे गढ गढैयों का सिरमौर है इसीलिए 'गढ तो चित्तौडगढ़ कहा गया है । प्रारभ में यह चित्रकूट के नाम से प्रसिद्ध रहा । चित्तौड नाम उसके बाद पडा । आज इस चित्रकूट को सब भूल चुके है । जानने का चित्तौड को भी हम पूरानही जान पाये है । जितने भी महल खंडहर या अन्य ध्वसाशेष है, वे इतिहास की कलम पर अजाने ही बने हुए हैं । कोई जान भी नही पायेगा उस पूरे परिवेश को, इतिहास के, रचना ससार को, युद्ध को, योद्धा को, जर्रे को, जौहर को, दृश्य को, उद्देश्य को । उन सबको जानने की कोशिश भी किसने की । चित्तौड़ कई बार जाना हुआ । जब-जब भी गया, बहुत कुछ नया ही नया हाथ लगा । यहां उसी नये को एक नजर दी गई है ।

राजस्थान में कई गढ गढैया है । सबके अपने-अपने रहस्य रोमांच भरे किस्से है । इन सबमें चित्तौडगढ की कहानी सबसे न्यारी है । शौर्य, बलिदान और स्वाधीनता की जो लड़ाई यहा लडी गई, वह विश्व-इतिहास की सर्वाधिक प्रेरक, प्रगाढ और पौरूषपूर्ण कहानी है ।

यह एक ऐसी धरती है जिसने सदा खून का इतिहास लिखा है या फिर अग्नि-ज्वाला जौहर का, सतीत्व का परिचय दिया है । जब-जब इस धरती को प्यास लगी, इसे पानी की बजाय खून मिला है । अनवरत युद्ध करने वाले वीरों ने रणांगण में मुगलों का मास और हिन्दुओं का रक्त पीकर अपनी भूख और प्यास मेटी है, पर शौर्य और स्वाधीनता का यश: प्रताप कभी नहीं बुझने दिया । लड़ाई के दौरान वह घड़ी भी आई, जब नाई ने अपने राणा का मस्तक जाते देख उसका ताज अपने सिर पर लिया, मगर पराजय का कलंक कभी अपने माथेनहीं पोता ।

भक्ति के रंग में भी इस धरती ने जो रंग दिया वह बेजोड मिसाल है । पन्नाधाय की स्वामीभक्ति को कौन भूल सकेगा । भोज ने तो भाक्ति के खातिर राजगद्दी तक छोडी और अपना सर्वस्व शिव भक्ति को समर्पित कर दिया शिव लिंग की सेवा के लिए जो

हाथ उन्होने अर्पित कर दिया उसमे कभी तलवार तक नहीं ली और मीरा अपने आराध्य शालिग्राम में ही मगन मस्त हो गई । सारा जगजग भूल गई । भोज और मीरा दोनों ही अपनी-अपनी भक्ति मे आकठ, आजीवन निमग्न रहे । दोनों के जुदे-जुदे रास्ते पर एक दूसरे के लिए कोई बाधक नही बना ।

सुन्दरता की सम्राज्ञी पद्मिनी का भी रंग देखिये कि मुगल बादशाह तक उसकी चर्चा सुन सुधहीन हो गया । अकेली पद्मिनी के पीछे कितनी यातनाओं से गुजरना पड़ा राणा रतनसिंह को, गोरा बादल को, सारे सैनिकों को, मगर वाह री पद्मिनी, मुगलों की छाया तक तुझे नही लील पाई और तू जौहर कर अपनाजलवा दिखा गई ।

अकथ कहानी और अखूट गाथा कह रहा है यहां का जर्रा-जर्रा । सारे महल खडहर ऐश्वर्य और वैभव का, शौर्य और शूरापन का उन्माद लिए आज भी अपनी ओलखाण दे रहे हैं । इन्हें देखते जाइये, कभी मन नहीं भरेगा । जितना जो कुछ सुनने-जानने को मिलेगा, उतना ही और रहस्य गदराता हुआ मिलेगा ।

चित्रकूट का किला :

'गढ़ तो चित्तौड़गढ' का नाम तो सभी जानते हैं मगर चित्तौड़ से भी प्राचीन किला तो चित्रकूट है जिसे लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य ने बसाया था । इतिहास में मौर्यवंश बड़ा प्रसिद्ध है । राजा मोरध्वज से इसका प्रारंभ हुआ । मोरध्वज उत्तराखण्ड का था, जिसने धार पर चढ़ाई कर राजपद पाया । रघु भी इसी मौर्यकुल में हुए । तेरहवीं पीढी में चन्द्रगुप्त हुआ । अपने भाइयां से झगड़ा होने के कारण वह निकल पडा । यह कह कर कि यदि एक अलग चित्रकूट न बसाऊं तो असल मरद मत कहना । चन्द्रगुप्त की इसी वाणी ने चित्रकूट को जन्म दिया । चित्तौड के किले पर वर्तमान में जो 'डियर पार्क' है वही चित्रकूट है ।

यह अजीब संयोग ही रहा कि जब से चित्रकूट की नींव पडी, तब से यहा रक्त ही बहता रहा है । जौहर और जुद्ध (युद्ध) का ही तो इतिहास है यहां । एक से एक बढ चढकर वीर वीरांगनाएं यहां हुई । सुबह नाश्ते में पूरा पाड़ा खा जाने वाले महाबलि खुरसाण यहा हुए । दस हाथियों का बल लिये जयमल जैसे युद्धवीर हुए । गोरा बादल जैसे शूरमा हुए । जवाहर बाई जैसी वीराणी हुई । पत्ता जैसे दमखमवाले वीर और उनकी मा, पत्नी और बहन ने जो कमाल युद्ध के दौरान दिखाया, इतिहास उसे कहा अपनी कलम दे पाया । ऐसे चित्रकूट-चित्तौड़ को मिटाने कई आये, पर वे स्वयं मिट गये । चित्रकूट चित्तौड आज भी अमर है ।

चित्तौड का किला एक गाय की तरह है । चित्रकूट उसका मुख है गोमुख । इस

गोमुख में प्रवेश देते हुए चौकीदार ने हमसे कहा - 'जानवरो का बडा खतरा है। जा तो रहे हो मगर पूरी सावधानी बरतना'। भीतर धुसते ही जगली सुअरों की आहट और आक्रामक रवैया। हम आगे बढ ही नही पाये। चौकीदार ने हाक पिलाई और लट्ठ बजाया। हमे इशारा दिया, बोला - 'रास्ते रास्ते चले जाओ। जरा होशियार रहना। नील गाय, अजगर, रीछ कुछ भी मिल सकता है।' हम बढ़ते रहे। और कोई नही था देखने वाला। सुबह-सुबह हम ही थे। चौकीदार को क्या मालूम कि हमे वह सब नही देखना है जिसे सब लोग देखने का उत्सुक रहते हैं। हम तो वह देखने आये है जिसे कोई नही देखता। कोई जानता भी नही।

सीधे चलते-चलते आखिर छोर तक। खंडहर, चट्टानें और वहां की रचना देखी। लगा जेसे सारा वातावरण एक सुव्यवस्थित पुरातन किला होने की मौन कथा लिये मुखरित होना चाहता है तब कितना गाजगूंज भर समय रहा होगा यहा बैठक का। एक ही चट्टान का विशाल पोखरा देखा। इसी पर बैठक मंडती थी और अमल तमाखु के साथ बडी-वडी मत्रणाएं चलती थी। पूरा किला ऊपर से उबड खाबड ध्वसाशेष लिएपर भीतर से, अन्तर की अजीब सी भूलभूलैया गुप्त कूट। यह अन्तरवासा है जिसमे नारिया रहती थी। दुश्मन उनका भेद तक नहीं पा सकता था। तीन-तीन मजिले अन्तरवासे - रनिवास। उनमे पहुंचने के कठिन रास्ते। हवादान। पानी की गुपचुप नालिया। भोजन पहुचाने के चीरे।

हुक्का पानी लेने, चौकरी सी करने और चौपाल जोड़ने की चौकिया। सैनिक हर समय तैयार रहते। घोडे दौडते रहते। आदेश-निदेश चलते रहते। तोपें बन्दूकें चलती। ऊपर राममंदिर के खडहर। राम के वंशज होने से। अधिकतर लड़ाइया राजपूत-राजपूत के बीच लडी गई। मुसलमान तो बहुत बाद में आये। लडाई होती मुख्यत: नारी प्राप्त करने को। योद्धा मर जावे, नारी मर जावे परन्तु उसका शील भंग न हो पाये, इसीखातिर जौहर होते। इसी खातिर केसरिया धारण किया जाता। नानी बारी (छोटी खिड़की) जिससे सैनिक निकल शत्रुओं पर टूट पडते और कोई दुश्मन गर्दन झुका भीतर प्रवेश करने का दुस्साहस करता तो उसका सर कलम कर दिया जाता। कैसे बनाये गये होंगे ये सब। किसने बनाये होंगे। दुर्ग गृह निर्माण की कला कितनी उन्नत उत्कर्ष परथी। कौन होते थे ये नक्काश। अर्किटेक्ट ॥

यहीं एक दीवाल में तीन प्रस्तर प्रतिमाएं लगी देखीं जिनके वक्षस्थल कटे हुए है। दुश्मन का पहला वार ही नारी के वक्षस्थल पर होता। जब प्रतिमाओं के यह स्थिति कर दी जाती तब साक्षात नारी पर कितने हुए होंगे प्रतिमाओं से थोडी दूर

धेरधुमेर वट वृक्ष, जिसके नीचे शिवलिंग स्थापित किया हुआ है । न जाने कब से भूखे-सूखे शिवलिग को हमने सबसे पहले अमल-पानी की धार दी । बड की महिमा का क्या कहना । करोडों बीज नष्ट होते है तक एक बड फलता है । बारह-बारह कोस तक में धेराव मे पसरे बड की उम्र ही हजार बरस होती है । उसकी बाद उसकी बडवाई जड फिर वड का रूप धारण करती है । यह जड कोई सामान्य जड नहीं होती । ठेठ पाताल तक इसकी पहुच होती है ।

परकोटे से दिखती थोडी दूर बडी चर्चित मोहर मगरी । मजदूरों द्वारा अकबर ने तैयार करवाई यह मगरी । मजदूर एक-एक टोकरी मिट्टी की डालते और बदले में एक स्वर्ण मुद्रा मोहर पाते । ऐसे आदमियों के, औरतों के जत्थे के जत्थे उलट पड़ते । गांव के गाव उलट पड़ते । आसपास के दूर-दूर तक के । ये मजदूर टोकरी लेकर एक सिरे से आते । टोकरी डालते, मोहर पाते और दूसरे सिरे से निकलते वक्त मौत के धाट उतार दिये जाते ।

मोहर और मृतकों के कितन ढेर लगे होंगे तब । अकबर किले की ऊंचाई तक यह मगरी खड़ी कर वहां से परकोटा उड़ा किले तक पहुंचना चाहता था ।

डियरपार्क मे माईडियर चित्रकूट का यह वैभव आज अपने व्यतीत भव की गौरव गरिमा से अनुष्ठानित रूपाकारों का बेरूप बना अजान पड़ा है । कब कौन ऐतिहासिक अध्येता, खंडहरवेत्ता, पुरातत्ववेत्ता इसकी सुध लेगा ।

कुंभा महल :

चित्तौड में जितने महल-अवशेष है उनमें कुंभा महल सबसे अधिक विशाल, फैला हुआ और भव्याकृति लिये है । भोज जब मीरांबाई से विवाह कर लौटे तो सूरजपोल दरवाजे पर बडा सत्कार करने के पश्चात इसी महल में उनका बधावणा हुआ । यह बधावणा विशेष उमग और हरख लिये था । इसके दो कारण थे । एक तो यह कि भोजजी जब विवाह करने गये तो उनके साथ पांच ही व्यक्ति थे । युद्ध का वातावरण होने से अधिक नहीं जा पाये । दूसरा यह कि वे शादी ही नहीं करना चाहते थे पर उन्होंने सब का मन रखा । फिर वे ज्येष्ठ पुत्र भी थे । राणा सांगा तो इतने प्रसन्न थे कि उन्होंने भोजजी को रहने के लिये कुंभा महल ही बख्शीश में दे दिया ।

यह महल नौ खंडिया था । पूरे महल के नीचे अन्तरखड है । जब संकट आ धेरता तब सबके सब भीतर की ओर चले जाते । इससे दुश्मन को कोई भेद नहीं मिल पाता । जहां मीरा रहती उसी के सामने दासियां रहती । महल में महाराणा कुंभा ने जो लाल रग था वह अभी भी अपनी छवि दे रहा है

हमने मीराबाई के रहने का महल देखा । स्नान घर देखा जिसका पानी भीतर ही पक्की नालियो में होकर निकलता । एक ओर खडहर के रूप में बाहर से आने वाली दासियों ठुकरानियों के बने निवास भी देखे । वह भुवारा भी देखा जिसमें किसी दासी को चुगलखोर अथवा धोखेबाज होने पर डाल दिया जाता जो ठेठ नीचे अंधेरे गुप्प में जाकर घुट-घुट कर अपनी इहलीला समाप्त कर देती । इनके अतिरिक्त हाथियों के ठाण, खजाने, सभा मडप, मुजग करने का विशेष चौक (चबूतरा) भी देखा । वह तलधर भी देखा जिसमें तीन बार जौहर हुए । हमने इसके भीतर जाकर वह जौहर की राख अपने मस्तक पर लगाई ।

यही जमीन मे गडा एक बडा सा लौहखंभ देखा । वस्तुत. यह लौहखभ नही होकर तोप का गोला था जिसे दुश्मन ने दागा था महल उडाने के लिए परन्तु आगे मदिर होने के कारण महल तो बच गया पर मंदिर ध्वस्त हो गया और गोला लौहखभ बन जमीन पर जा गड़ा जो आज हिलाये भी नहीं हिलता । यही महल के एक ओर जमीन की एक लंबी पूरी लाल पट्टी है । ऐसा लगता है जैसे छोटे-छोटे पत्थर कणों को गाढा रंग दे यहा बिछा दिया गया है । पूछने पर कल्लाजी ने बताया कि हाथियों को यहा मद में मस्त कर आपस में खूब लड़ाया जाता था । यह लडाई इतनी भयंकर होती कि हाथी लहूलूहान हो जाते । उसी लहू से यह जमीन और ये कंकड सने हुए है ।

यही महल के अहाते में बनी देवनारायण की मंदरी देखी । लोकदेवता के रूप मे थरपित देवनारायण की गुजरों मे तो बडी जबर्दस्त मानता है । पड बांचने वाले भोपे देवनारायण की पड़ फैलाकर कई रातों तक विशिष्ट गीतगाथा के साथ उसका गायन वाचन नर्तन करते हैं । इन्हीं देवनारायण ने महाराणा प्रताप को शक्ति स्वरूप चेटक धोडा दिया था । भीलवाड़ा के श्रीलाल जोशी ने देवनारायण की पडबनाने में बडा नाम कमाया । उनके पडचित्र पर भारत सरकार ने पाच रुपये का एक रंगीन डाक टिकिट भी जारी किया ।

पद्मिनी महल –

चित्तौड़गढ़ की रानी पद्मिनी का नाम शायद ही कोई ऐसा हो जिसने न सुना हो । सुन्दरता में यह इतनी अद्वितीय बेजोड थी कि अल्लाउद्दीन जैसा मुगल बादशाह तक पगला गया और सब कुछ दाव लगाकर भी रानी को पाने की हवस कर बैठा । रानी का असीम सौन्दर्य और रूप लावण्य तो उसके रोम-रोम से फूट पड़ता था । ऐसी सुन्दर और गध रस वाली रानी न पहले कभी हुई और न उसके बाद ही देखी सुनी गई ।

का सारा पद्मिनी के रूप से चकित रहता था रूप का

सुन्दरता का ऐसा अप्रतिम अलौकिक कोनसा जादू था कि उसके कुण्ड के पानी तक से महल के चारों और सरोवर में जो रक्त कमल बोये थे वे सारे सफेद हो गये । ये सफेद कमल आज भी वहा देखने को मिलते हैं । जैसी रानी सुन्दरी थी, वैसा ही उसके अनुरूप उसके लिए राणा रतनसिह ने महल बनवाया था । अपनी सात रानियों में पद्मिनी को ही रतनसिंह सर्वाधिक प्यार करता था ।

रानी का यह भेद दिया एक नायण ने जो उसकी अन्तरंग सेविका बनी हुई थी । प्रतिदिन यह रानी को नहलाती एव सिणगार कराती इसलिए रानी का अग-अग उसका जाना पहचाना था । रानी बोलती जैसे फूल खिलते, रूप झरता । उसका शरीर एक विशेष प्रकार की खुशबू लिये था । यह सब सुन अल्लाउदीन सुधबुध खो बैठा । उसने कहला भेजा कि वह पद्मिनी को देखना चाहता है ।

राणा रतनसिह क्या करता । करने को उसने यही किया कि सारा चित्तौड़ भले ही हाथ से निकल जाय पर पद्मिनी मुगलों के हाथ न पड़ने पाये । इसके लिए पूरी रक्षा व्यवस्था की । रानी के महल के चारों ओर कड़ा पहरा लगवा दिया । पैदल घुड़सवार कई सैनिक तैनात कर दिये । यहा तक कि बाईस हाथी मुकाबले के लिए सशस्त्र अंगरक्षक प्रहरी बना दिये गये ।

रानी पद्मिनी जितनी सुन्दर थी उतनी ही गुणवती एवं बुद्धिमती भी थी । उसने राणा से कहा घबराने की कोई बात नहीं है । अल्लाउद्दीन को बुलवा लें । मैं महल की सीढ़ियों पर उल्टी खडी हो जाऊंगी । अल्लाउद्दीन को पास के महल में टंगे कांच में मुझे दिखा देना ।" यही किया गया । अल्लाउद्दीन तो रानी की पीठ देखकर ही मोहित हो गया । वहा से विदा होते समय शिष्टतावश रतनसिंह दरवाजे तक पहुंचाने गया कि वहा छिपे अल्लाउद्दीन के हथियारबद सिपाहियों ने रतनसिंह को कैद कर लिया । हाथों और पांवों में बेडिया डाल दी और दिल्ली ले गये । वहां से फरमान भेजा गया कि पद्मिनी को भेजी जाय अन्यथा चित्तौड बच नहीं पायेगा ।

ऐसे संकट के समय में रानी ने अपना धैर्य नहीं खोया । उसने मंत्रणा एवं सहायता के लिए अपने अस्सी वर्षीय देवर गोरा को मनाया जिसे राणा ने एक संधि के लिये मना कर देने पर देश निकालादे दिया था ।

गोरा, रानी और बादल ने गुप्त मंत्रणा कर बादशाह को कहलवा भेजा कि रानी दिल्ली पहुंचेगी मगर अकेली नहीं । उसके साथ पूरा लवाजमा होगा । कुल सातसौ डौले आयेंगे । इनमें रानी की दासियां होगी । रानी सबसे पहले राणा से मिलना चाहेगी ।

को तो पद्मिनी नाम का नशा चढा हुआ था उसने सब बातें मानलीं

और पद्मिनी के आने की, उससे मिलने और उसे अपनी मल्लिका बनाने की घड़िया गिनने लगा।

इधर सात सौ डोले तैयार किये गये। प्रत्येक डोले मे दासी की जगह हथियारबंद सिपाही बिठाया गया। सबसे आगे पद्मिनी का डोला रहा जिसमे छदम वेश में गोरा व बादल बैठे। रानी अपने महल में ही रही। विदा देते समय उसने अपने बारह वर्षीय पुत्र बादल को रक्त का टीका किया और कहा हुसियार सूं जाइजो। बाबल नें लाइजो। जो बाबल न आवे तो थाई मत आइजो।' (होशियारी से जाना। पिता को लेकर आना। यदि पिता न आ सकें तो खुद भी मत आना।)

डोले चले। दिल्ली पहुंचते ही प्रमुख डोला पद्मिनी का रतनसिंह के पास भेज दिया गया। वहां जाते ही दोनों वीरो ने हाथों पांवो में बेडियों से जकडे बंदी रतनसिंह को जंजीरों सहित उठाया और डोले में बिठाकर वहा से रवाना कर दिया।

गोरा बादल दुश्मनों पर टूट पड़े। खिलजी के सैनिक भौचक्के देखते रह गये। देखते-देखते सभी डोलों से वीर निकल पड़े और घमासान युद्ध छिड़ गया। सभी वीर बड़ी बहादुरी से लड़े। अंत में एक मुसलमान सैनिक ने बादल की पीठ में भाला झोंक कर उसे ऊपर उठा लिया और गोरा से कहा - "देख इस बालक को। क्या तू भी ऐसी ही मौत मरना चाहता है?" इस पर गोरा बोला - "ऐसे कितने हीवीरों को तुम उठालो तो भी मैं विचलित होने वाला नहीं हूँ।" लेकिन मुगलों की अपरिमित सैन्य शक्ति के आगे इन वीरों की कब तक चलती। अन्त में गोरा की छाती में भी बल्लम धुसेडकर उसका काम तमाम कर दिया।

गोरा व बादल दोनों काका-भतीजों ने मिलकर जो रणकौशल दिखाया वह इतिहास का अमर अध्याय बन गया। सात दिनों के भीतर ऊंट पर दोनों रणबांकुरो की लाशें चित्तौड़ पहुची। ये लाशें फूलकर इतनी क्षत विक्षत और भयावह हो गई थीं कि पद्मिनी को नजदीक से नहीं दिखाकर महल के पीछे बने गजसाल के आखरी छोर की ऊंचाई पर बनी छतरी से दिखाई गई।

दोनों वीरों की पास-पास चंदन की चितायें की गई। चिता स्थल पर दोनो की कीर्ति स्मृति में छतरियां बनवाई गई। ये छतरियां पूरे चित्तौड़ के किले पर बनी अन्य छतरियो से सर्वाधिक ऊंची है इन वीरों ने जैसा जलवा दिखाया वैसा ही उनकी आकाश छूती ये छतरियां आज भी उन वीरों की अमरता को अंकित किये हैं।

चित्तौड़ जब जब भी जाता हू, पद्मिनी के शूर वीरत्व सने सौन्दर्य की कथा

गाथाओ मे अभिभूत हो जाता हू और गोरा-बादल के अटूट समर चित्र को याद कर उनकी विभूति को मस्तक नवाता हूं ।

सुप्रसिद्ध कालिका मंदिर के पास पीछे की ओर नौ गज पीर की मजार भी यहां के दर्शनीय देवस्थानो मे से एक है । नौ गज की यह मजार पक्की नहीं होकर केवल पत्थर पर पत्थर खडक पर बनाई हुई है । इस मजार पर सभी जाते है । मिन्नत मागते है । मनौती पूरी करते हैं पर इसके संबंध में किसी को कोई जानकारी नहीं है ।

यह मजार है शमशुद्दीन अमान की जो काबुल के बादशाह का लडका था । कहा जाता है कि लाखा के एक लडकी थी जिसका नाम हंसकुवर था । यह 25 फीट की थी । इतनी लबी होने के कारण बहुत तलाश करने बाद भी लाखा को उपयुक्त वर नहीं मिल पाया तब खुला फरमान जारी करवाया गया कि हंसकुंवर से बडा जो भी लडका होगा उसके साथ इसका विवाह कर दिया जायेगा ।

फरमान सुन काबुल के बादशाह का लडका शमशुद्दीन अपने साथ कुछ बरातियों को लेकर चित्तौड आ धमका । यह नौ गज का था । उम्र में हंसकुंवर से तीन बरस बड़ा कुल 18 बरस का था । सूरजपोल पर तोरण बांदने की सारी तैयारी की गई । तोरण बांदने के लिए ज्योंही शमशुद्दीन ने तलवार ऊंचाई कि पीछे से हंसकुंवर का मामा आ लपका और देखते-देखते दुल्हे व बरातियों का सर कलम कर दिया । इस मारकाट में हंसकुंवर भी बच नहीं पाई ।

सूरजपोल पर ही हंसकुंवर की दाहक्रिया कर दी गई जबकि दुल्हे व बरातियों को वहा लाया गया जहां वर्तमान में मजार बनी हुई है । शमशुद्दीन की इस मजार के पास अन्य कब्रे हैं जो बरातियों की हैं । हंसकुंवर का मामा यह कतई नहीं चाहता था कि कोई मुसलमान हिन्दू बालकी से विवाह करे ।

यह घटना संवत् 1452 ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया की है । इस दिन मजार से आवाज पडती है - "है कोई काबुलवाला जो यहां आकर मुझे काबुल ले जाये ।" मृतक अमान का मन आज भी काबुल लगा हुआ है इसलिए मजार भी पक्की नहीं बनने दी जा रही है । पत्थर पर पत्थर खड़के हुए कच्ची बनी हुई है ।

दीवाली पर तो रात्रि को इस मजार के यहा मुसलमान पीरों की दिव्य आत्माओं का मेला भरता है तब बाकायदा जाजम ढलती है और सामुहिक भोज का आयोजन किया जाता है । उस समय का यहां का वातावरणा ही कुछ निराला ठाठ लिये होता है ।

इस मजार की यह बड़ी मानता है - प्रतिदिन यहां भक्त लोग आते जाते रहते हैं

सुनने में आया है कि जो लोग मजार पर चढाने के लिये चादर लाते है, चढ़ाते समय वह छोटी पड़ जाती है ।

अब तक तो यही सुनता रहा कि चिता बिना कोई जौहर नही होता परन्तु जब बार-बार चित्तौड़ जाना हुआ और वहां के खडहरो का नजदीक से अध्ययन अन्वेषण किया तो पता चला कि यहां एक जौहर ऐसा भी हुआ जिसके लिए किसी प्रकार की कोई अग्नि प्रज्वलित नहीं की गई ।

यों इस किले पर सत्रह तो अग्नि जौहर ही हो गये । तीन जौहर तो कुभा महल में ही हुए जहा गख के रूप मे आज भी जौहर की निशान मौजूद है । एक जौहर रानी पद्मिनी ने अपने महलों के पीछे किया । इस जौहर में रानी अकेली नहीं थी । पूरा लवाजमा था ।

कीर्तिस्तम्भ के पास भी जौहर भूमि है जहां करमावती ने जौहर किया । विजय स्तभ के पास भी ऐसा ही एक जौहर ओसवालों की स्त्रियों ने किया पर सबसे बडा जौहर था जौहर कुड वाला जिसमें सर्वाधिक औरतें सती हुई ।

आज जिसे जौहर कुड कहते हैं, वह कभी जल कुड था । यह करीब दौ सौ फीट लम्बा, सौ फीट चौड़ा और तीस फीट गहरा है । इसके तल मे बावन चौकिया बनी हुई है । कभी किसी ने नहीं सोचा कि इस कुड में ये चौकिया कहा से आई ? क्यों बनी ? क्या कारण है कि बहुत अधिक पानी बरसने पर भी इस कुड में पानी की एक बूद भी नही ठहर पाती ।

दरअसल ये चौकियां उन सतियों की है जो बिना किसी लकडी की आग के मत्र बल द्वारा पैदा की गई आग में स्वयमेव ही जल मरी । उन्हीं सतियों का तेज तप आज भी इतना अधिक दीप्त प्रदीप्त है कि चाहे कितना ही पानी बरसे, एक बूंद भी वहां नही रह पाती है ।

कुड के तल में जाकर देखने से पता लगेगा कि वहा की चट्टाने कितनी जली हुई काली कलूटी है । जौहर की राख आज भी इन पर जमी हुई है । कुड के चारों ओर की नीचे से करीब बीस फीट ऊपर तक की दीवाल पर लगा निशान मुह बोलता मौन साक्षी है उस जौहर का कि वह जौहर कितना विशाल, भयावह और दिल दहला देने वाला रहा होगा । कहां-कहां तक उसकी चिता पहुंची होगी । कितने दिन महीनों तक इसकी ज्वाला, आग और अगारे इस बात की साक्षी देते रहे होंगे कि यहा की ललनाये देश की, मातृभूमि की रक्षार्थ जल मरना जानती है मगर दुश्मन के हाथ अपनी काया तो क्या छाया तक पड़ने देना नहीं चाहती जौहर की यह घटना सवत् 1624 की है

कटार जौहर :

इस जौहर के बाद जब किले पर जलाने को कोई लकड़ी नहीं रही तो शेष बची दासिया क्या करती । कैसे अपना उत्सर्ग देती । तब यह तय किया गया कि दुश्मन के हाथों पडने की बजाय दासियां आपस मे एक दूसरी के कटार भोंककर अपने आप का बलिदान कर दे ।

ऐसी स्थिति में सभी दासियां अपने हाथों में कटार लिये जौहर कुंड के ऊपर की ओर के मैदान में एकत्र हुई और आपस में कटार खाकर वीर मौत मरी । सचमुच में यह जौहर अग्नि जौहर से भी अधिक साहस भरा अजूबा था जिसमें दासियों की लाशों पर लाशे इतनी हो गई कि पूरी मगरी बन गई । एक ऐसी मगरी जिसके सामने अकबर की मोहर मगरी भी फीकी लगने लगी । जौहर के बाद जब अकबर ने किले पर आकर यह दृश्य देखा तो राजपूति नारियों की आन बान और प्रण प्राण पर चकित रह गया । अपनी मातृभूमि के प्रति सर्वस्व समर्पण कर देने वाली नारियों और नरत्वों विहिन भूमि को पाकर उसे विजयश्री हासिल करने का कोई गर्व नहीं हुआ अपितु पश्चाताप और प्रायश्चित से उसका मन सतप्त हो उठा ।

पत्ता महल .

चित्तौड के सारे महल देख जाइये - कुभा महल, रतनसिंह महल, मीरा महल, भोजराज महल, पद्मिनी महल । इन सबसे अलग-थलग पत्ता महल लगेगा । एक तो यह महल इतना साफ सुथरा है कि जैसे प्रति क्षण कोई इसे बुहार रहा हो । दूसरे खंडहर होने पर भी पत्थर का एक टुकडा वहा नहीं मिलेगा । न कोई बांकी टेढी, ढही धंसी दीवाले मिलेंगी । तब का रग आज भी अपना गाढापन लिये दिखाई देगा ।

कल्लाजी ने बताया कि आज भी पत्ताजी यहां विराजमान है, इसीलिये यहा काच की तरह साफ सफाई है । सारा महल बडे करीने से सुथराया हुआ है । भीतर महल में धुसते ही एक ओर भैरूजी का स्थान है तो दूसरी ओर स्वयं पत्ताजी विराजमान है । दोनों आमने-सामने ।

भैरूजी पत्ताजी के इष्ट देव थे । पत्ताजी का स्थान स्वय पत्ताजी ने अपनी मृत्यु के बाद थरपित कराया । बीच का महल पूरा का पूरा गिरा हुआ नहीं होकर उतारा हुआ है ।

पत्ताजी नहीं चाहते थे कि उनकी मृत्यु के बाद उनके महल में कोई चढ़े । इसलिये उन्होंने स्वय ने मरने के बाद उस पूरी मंजिल को ही उतार लिया । केवल एक तरफ का हिस्सा रहने दिया जो सड़क से दिखाई देता है । इसी में उनका निवास बना हुआ है

यह अद्‌भुत आश्चर्य ही रहा कि इधर मैं भैरूजी का चित्र लेने की तैयारी कर रहा था कि उधर पत्ताजी के यहा से सुधाजी ने आवाज दी कि सब काम छोड पहले जल्दी से इधर आओ । मै तत्काल दौडा भागा वहां पहुचा । देखता हू कि एक पूरा मालपुए का भरा दोना यहा रखा हुआ है ।

कल्लाजी ने वह प्रसाद हमें दिया और कहा - 'पत्ताजी स्वयं ने इसे भिजवाया है । आज हरियाली अमावस्या है । धर-घर में मालपुए बनते है तो हम लोग उससे कैसे वंचित रह जाये ।'

यहीं हमने खजाना गृह देखा जहा धन-दौलत रखी रहती थी । ऐसे खजाने के गुमट्टार तो यहा हर महल हवेली के साथ रहे हैं । यह अलग बात है कि उसे साधारण व्यक्ति नहीं देख जान पडता है । कोई आश्चर्य नहीं, अब भी कई जगह के खजाने यो के यो भरे पडे हों ।

इसी महल मे हमने दासियों के भग्न निवास देखे । एक दासी तो ऐसी थी जिसने जीतेजी कई बार राजपरिवार के आभूषण चुराये, पर मुख्यदासी होने के कारण वह स्वय तो कभी अपराधी नहीं बन सकी लेकिन जिस दासी पर उसकी निगाह टेढ़ी होती उसकी खूब पिटाई करवाती । जबरन ऐसी पिटाई देख वह बड़ी राजी होती । बहुत सारा धन एकत्र कर भी वह दासी जब मरी तो सारा धन अपने निवास में गढा हुआ ही छोड गई । एक खजाना तो हमने ऐसा देखा जिसे पत्ताजी ने अपनी मृत्यु के बाद किसी को स्वप्न दे बख्शीश किया । इसे खोदकर वह सारा धन ले गया और किसी को उसका अता-पता नहीं लगा ।

ये दासिया बडी चालाक, धूर्त और मक्कार भी होती थीं । अपने स्वामी की जितनी दिखावटी वफादार होती, उतनी ही धोखेबाज भी । इसीलिए इन दासियो को गोली कहा जाता । कभी-कभी ये महाराणा को खूब मदमस्त कर उनके साथ सो तक जाती ।

जयमलजी की हवेली :

पत्ता महल के पीछे जयमलजी की हवेली है । इस हवेली के सभी कमरे बडे है तथा हर कमरे में जगह-जगह तिधारी बारिया है जिनसे अगलबगल तथा सामने तीनो ओर से चित्तौड़ के आसपास तथा दूर-दूर तक दुश्मनो का पता लगाया जाता ।

जयमलजी बडे युद्ध वीर थे । इनमें 10 हाथियों जितना बल था । तब चित्तौड का सारा युद्ध इन्हीं के जिम्मे था चौबीस ही घड़ी खड़े खडे ये अपनी हवेली

से दुश्मन का पता लगाते और तदनुसार सैनिकों को युद्ध के आदेश निर्देश देते । हवेली देखने से इस सारी व्यूह रचना का पता चल जाता है ।

वे जयमलजी ही थे जो एक रात लाखोटिया बारी की दीवाल की मरम्मत करवा रहे थे कि धोखे से अकबर ने अपनी सग्राम नामक बदूक का उन्हें निशाना बना लिया । गोली जयमलजी के पाव में लगी तब वे वहा से थोडी ही दूर, चट्टान पर सुला दिये गये । उस चट्टान पर जो खून बहा वह आज भी वहा जमा हुआ है । उस विशाल चट्टान से पता लगता है कि जयमलजी कितने मोटे ताजे एवं महाबली थे जिस स्थान पर जयमलजी गिरे वहा उनकी यादगार में एक छतरी बनवाई गई । जयमल और पत्ता दोनों की लाशें दुश्मनो के हाथ पड गई जो उन्हें आगरा ले गये । वहां ले जाकर फतहपुर सीकरी के बुलंद दरवाजे के पास गाड दी गई ।

रूपसिंह का शौर्य :

जयमल का पुत्र रूपसिंह भी 'यथा बाप तथा बेटा' कहावत चरितार्थ करने वाला था । वह बडा ज्ञानी भी था । चित्तौड की लडाई में जब गोले समाप्त हो गये तब बजाय हार स्वीकारने के उसने वहीं की चट्टानों से पत्थर के मजबूत गोले तैयार करवाये और उनका उपयोग करना शुरु किया । इन गोलों का असर भी लोहे के गोलों सा ही प्रभावी रहा ।

पत्थर के ये गोले 'सवामणी गोले' के नाम से प्रसिद्ध हैं जो आज भी किले पर यत्र तत्र देखने को मिलते है ।

एक दिन युद्ध के दौरान जब रूपसिंह ने तोप चढ़ाई और दुश्मन की ओर झाक कर देखा तो सामने से एक ऐसा गोला आलगा जिससे रूपसिंह का सिर अलग हो गया और आते बाहर निकल आई परन्तु रूपसिंह ने हिम्मत नहीं हारी और आखिरी दम तक जौहर दिखाता रहा ।

लाखोटिया बारी के वहां हमें रूपसिंह का पत्थर का बना बडा ही भारी किन्तु कलात्मक सिर मिला जिसे हमने सिन्दूर माली पन्ना लगाकर धूप ध्यान के साथ वहीं प्रतिष्ठित कर दिया ।

वीरवर कल्ला राठौड :

पत्ता महल के पीछे जयमलजी की हवेली के पास कल्लाजी की कोटडी थी । चित्तौड की लडाइयों में सर्वाधिक दुश्मनो का खात्मा करने वाले कल्लाजी ने जयमलजी को अपनी पीठ पर बिठाकर युद्ध कराया युद्ध के दौरान अपने बचाव के लिए इन्होंने कभी ढाल नहीं पकड़ी

युद्ध के दौरान इनके दोनों हाथों में तलवारें रहती । ये तलवारें संख्या में दो-दो होती जो चारों ओर से वार करतीं । दायें बाये नीचे ऊपर जिधर भी इन्हे घुमाई जाती ये गाजर मूली की तरह दुश्मनों का सफाया करतीं । यह युद्ध चक्रवात युद्ध कहलाता जिसे अकेले कल्लाजी ही लड सकते थे । तलवारें बचाव के लिए ढाल का काम भी करती । इन पर गोलियां तक झेली जाती ।

असाधारण व्यक्तित्व के धनी कल्लाजी जब युद्ध नहीं होता तब अपने लीले घोडे पर सवार हो सेना की देखरेख करते । सैनिकों को प्रशिक्षण देते । आदेश निर्देश देते । चौकियां सभालते । बस्ती में निकल जाते । पहरेदारों की परीक्षा लेते और हर समय चौकसी बनाये रखते ।

चित्तौड के किले पर कुंड में हुए सबसे बडे जौहर के कल्लाजी प्रत्यक्षदर्शी ही नहीं रहे अपितु उसमें रोती बिलखती कई नारियों को भी पकड-पकड अग्नि भेंट दी । यह इतना भयंकर जौहर था कि वह विशाल कुंड ही जौहर कुंड के नाम से चर्चित हो गया ।

युद्ध के दौरान लडते-लडते जब कल्लाजी अचानक गायब हो गये तो दुश्मन यह नहीं जान पाये कि वे कहां चले गये । उन्होंने सोचा कि वे अपने निवास में ही जाकर छिप गये हैं फलस्वरूप उनकी कोटड़ी को चारों ओर से घेर कर तोपों द्वारा उसे बुरी तरह क्षत विक्षत कर दी गई । आज तो वहां कोई चिन्ह नहीं रह गया है । जमीन की ऊंचाई से जरासी ऊपर उठती मात्र धरी रह गई है । ये ही कल्लाजी आगे जाकर लोकदेवता के रूप में जगह-जगह पूजित हुए जो मुंड चले जाने पर भी अपने रूंड से लडते रहे ।

जवाहरबाई का युद्ध कौशल :

राणा सांगा अपने ढग का अनूठा वीर था । अपने शरीर पर अस्सी घाव होते हुए भी सांगा सग्राम में डटे रहे और तनिक भी विचलित नहीं हुए । अपने गले तक तो इन्होने सीसा ही पी लिया था ताकि कोई दुश्मन इनका बाल भी बाका नहीं कर सके ।

जवाहरबाई इन्हीं राणा सांगा की रानी थी जो उन जैसी ही वीरांगना थी । इस रानी की देखरेख में तब पैंतीस हजार महिला सैनिक थे । पुरुषों की सेना के साथ यहा सदैव महिलाओं की सेनाएं भी रहीं । महिलाओं का यह सैनिकगाह पुरुष सैनिकों से सदा अलग रहता । इसकी सारी व्यवस्था महिलाओं के ही जिम्मे रहती । इन सैनिकों का विधिवत शिक्षण प्रशिक्षण होता । ये सेनाए सात-सात पहरों में रहती । केवल पहला पहरा पुरुषों का होता शेष सभी पहरों पर महिला सैनिक तैनात रहते । इनमें पुरुषों का प्रवेश कतई नहीं हो पाता किसी आपात समय में ही ये सैनिक लडाई का काम करते

जवाहरबाई का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था अच्छे अच्छे योद्धा इस के सामने थर्राते थे । दीपक जितनी बडी-बडी तेजोमय इसकी आंखें थी ।

राणा सागा की मृत्यु के बाद जब अकबर की सेना द्वारा अधिकाधिक संख्या मे राजपूत मारे गये तब जवाहरबाई को शूरापन चढा और वह अपने सैनिकों के साथ दुश्मनो पर टूट पडी और बडी बहादुरी का परिचय दिया ।

खजानों का वैभव :

भक्ति और शक्ति की दृष्टि से ही नहीं, धन सपदा की दृष्टि से भी चित्तौड सदा ही अतुलनीय रहा । भक्ति के क्षेत्र में भोज और मीरा की कोई बराबरी नहीं कर पाया । धन सपदा की दृष्टि से भी जितने खजाने यहा है उतने पूरे विश्व में कहीं अन्यत्र नहीं मिलेंगे ।

मेवाड भूमि हीरे जवाहरात के लिए बडी प्रसिद्ध रही है । यहा कोई किला या कि महल ऐसा नहीं मिलेगा जहा हीरे जवाहरात के खजाने न हों । राणा और राणिया सब के सब हीरे जवाहरात के आभूषणो से लदे रहते थे । राणा की पगडी पर भी करोड़ों के जेवर सुशोभित रहते । यही नहीं, इनके हाथी घोड़े तक सोने के आभूषणों से लदे रहते ।

भामाशाह युद्धवीर ही नही, उतना ही दानवीर था । दानवीर के संदर्भ में भामाशाह का नाम सर्वत्र ही सुनने को मिलता है । आज तो यह नाम दानवीर का पर्याय ही बना हुआ है ।

किले पर भामाशाह की हवेली देखने से यह विदित हो जायगा कि राजकाज के सचालन में इनका कितना जबर्दस्त योगदान रहा होगा हवेली के सबसे ऊपरी कक्ष की छत के भीतर जो पुतलियां बनी हुई है वे ही तब हीरे जवाहरात से ठस भरी हुई थी तब तलधर में ही कई खजाने थे ।

भामाशाह ने 150 वर्ष की उम्र पाई । ये अपने जीवनकाल में तीन राणा -सांगा, उदयसिंह और प्रताप, के दीवान रहे । प्रताप के साथ भामाशाह का नाम दानवीर के रूप मे सदा के लिए अमर हो गया जब इन्होंने अपनी निजी सर्वस्व सम्पदा भी प्रताप को अर्पित कर दी ।

यहा के मोती बाजार में हीरे जवाहरात की जो दुकानें लगती, दुकानदार सारे के सारे जवाहरात भामाशाह से खरीदकर ही बेचते थे । इस बाजार की दुकानों के नीचे पाच-पांच, सात-सात मजिले तलधर थे । एक तलधर हमने ऐसा देखा जिसकी दीवाल में से कोई धनकलश निकाल कर ले गया । इसके पास ही नाग की बड़ी गहरी मोटी बांबी देखी जिससे लगा कि कभी कोई मोआ नाग धन की रक्षा के लिए यहा रहा होगा

रणबाजों की बलिहारी :

चित्तौड़ का इतिहास रणमल्लों और रणबाकुरो से भरा पड़ा है । एक से एक बढ़ चढ़ कर वर और वीरांगनाएं हुई है । सौलह हजार नारियां तो अकेले जौहर कुंड मे ही अपना जौहर दिखा गई फिर बीस हजार दासियों ने अग्नि के अभाव मे कटार खा-खाकर अपना उत्सर्ग किया, मगर किसी दुश्मन की छाया तक अपने ऊपर नहीं पड़ने दी ।

यही हाल पुरुषों का रहा । पत्ताजी ने तो दुश्मन के हाथों अपने प्राण खोने की बजाय अपने ही विश्वस्त हाथी से मौत मांगी जिसने अपने पांव से उनका काम तमाम कर दिया ।

राणा कुंभा ने अपनी विजय पर विजय स्तंभ बनवाया तो हमीर ने कीर्तिस्तम्भ का निर्माण कराया । लेकिन इसके मूल में शाह छोगमल थे । इस बनिये ने अपना अर्जित किया सारा धन कीर्तिस्तम्भ में लगा दिया । छोगमल पक्के जैनी थे जिन्होंने सदा ही पुण्य का कार्य किया । पाप से डरने के खातिर कभी सब्जी तक नहीं काटी, पर जब कीर्तिस्तम्भ के पास वाले मंदिर को मुसलमानों ने घेर लिया तो छोगमल का वीरत्व जाग उठा । उन्होंने अपने हाथ में तलवार धारण की और देखते-देखते तीनसौ का सफाया कर दिया । ऐसे ही बांके सांईदास, ईसरदास और चांसमसिंह थे । इन तीनों ने मिलकर पचास हजार दुश्मनों को मौत के घाट उतारे ।



16

मांडू में मौजूद है सिंहासन बत्तीसी

इतिहास को तोड़ मरोडकर उसे अपने अन्दाज से प्रस्तुत करने की हमारी आदत बहुत पुरानी है। बडेरों ने जो कुछ लिख दिया उसे उसी रूप में स्वीकार कर 'बड़ी हुकम' कहने वालों ने बडा अनर्थ भी किया। नतीजा यह हुआ कि बहुत सारा असली इतिहास इति बनकर रह गया और उसक ह्रास किंवा हास ही अधिक हुआ। इस झमेले में सर्वाधिक लू पुराने खंडहरो, महलों, हवेलियों को लगी। इसीलिए ये हमें बड़े रहस्य रोमाच भरे अजूबे और अद्‌भुत तो लगते हैं पर सही जानकारी के अभाव में भ्रमित करते और भटकन देते भी लगते है।

इतिहास जहा मौन होता है, लोक सस्कृति वहा मुखरित होती है। लोक संस्कृति का इतिहास किसी काल-अकाल का हनन नहीं होता। उसकी लिखावट किन्हीं पट्टो परवानों पर नहीं होकर लोक के हिये पर होती है। गीत गाथाओं तथा कथा वार्ताओं द्वारा पीढी दर पीढी, कठ दर कंठ जो कथा किस्से लोक की जबर्दस्त धरोहर और जीवनधर्मी सास्कृतिक सरोकार बने हुए हैं वह क्या इतिहास नहीं है ? सस्कृति नहीं है ? यह लोक का इतिहास, मात्र पढने या देखने की वस्तु नहीं होता। इसके साथ कई काल और शताब्दियों के लोकमानस की जीवन गंगा प्रवाहित होती मिलती है। स्वर, ताल, लय और नृत्य नाटय की लोकानुरंजनी यह विरासत किसी की वैयक्तिक थाती नहीं होती। पूरा देश काल समाज उसके साथ जुडा होता है। वह सर्वजन की, सर्वकाल की प्राचीन होती हुई भी, नित नवीन लगने वाली होती है, इसलिए वह शाश्वत है। मांडू की धरती का भी कुछ ऐसा ही वैभव है।

माडू की धरती बहुत-बहुत पुरानी है। यहां एक-एक कर 67 राजा हुए। 61 तो हिन्दू राजा ही हुए। मुसलमान तो बहुत बाद मे आये। अकबर यहा संवत् 1732 में लडने आया था। वह 200 वर्ष से अधिक जीवित रहा। माडू को मदू ने बसाया। इन्हीं के नाम पर इसका माडू हुआ

मदूजी पाताल के राजा थे । ये कृष्ण के भी पहले हुए । पहले इन्होंने मंडोवर बसाया, जोधपुर के पास । यहीं रावण ने इनकी लड़की मदोधरी से विवाह किया था । रावण जब अभिमानी बन गया और मंदूजी पर ही अपना आधिपत्य जमाने लगा तब मदूजी ने ऐसा करने की बजाय मंडोवर ही छोड दिया और मांडू आ गये । यहां तथाकथित बाजबहादुर का महल मंदूजी ने ही बनवाया । मदूजी 411 हजार बरस के जीव थे ।

पहले ये नाग थे । नाग से नर बने । बलदेव, लक्ष्मण और कृष्ण भी पहले नाग थे । नाग की उम्र एक हजार बरस की होती है । पांच सौ बरस के बाद इनमें पख आने शुरू होते है । नाग सदा ही जहर लिये होते है जबकि सांप विषविहीन होते हैं ।

मदूजी बडे दानी थे । इनके पास एक-एक लाख गायें रहती थी । हजार-हजार गायों का तो ये दान करते थे । गज घोडे भी इनके पास कई थे । दान से तप चलता । तप से तेज चलता । तेज से लक्ष्मी फलती । कर्ण भी ऐसा ही दानी था । जब वह स्वर्ण दान करता तो उसके पास अच्छे-अच्छे राजा और ठाकुर तक भिखारी बन दान लेने आते । दान कभी निष्फल नहीं जाता ।

मांडू में तब 12 रूपया मन घी था । मंदिरो मे लोग घी चढाते । घी चढाने की बोली भी लगती और बोलमा भी होती । दस मन से लेकर पच्चीस मन तक तो अमूमन कोई भी घी चढ़ाता । आज भी चढ़ाने वाले बिना किसी खोजखबर के चुपचाप मणो बध घी चढ़ाते हैं । पहले मांडू में राजा ही रहते । यह धार तक फैला हुआ था ।

इसी मांडू में राजा विक्रमादित्य तपे । ये और भी कई जगह तपे । वहा भी तपे जहा तांबावती नगरी बसाई । इसी तांबावती में महाकालेश्वर का प्रादुर्भाव हुआ । एक समय तांबावती में जल नहीं बरसा । तब सभी लोगों ने सामूहिक उजैणी की । समूह भोज में शिव से अरजी की कि पानी बिना सब कुछ नष्ट हुआ जा रहा है । शिवजी रीझे । पानी बरसा । हाय हाय मिटी । अकाल-दुष्काल से छुटकारा मिला तब सबने मिलकर महाकालेश्वर की स्थापना की और उजैणी नाम दिया । वह उजैणी आज का उज्जैन बना हुआ है ।

मंडोवर देखने के बाद यह इच्छा बलवती हो गई कि माडू अवश्य देखना चाहिये । दोनों महानगरों की स्थापत्य कला और संस्कृति वैभव उस समय के जीवन धर्म और सांस्कृतिक परिवेश की पारदर्शिया देते हैं । तब से अब तक कई सत्ता पुरुष आये और गये । राजे बदले । महाराजे बदले । राज्य बदले । संस्कृति बदली । धर्म बदला । आक्रमण अत्याचार दमन अनाचार सब कुछ हुए । कई असली नकली हुए और नकली असली बन बैठे मगर धरती तो वही की वही रही इसकी मूल गंध तो आज भी

देखी पहचानी जा सकती है पर कौन अध्ययन अन्वेषण और परख-पहचान कर पाता है ।

माडू के बहुत से खंडहर आज भी अबोले है । जिन नामों से ये पहचान दिये जा रहे हैं वह थोपी हुई कहानी है । मूल इतिहास किस्से कहानी कथन कुछ और ही हैं । समय जो बलवान बनकर आता है वह सबकी छाती पर चढकर अपना शौर्य स्थापित कर देता है । ऐसी स्थिति में सत्य जितना चमकदार होता है उतना ही धुंधला दिया जाता है । आज तो सबके सब महलों खंडहरों पर मुगल संस्कृति का मुलम्मा चढा हुआ है । अशर्फी महल, हिंडोला महल, जहाज महल, रूपमती महल, दाई महल, लोहानी द्वार, होशंगशाह का मकबरा सबके सब असलीयत से कोसों दूर है ।

किसी समय यहा नौ लाख जैनी और सात सौ के करीब जैन मंदिर थे । आज सारे मदिर मस्जिद बने हुए है ।

5 नवम्बर 1985 को पहली बार माडू की माटी का स्पर्श किया । साथ में थे लोक देवता कल्लाजी के अनन्य सेवक सरजुदासजी और डॉ. सुधा गुप्ता । मंडोवर में भी हमारा यही साथ था । माडू घूमते सहज ही में एक गाईड मिल गया, जिसने अपने को आदिम कहा । वह आदिम आदिवासी ही था । वह आधुनिक गाइड नहीं था । उसी धरती का जाया जन्मा था । यहीं उसकी तीन-चार पीढ़ियां गुजरी थीं ज्यादा भी गुजरी होंगी । उसने हमें वे सारे महल खंडहर दिखाये । उनके रहस्य रोमांच भरे अन्तर किस्से बताये । हम चुपचाप उनहें सुन अपनी आंखे विस्फारित कर चारों ओर निहारते रहे । खडहरों की अन्त:ध्वनियों में अपने अन्तर को गुजाते रहे । चकछक होते रहे ।

यह बडा अचरज ही रहा कि 'लोहनी द्वार' के नाम से यहां कोई द्वार नहीं है बल्कि वे तो गुफाएं है - पाडवों की गुफाए । पांडवों ने ही इन्हें बनाई । यहीं उन्होंने अज्ञातवास किया था । भील मीणे बनकर रहे थे । कुती भी रही उनके साथ । पानी गुफाओं में भी रिस रहा है । नीलम के पहाड तोड फोड कर कैसे कितनी गुफाएं बनाई होंगी । कितना समय लगा होगा । कितनी सख्त और ठोस गुफाएं हैं ये । और आसपास फैले पहाड़ । नीचे निर्जन वन गहरा । पहाड़ में पत्थर फोडकर उगते केल वृक्ष । कौन देखता है इन्हें यहा । कौन पानी देता है । पांडवों की तपस्या और यज्ञ का फल कि आज भी यह भूमि अपने तप का फल दे रही है ।

हिममानव :

पांडू के साथ कुती हमेशा ही रही तब माडू की बस्ती इन गुफाओं से दूर थी कुती के पति धृतराष्ट्र अकाल मौत मरे पाडू फिर हिमालय गलने चले गये वहा जाकर

चोला बदल लिया । अब जो हिममानव कहलाते है, वे ये ही पाडव है । द्रोपदी भी इनके साथ है । सब अभी भी तपस्या रत है । ये सत है ।

सत दस-दस हजार बरस की तपस्या करते है । फिर इन पाडवो को तो अभी ढाई हजार बरस मात्र हुए है । ये पाडव फलाभक्षी है । फल खाते है । पाप से सदा दूर रहते है । हिमालय में तो सभी की पापनाशिनी गगा का प्रभाव है । प्रायश्चित के लिए ये वहा गये तो अमर हो गये ।

ये हिममानव ग्यारह साढा ग्यारह हाथ के है । इनकी वाणी तब की ही वाणी है जिसे कोई आज का मनुष्य नहीं समझ सकता । पाप की छाया तक इन्हें नही लग पाये इसीलिए ये मनुष्य से सदा दूर रहते है और उसे देखते ही भाग जाते हैं । ऐसे सत हमारे देश मे अन्यत्र भी तप रहे है । राजस्थान में बांसवाड़ा के पहाडों में कोई तीन हजार बरस पुराना एक सत ऐसा है जिसके एक टांग ऊंट की है और एक मानव की है ।

गुफाओं के पास एक लौहस्तंभ जमीं में गड़ा हुआ है । यह खंभ आल्हा ऊदल जब लड़ने आये तब अपने साथ लाये थे । इसके सहारे रस्सा बांध तोपें ऊपर चढाई गई थी । ऐसे नौ खंभ यहां और लाये गये । ये महुआ से लाये गये । गुफाओं के ऊपर का पूरा भाग खंडहरो का वैभव लिये है । यहां एक सरकारी बगला बनवाया गया जो ज्यों ज्यो बनता रहा, उजड़ता रहा । यहां यह सुना गया कि कोई अदृश्य आत्मा ऐसी है जो कुछ भी होने नहीं देती है ।

माडू का सर्वाधिक आकर्षण बाजबहादुर और रूपमती के तथाकथित महल है । कहा जाता है कि दोनो का अनन्य प्रेम आज भी यहां वातानुकूलित है । रूपमती की सगीत लहरी मे सुधबुध खोया बाजबहादुर आज भी कई रसिकों को प्रणय में आकठ डूबने का आलंबन दे जाता है । बाजबहादुर के महल, चाहे वे जनाना हों या मरदाना, अपने स्थापत्य में कितने वैभव पूर्ण रहे होंगे । उनके गोखड़े, कांच का काम और पच्चीकारी देख तब का शाही जीवन और उससे जुड़ी कला सांस्कृतिक रूचियों का पता लगाया जा सकता है ।

पर बाजबहादुर कौन था ? क्या था ? किसने बनाया उसको ? किसने कहा नवाब ? कहा थी रूपमती रानी ? किसकी रानी थी वह ?

किया और राजपूत बालकी को लेकर भाग गये तो नाहरसिंह को गुस्सा आया । फलस्वरूप वह एक मुसलमान कन्या का अपहरण कर माडू चला गया । वही कन्या रूक्साना थी । नाहरसिंह ने ही तब नर्मदा व सूर्यदर्शन के लिए रूपमती का महल बनवाया था । माडू तब उजड चुका था ।

जयपुर से जो मुसलमान राजपूत बालकी को ले भागा, रूक्साना उस मुसलमान की बहिन थी । नाहरसिंह इस समय 63 वर्ष का था जबकि रूक्साना केवल 23 वर्ष की थी । नाहरसिंह की मृत्यु के बाद बाजबहादुर रूक्साना के सम्पर्क में आया और उसे हिन्दू कन्या घोषित कर उसका नाम रूपाली कर दिया । इस समय रूपाली 60 बरस की थी ।

नाहरसिंह की मृत्यु के बाद रूक्साना जब विधवा हो गई तब उसने अपनी जाति के लोगो को बुलाया ।इस बुलावे में बाजबहादुर भी आया । दोनों के बीच प्रेम हो गया । इन्होंने गाय का मांस खाना शुरू कर दिया । जिन हिन्दुओं ने रूक्साना का साथ दिया व मुसलमान हो गये और जो साथ नहीं देना चाहते थे, वे भागने बने । इस प्रकार मुसलमानों का आधिपत्य हो गया ।

मूसल से मुसलमान बने :

इन मुसलमानों का उद्‌भव मूसल से हुआ । मूसल से मुसल्ल बना और मुसल्ल से होते-होते मुसलमान हो गया । बैलों के गले में जो खूटी डाली जाती है वह मूसल कहलाती है ।

असल में, मालवा में कोई वीर रहा नही । सभी डरपोक थे इसीलिए नाहरसिंह ने माडू जाकर अपना झडा गाड़ दिया । रूपाली ने मरते दम तक अपना भेद किसी को नहीं दिया । अपने कुल के लोगों को भी यह भनक नही पड़ने दी कि वह मुसलमान है । बाजबहादुर अल्लाउद्दीन खिलजी के बाद हुआ ।

जैसे रूपमती, रूपमती नहीं थी, वैसे ही यहां का रूपमती का महल भी कहीं से महल होने का आभास नहीं देता है । एक शाही नहान घर से भिन्न यह कुछ नहीं है पर प्रारम्भ में जिस नाम से जो कुछ उछाल दिया गया, वही नाम चल पड़ा । पर्यटक को जो कुछ कहा जाता है, उसे स्वीकार कर लेता है । और इस तरह असलियत से कहीं परे नकली चीजों का पहाड बनता रहता है । खंडहरों की खोज करना कोई मामूली बात नहीं है ।

दूसरे दिन रूपमती के इस महल तक पहुंचने में दिन की एक बज गई । उस दिन की धूप में हम महल की छतरी से चारों ओर दूर दूर तक अपनी निगाहें फैंकते फैलाते रहे तभी एक खेत से हवाओं का लाल वेग दिखाई दिया यह वेग

'दिशाशूल' था। दिशाशूल देख कर कहीं जाने, नहीं जाने की परम्परा हमारे देश मे बड़ी गहरी बैठी हुई है। पहले तो दिशाशूल टालकर ही लोग घर से बाहर जाने के लिए पांव निकालते थे। सम्भवतः सीधा कहीं जाने के लिए तो दिशाशूल सबके आड़े आता ही आता है। मेरे गांव कानोड़ से उदयपुर आने के लिए सोमवार या फिर गुरुवार ही शुभ रहता है। शेष दिन दिशाशूल वाले होते है।

मांडू में खुरासानी इमली के पेड़ों की बहार है। ये पेड बड़े घेरघुमेर और अपनी प्राचीनता की पूरी पहचान देने वाले हैं। इनके फल ही फल सब ओर लटके मिलते है। इन पेड़ों के तने भी बीस-बाईस, तीस-तीस फीट की मोटाई लिये मिलेंगे। इसका फल कई दवाइयों में बड़ा उपयोगी है। इसे गोरखजी की आमली भी कहते हैं। राजा भतृहरि ने पिंगला को यही फल दिया था। यहां इमली के पांच-पांच हजार बरस पुराने पेड़ भी कहे जाते हैं।

रूपमती महल से लौटते समय रास्ते में मणिपुष्प का झाड़ देखा। इसके फूलों से शहद जैसी खुशबू आ रही थी। ये फूल नागकुली नागों के चढ़ाये जाते हैं। इन फूलो को देखकर अचानक श्री रावण की याद आ गई जिसने जो सोचा, वह सब कुछ कर दिखाया। केवल तीन चीजें उसकी सोची अधूरी रह गई। एक तो उसने सोने के कनक पुष्पी फूल तैयार किये पर उनमें खुशबू नहीं डाल सका। दूसरी, स्वर्ग के सीढ़ी नहीं लगा सका और तीसरी, लंका को अखंड नहीं रख सका। बीच रास्ते में एक ओर भारतीजी की समाधि देखी। ये गोरखनाथ भारती थे। इनकी समाधि पर मुसलमानों ने गुम्मद बना रखी है जबकि नीचे धूणा है और पास में तुलसी का पौधा लहलहा रहा है।

सिंहासन बत्तीसी की खोज :

मांडू की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि सिंहासन बत्तीसी की खोज रही। राजा विक्रमादित्य से जुड़े इस सिंहासन के बारे में बहुत कुछ पढ़ने और लोक जीवन में सुनने को मिला। न्याय के लिए यह सिंहासन आखिर कहां स्थापित किया हुआ था, इस सबध का इतिहास अब तक मौन रहा और इससे जुड़े कहानी किस्से भी रहस्य रोमाचक ही प्रतीत होते रहे हैं। सरजुदासजी में लोकदेवता की आत्म प्रविष्ठि ने अचानक हमें उस राह पर मोड़ दिया जिधर जाने के लिए हम बिल्कुल तैयार नहीं थे। कारण कि उधर देखने को कुछ भी नहीं रह गया था। यह राह थी लाल बंगला की तरफ लांबा तालाब नामक बस्ती वाली।

हम इस बस्ती के पास वाले चार दरवाजे वाले खंडहर बने कक्ष में पहुच गये **इसी कक्ष में य सिंहासन प्रकट होता था और सामने फैले** विशाल चौक में जनता बैठ

जाती थी । चारों दरवाजों पर चार कडे पहरे रहते थे । जमीन में यह सिंहासन नव सवा हाथ करीब नीचे था । आज तो जमीन की सतह से छह-सात हाथ माटी ऊपर आई हुई है । इस सिंहासन को बत्तीस पुतलियां लाती थीं इसीलिए इसका 'सिंहासन बत्तीसी' नाम पडा ।

राजा इस सिंहासन पर बैठकर न्याय करता । यहां मनुष्य गति (जाति) का ही नही, बत्तीस गति का न्याय होता । नाग लोक तक के जीव यहां आकर न्याय पाते । पुतलियां सत-असत का पता लगाकर राजा को देतीं और राजा तदनुसार न्याय करता । इसमे तनिक भी किसी के साथ अन्याय की गुंजाइश नहीं रहती ।

यह सिंहासन बाईस माणी सोने यानी 264 मन का था । इसे हरसिद्धि ने योग माया से बनवाया था । हरसिद्धि के बाहुबली नाम का लडका था पर बहादुर होते हुए भी इसमें न्यायिक बुद्धि नहीं थी । राजा विक्रम के बाद बड़े-बड़े राजा इस सिंहासन के लिए दौडे पर यह किसी के हाथ नहीं आया । इसे तथा पुतलियों को स्थिर कर दिया गया ।

हमारे लिए यह समय बड़ा ही विचित्रआनंद अनुभव का था । कई सारी कल्पनाओं मे हम खो गये । राजा विक्रम और पुतलियों के कई चित्र हमारे मन मस्तिष्क को कुरेदते रहे । हमने तब बत्तीस पुतलियो के नाम जानने चाहे । काछ्राजी ने सिंहासन स्थल पर बैठकर नाम गिनाने शुरू किये - (1) रत्नमंजरी (2) चित्ररेखा (3) रतिलीमा (4) चन्द्रकला (5) लीलावती (6) कामकन्दला (7) कामादी (8) पुष्पावती (9) मधुमालती (10) प्रभावती (11) पद्मावती (12) कीर्तिमती (13) त्रिलोचनी (14) त्रिलोकी (15) अनूपवती (16) सुन्दरवती (17) सत्यवती (18) रूपरेखा (19) तारा (20) चन्द्रज्योति (21) अनुरोधवती (22) अनुपरेखा (23) करूणावती (24) चित्रकला (25) जयलक्ष्मी (26) विद्यावती (27) जगज्योति (28) मनमोहनी (29) वैदेहा (30) रूपवती (31) कौशल्या (32) किलंकी ।

मांडू के कई किस्से बडे बाके और रस फांके हैं पर कौन विश्वास करने वाला है ।



17

गिरनार में मिला पांच सौ वर्ष का अघोरी

हमारे शास्त्रों में तो कई गिर हैं मगर मुख्य गिर दो ही हैं । पहला हिमगिर और दूसरा गिरनार । एक पहाड़ों का नर रूप है तो दूसरा नारी रूप । नर नारी का यह रूप नदी नालों और गिरि कन्दराओं में भी आज्ञापन सनातन है ।

गिरनार का पूरा पहाड़ गुफाओं का गहन तपस्या स्थल है । कोई गुफा ऐसी नहीं मिलेगी जहां कोई तपस्वी मनस्वी तपस्वी साधु सन्यासी नहीं तपा हो । कई अघोरी, कई नागा, कई निर्वाणी अभी भी यहां तपस्या रत हैं । एक अनुमान के अनुसार अब तक यहा ८८ हजार साधु तपस्या कर चुके हैं ।

गिरनार की चढ़ाई भक्तिमन की चढाई है । धर्म और अध्यात्म की चढाई है । तपते मन और श्रद्धालु जन की चढ़ाई है । इस चढाई में बूढे थके मादे भी चढते हैं और जवान उम्र के मौज मस्ती लोग भी चढ़ते हैं । यह तपा हुआ पहाड सबके हाड को तेजी तरी एव ताजगी देता है तथा हिये को ठण्डा करता है । गिरस्थी के झंझटों से मुक्त होने एव ससार सागर से पार होने यहां जो भी आता है उसका मन सारी मलिनताओं से ऊपर उठ चंगा हल्का और पवित्र हो जाता है । यह चढाई सुबह चार बजे से ही प्रारभ हो जाती है ।

२१ मई १९८९ को हमने भी यह चढ़ाई चढ़ी । हमारी चढ़ाई एकमात्र सीढ़ियों की चढ़ाई न होकर सब तरह की खोज की चढ़ाई थी इसलिए सुबह पाच बजे चढ़ाई शुरू कर संध्या सात बजे ऊपर आये । अगल बगल की चट्टानों वृक्षों झाडियों का भी सान्निध्य लिया और बहुत कुछ वह देखा जिसे सामान्यतः दूसरे नहीं देख पाते ।

गिरनार का प्रत्येक पहाड़ पोला है । गुफा है । तपन का आत्म चैतन्य और काया की कंचन हुई भसम राख है । यहां दत्तात्रेय भर्तृहरि और गोरखनाथ ही नहीं तपे शिवजी दधीचि जैसे तप पूतों की भी यह जपतप भूमि रही है । यह तपन आज भी जारी है

पचास बरस से लेकर ग्यारह सौ बरस तक के अनेक साधु [illegible] और अलग्य आनंद में आकंठ डूबे है । मानव भेख में कई गोरखनाथ, गोपीचंद [illegible] यहा अबोले थबोले घूम रहे है पर कौन उन्हें जान पहचान पाता है ।

कोई ग्यारह बजे होंगे, हम चाय की एक दुकानदारी के पीछे की चट्टानों पर जा बैठे । वहां गूलर का एक घना वृक्ष था । कहीं कहीं चट्टानों पर बारीक दूब के मखमली गद्देदार थप्पे जमे हुए थे । कुछ ऐसी चट्टाने भी थी जिनसे शहद जैसा पदार्थ रिस रहा था । यह दूब पत्थरचट्टी कहलाती है और शहद सा रिसता पदार्थ शिलाजीत है । बन्दर इसे बखूबी समझता है । जहा ऐसी शिलाएं होंगी वहां बन्दरों की तादाद अधिक होगी ।

गूलर का महत्व :

बन्दर तो वहां कदम-कदम पर है । उस समय हमारी बैठकी में भी तीन-चार बन्दर आ धमके थे । पत्थरचट्टी शिलाजीत और शहद तीनों को मिलाकर बन्दर लड्डू बनाता है और अपनी जच्चा बदरी को खिलाता है । वहीं एक घना फैला गूलर का वृक्ष था । गूलर के फूल का महत्व मैने कई जगह सुना ।

शरद पूनम की रात को ऐन बारह बजे यह खिलता है । तब यह फूल पूरे वृक्ष की जिस-जिस डाल पर जहा-जहां चलता है, वहां-वहां, वहां-वहीं ही फल लगते हैं । यदि उस वक्त वह फूल किसी के हाथ पड़ जाता है तो उससे मनवांछित फल प्राप्त किया जा सकता है । पत्थरचट्टी चट्टानें भी वहीं होंगी जहां गूलर का वृक्ष होगा ।

गूलर की इस चर्चा में मेरा ध्यान छठी कक्षा में पढ़ी राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की उस कविता-पक्ति पर चला गया जिसका अर्थ तब गुरूजी पूरा नहीं खोल पाये थे । लगभग 35 बरस बाद उस पंक्ति का अर्थ पाकर मैं अपने गूढ़ मन में इतना चकित छिकत हुआ कि कुछ कहते नहीं बनता । वह पंक्ति थी - 'हां हां जनाब तब तो गूलर भी फूल देगा ।'

इस चढाव में हमारे कई पड़ाव रहे । कई मंदिर-मंदरिया, देवी-देवता, साधु सन्त मिले । असत-असाधु भी मिले । ठगी-पांखडी भी मिले ।

अबामाता का मंदिर बडा ही पावन सुखद लगा । मूर्ति में बड़ी शक्ति । बड़ा दिव्य रूप । भक्ति और शक्ति दोनों मिलती है यहां । मां कई भेष में सबके मध्य विचरती है वह सबको जान पाती है । उसे कोई नहीं जान पाता । अजूबे और भी कई मिले । सबके सब तो कहने के भी नहीं होते ।

दत्तात्रेय से लौटते वक्त कुछ लोगों ने हमें बताया कि यहीं पहाड़ों में एक ऐसे अघोरी बाबा हैं जो अपना भेख बदलते रहते हैं वे शेर चीता बन भी घूमते हैं गौमुख

कुड के पास कभी कुटिया में भी मिल जाते हैं । बहुत पुराने जीव है । मिल जाये तो बडा भाग्य ।

पांच सौ वर्षीय पुरुष :

उस कुटिया में हमने पहले कभी आ देखी थी, पर तब इसमे कोई नही था । अब एक पाट पर बाबा बैठा दिखाई दिया, जो कुछ अबोले अदृश्य संकेत ले-दे रहा था । जैसा उसका जला अधजला बिछौना था, वैसा ही उसका जला अधजला शरीर था । गले मे हड्डियों की माला । पावों में चांदी की मकोडे वाली चैन ।

हम चुपचाप पास जाकर बैठ गये । थोड़ी देर बाद बाबा ने हमारी ओर आंखे फेरी और कहा - 'राजस्थान के देश से आये हो । मीरां भी आई थी । शिवमेले में मिली थी ।' फिर वह कहीं खो गया । हवा में उंगलियां देता रहा । नजाने किसको क्या कहता रहा । कोई नहीं था वहां । बाबा के रहस्य चमत्कार में खोये हम अजीब भय से डरते भी जा रहे थे और उसे देवपुरुष मानते हुए, अनंद के ऊहापोह को भी जी रहे थे ।

रहस्यमय मिरगी कुंड :

नीचे तलहटी में आकर देखा - दो कुड बहुत प्रसिद्ध है । एक तो दामोदर कुड जिसमें गिरनार की चढ़ाई से पूर्व सभी नहाते है और दूसरा मिरगी कुड जो अब शिवरात्रि को ही स्नान के लिए खोला जाता है । दामोदर कुंड में, प्रारंभ में सभी प्रमुख नदियों व समुद्रों का पानी लाकर डाला गया था ।

मिरगी कुंड में केवल वे ही साधु नहाते है जो तपस्या में लीन है । साध्वियों सन्यासिनियों के लिए यहां स्नान करना वर्जित है । बहुत पहले यह कुड मात्र एक नाला था जिसमें सभी लोग नहाते थे । एक बार इसमें एक रजस्वला नारी नहा गई । इस पर एक संत ने उसे मिरगी बनने का श्राप दे दिया । तब से यह कुंड मिरगी कुड के नाम से जाना जाने लगा । इस कुंड को लेकर कई रहस्य रोमांचक अलौकिक घटनाएं जुड़ी हुई हैं ।

शिवरात्रि के दिन जुलूस की समाप्ति पर सभी तपस्वी साधु सत महात्मा इस कुड में डुबकी लगाते हैं । सबकी आंखों से स्नानकर्ता साधु-समुदाय गुजरता है परन्तु बडा आश्चर्य तब होता है जब स्नान के बाद बहुत ही कम साधु लौटते हुए दिखाई पडते हैं । शेष साधु कब कहां कैसे अन्तर्ध्यान हो जाते हैं, इसे कोई नहीं जान पाया ।

गिरनार की यात्रा हमारे सांसारिक मन की दिव्य विभूति है । आत्मचैतन्य को उजास देकर नर से नारायण बनने की पावन प्रक्रिया है । जन को वन के वैभव के साथ जोड़ने की स्वस्ति कामना है और तप खप कर भूत से भभूत बनने की मंत्र सिद्धि है

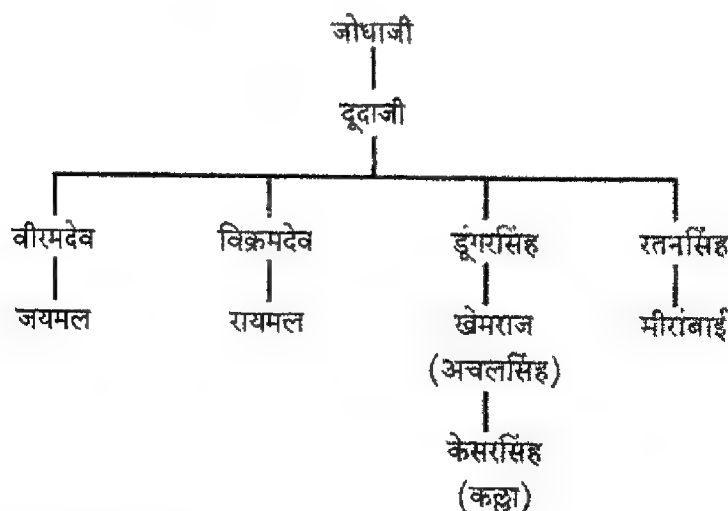
18

इतिहास में अजूबे लोकदेवता कल्लाजी

जोधपुर के संस्थापक जोधाजी के पुत्र दूदाजी ने मेड़ता बसाया । इनके चार पुत्र हुए - वीरमदेव, विक्रमदेव, डूंगरसिंह और रतनसिंह ।

डूंगरसिंह के पुत्र खेमराज थे जो अचलसिंह के नाम से प्रसिद्ध हुए कारण कि इन्होने अपने जीवन काल में जितने भी युद्ध लड़े, कभी पीठ की नहीं खाई । सदा ही अचल रहे । इसी अचल निष्ठा के कारण इनका नाम अचलसिंह पड़ा । कल्लाजी इन्हीं अचलसिंह के पुत्र थे ।

यह वंशावली इस प्रकार है -



कल्लाजी का अवतरण :

कल्लाजी का जन्मनाम केसरसिंह था । इनकी माता श्वेत कुंवर ईडर के लक्खूभा चौहान की पुत्री थी । यह बचपन से ही शिव-पार्वती की बड़ी भक्त थी । जब उसके कोई

सन्तान नहीं हुई तो उसने बड़े आत्मभाव से अपने विवाह के अन्तरवासे का एक पुतला बनाया और मन ही मन शिव पार्वती की आराधना में लीन हो गई । उसकी ऐसी तन्मयता देख शिव-पार्वती ने उस पुतले में प्राण प्रतिष्ठा कर दी । यही पुतला श्वेतकुवर का पुत्र-रत्न बना । चूँकि तब अन्तरवासा केसर में डुबोकर बनाया जाता था इसलिए उसका रग केसरिया होता । पुतला केसरिया रग का था अतः उससे जो बालक उदित हुआ उसका नाम केसरसिंह रखा गया । वस्तुतः कल्लाजी जाये नहीं थे, उपाये गये थे । यह घटना सवत् 1564 की है ।

कल्लाजी के अवतरण पर सारा मेडता फूला नहीं समाया । जन-जीवन में ही अपार उत्साह और उमंग नहीं था, प्रकृति के कण-कण में भी हर्ष का असीम वेग था । बादलों ने बरसात की । हवा शीतल और सुगंधी हो गई । चन्द्रमा ने अमृत बरसाया । देवताओं ने पुष्प वृष्टि की । सूर्य भी एक पल रुक गया । सब ओर सुख और आनंद ही आनंद । लगा कोई साधारण पुरुष नहीं बल्कि कोई देवपुरुष अवतरित हुआ है ।

भैरव के दर्शन :

कल्लाजी बचपन से ही असाधारण पौरुष के धनी थे । एक दिन इन्हे मेडता में कुण्डल तालाब के किनारे इमली के पेड़ के नीचे बटुक भैरव ने दर्शन दिये और इनकी असीम वीरता से परिचित कराया । कहा कि तुम कोई साधारण पुरुष नहीं हो । पूर्व जन्म में भी तुम बड़े बांके योद्धा थे । मैं तुम्हें वरदान देता हू कि बिना किसी गुरु के तुम सभी कलाओं में पारंगत और निष्णात होओगे । तुम्हारे हाथों दीन-दुखियों का दुख दूर होकर विश्व का कल्याण होगा । तुम्हारी फते ही फते है । मां जगदम्बा तुम्हारी रक्षा करे । भैरव यह कह अन्तर्ध्यान हो गये । कल्लाजी तब मात्र पांच वर्ष के थे ।

ज्यों-ज्यों कल्लाजी बड़े हुए, उन्हें भैरव द्वारा दिया गया वरदान फलता रहा । उन्हें महसूस होने लगा कि बिना किसी के बताये-सिखाये कई चीजों का ज्ञान स्वतः हो रहा है । किसी की कोई समस्या होती, कल्लाजी फटाफट उसका समाधान दे देते । अपनी उम्र से कई गुना अधिक ज्ञान समझ और भूत भविष्य की गति मति की सीख रखने के कारण सब ओर उनकी वाहवाही होने लगी ।

सिंह शावक कल्लाजी :

राजपूत वीर अपनी शूरवीरता के कारण सिंह शावक कहलाते हैं । फिर कल्लाजी ने तो केवल पांच बरस की उम्र में ही नौ गजा शेर को पछाड़ दिया   यह पछाड किसी

बदूक की सहायता से नही अपितु भेरू की कृपा-शक्ति से उसकी पूंछ और कान का मरोड़ा देकर दी ।

कल्लाजी राठौड थे । राठौड़ो के सदा ही रानिया रहीं । उन्होंने पासवानियां कभी नही पाली । इसलिये वे शुद्ध भी बने रहे । वीरों को सिंहनी का पूत इसलिए भी कहते है कि उन्हें सचमुच में सिंहनी का ही दूध पिलाया जाता । इस दूध के साथ खरगोश का रक्त मिला होता । तभी वीरसिंह जैसी दहाड मारता और खरगोश सी स्फूर्ति लिये छलांगे मारता । तब माताएँ भी वीर माताएँ होती । वे तीन-तीन चार-चार बालकों तक को अपना स्तन पिलाने की सामर्थ्य रखती और उसके बाद भी उन स्तनों से दूध झरता । पासवान्यों के बच्चों को चीतरी का दूध पिलाया जाता । राजपूत की नजरों में अपनी मा का असली दूध घूमता । तब गर्भ भी नौ माह से अधिक का होता ।

मेडता में आये दिन युद्ध के बादल छाये रहते । एक समय ऐसा आया जब मेड़ता में कोई नहीं रहा तब अचलसिंह भी सपरिवार ईडर चले गये मगर वहां भी शांति कहा थी । लडाई वहा भी जारी रही । इस लड़ाई में अचलसिंह वीरगति को प्राप्त हुए । इस समय कल्लाजी तीन वर्ष के थे और उनकी माता को बीज गर्भ था अत: तीन दिन तक पिता अचलसिंह की लाश को रोके रखी । तीसरे दिन श्वेतकुंवर ने एक पुत्रको जन्म दिया जिसका नाम तेजसिंह रखा गया । इसके बाद अचलसिंह के साथ श्वेतकुंवर सती हो गई ।

सती होने वाली नारी गर्भवती नहीं होती । यदि वह गर्भवती हो तो जब तक किसी सतान को जन्म नहीं दे देती तब तक सती नहीं होती कारण की यदि गर्भ में कन्या हो तो दो सती होने का पाप लगता । ऐसा भी समय आया जब सती होने वाली को गर्भ के कारण आठ-आठ माह तक रुकना पड़ा । जब उसके सन्तान हो गई तब ही वह सती हुई । ऐसी स्थिति में मृतक पुरुष के शरीर को रख दिया जाता । पर यह शरीर भी अधिक दिन सुरक्षित नहीं रह पाता । तब केवल कंकाल के साथ महिला सती होती ।

बदनौर में लालन-पालन

माता-पिता की मृत्यु के बाद कल्लाजी व तेजसिंह दोनों भाई अपने काका जयमल के साथ बदनौर चले गये । यही दोनो का लालन-पालन हुआ ।

एक दिन जयमल के बड़े पुत्र रूपसिंह की पत्नी ने कल्लाजी को मेणा (ताना) दिया कि काकाभाई तो युद्ध कर रहे हैं और भतीजा यहां फालतू रोटियां तोड रहा है । युद्ध जीतकर गेहूं लाओ और तब रोटिया खाओ तो जानूं । भाभी की यह बात कल्लाजी को

बूंदी नगर छोड़ गई । [illegible] चित्तौड़ चले आये । इस समय कल्लाजी सत्ताईस वर्ष के थे । [illegible] अतः वे भी चित्तौड़ चले गये और युद्ध के दौरान वीरगति को प्राप्त हुए ।

[illegible] कष्टों में रहे । भाभियों ने उन्हे अपमानित और तिरस्कृत [illegible] नहीं रखी । न अच्छा पहनने को मिला न भरपेट खाने को मिला । [illegible] पुत्रों की जो अवदशा होती है, वही कल्लाजी और तेजाजी की हुई ।

कंकू कुंवर से विवाह :

चित्तौड़ आने के बाद काका जयमल के साथ कल्लाजी का बदनौर आना-जाना रहता । एक दिन जयमल को कल्लाजी के मामा ने कहा कि आपके परिवार में एक बालकी और बैठी है । जयमलजी ने सोचा, कल्ला अविवाहित है । उसका विवाह करना ही है अतः उन्होंने हां भर ली ।

चित्तौड़ में निरन्तर युद्ध की आशंका बनी रहने के कारण जयमलजी कल्लाजी की बारात नहीं ले जा सके । बदनौर में ही डोला आ गया और उनका विवाह रचा दिया गया । यह विवाह हुआ [illegible] (कच्छ) के राठौड़िया सुवारा गांव की कंकू कुवर नामक कन्या से । कल्लाजी [illegible] कुंवर और कंकू कुंवर रिश्ते में भुआ-भतीजी थी । कंकू कुवर ने बदनौर में रहकर कुल [illegible] वर्ष अपने विवाहित जीवन के व्यतीत किये । उसके बाद वह अपने पीहर चली गई । फिर कभी लौटकर नहीं आई । न कल्लाजी ही उससे मिलने गये । इन [illegible] वर्षों में कल्लाजी ने दो पुत्रों को जन्म दिया ।

कल्लाजी का लीला घोड़ा :

कल्लाजी का लीले घोड़े पर सवारी करते थे । ऐसे घोड़े हजारों-लाखों में एक आध होते । ये [illegible] लक्षण [illegible] चिन्हों से लिये होते । रामदेवजी के भी ऐसा ही घोड़ा था । ये घोड़े बड़े गुणी, युद्ध के धनी और सभी प्रकार के दावपेच के जानकार होते । अपना सर्वस्व न्यौछावर कर भी अपने स्वामी को सदैव संकट से बचाये रखते । भावी विपदा की भनक इन्हें पहले पड़ जाती । तदनुसार ये अपने स्वामी को उसका इशारा देकर सावचेत कर देते ।

उन दिनों आदमी की औसत ऊंचाई भी दस फीट की होती थी । इससे घोड़ों की ऊंचाई भी दस फीट की होती थी । इससे घोड़ों की ऊंचाई का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है फिर लीला घोड़ा और उसके सवार कल्लाजी [illegible] व्यक्तित्व

के स्वामी थे । जब युद्ध नहीं होता तब कल्लाजी अपने इस घोड़े पर सवार हो सेना की देखरेख करते । सैनिकों को प्रशिक्षित करते । आदेश-निदेश देते । चौकिया संभालते । कभी रात को बस्ती में निकल जाते । पहरेदारों की परीक्षा लेने । जन-जीवन का अध्ययन करते ।

चक्रवात युद्ध के धनी कल्लाजी :

युद्ध भूमि में कल्लाजी का रणकौशल अन्य वीरों-शूरमाओं से सदैव ही न्यारा निराला रहता । इसीलिए इनका युद्ध चक्रवात युद्ध कहलाता । ऐसा युद्ध कल्लाजी ही लड सकते थे । इस युद्ध में दोनों हाथों में तलवारें रहतीं । तलवारें भी एक नहीं दो-दो साथ होती और चारो ओर से वार करती । जिधर इन्हें घुमाया जाता घुम जाती । दायें बाये ऊपर-नीचे आगे-पीछे जिधर जैसे चाहो वैसे इनसे वार किया जाता । गाजर-मूली की तरह देखते-देखते दुश्मनों की बहुत बडी फौज का सफाया हो जाता ।

सर्वाधिक दुश्मनों का खात्मा ही चित्तौड़ की लड़ाई में अकेले कल्लाजी ने किया । अपने जीवन में कल्लाजी ने कुल नौ हमले किये । अन्य वीर जब लड़ते समय अपने एक हाथ मे ढाल और दूसरे हाथ में तलवार रखते वहा कल्लाजी ने कभी अपने हाथ में ढाल नहीं ली । जब कभी तलवार नहीं होती तब भाला और तीर से दुश्मन को अपना निशाना बनाते । जब ये भी नहीं होते तो किसी ऊट के पाव की हड्डी को ही घिस घिसाकर अपना शस्त्र बना लेते और उसी से लडाई जारी रखते ।

तलवारें सिरोही की बनी होतीं । इनमें इतनी शक्ति होती कि ये लोहे के खम्भों तक को काट देतीं । यही नहीं, इनमे दुश्मन को अपनी ओर खींचने और उस पर बीजली सा प्रहार करने की अद्‌भुत क्षमता होती । कल्लाजी जब बार करते तो दुश्मन यह नहीं भाप पाते कि वार किधर से होगा । दो टांगो के बीच थोड़ी सी जगह रहने पर भी ये इस कौशल से वार करते कि दुश्मन के होश उड जाते । ये तलवारें बचाव के लिए ढाल का काम भी करतीं । गोलिया तक इन तलवारों से झेल ली जातीं ।

कल्लाजी के युद्ध की क्या कहें, लाशों की ढेरी पर ढेरी होती रहती फिर भी इनका वार-युद्ध बन्द नहीं होता । ऐसा-ऐसा समय भी आया जब नौ-नौ गज तक लाशों का ढेर जमा हो गया और कल्लाजी उस ढेर पर से युद्ध करते हुए बढ़ते रहे । युद्ध भूमि में कौन इन्हें भोजन देता ! कौन पानी पिलाता ! तब दुश्मनों का खून अथवा स्वयं का पसीना ही इनकी प्यास बुझाता और अपने सैनिकों का मांस ही इनका भोजन होता

जौहर के साक्षी कल्लाजी :

चित्तौड में कुल सत्रह जौहर हुए । अतिम जौहर कल्लाजी के समय हुआ जिसमे ये स्वय मौजूद थे । यह एक ऐसा समय था जब अकबर की सेना के एक लाख मुसलमानो ने चित्तौड को चारो ओर से घेर रखा था । ऐसी स्थिति में किले पर खाने तक को नाज नही रहा । तब पेड़ की डालियां, पत्तिया और फल-फूल ही खाने के आहार बने पर जब यह सामग्री भी समाप्त हो गई तब क्या किया जाता ।

लगभग डेढ़ बरस का समय घोर कष्टों, यातनाओं और आफतों का बीता । एक बार तो कल्लाजी मुसलमान वेश धारण कर बारह कोस दूर तक गाव में गये और पाच सेर मक्की छिपाकर, अपने दोनों पावों के बांधकर लाये । भंवराशाह से भंवरे भी आये जिन्होने दुश्मनों को तितर-बितर कर बुरी तरह खदेड़ा तब नाज के कुछ गाडे भरकर लाये गये पर इनसे भी कब तक काम चलता ।

अगणित नारियों का जौहर :

अन्ततोगत्वा यही तय किया गया कि दुश्मनों के हाथ जाने से तो अच्छा है जौहर कर लिया जाय ताकि नारिया तो अग्नि भेंट हों और पुरुष केसरिया बाना धारण कर आपस में मर मिटें । अतः जौहर की चिता तैयार की गई । इस जौहर में स्वयं कल्लाजी ने रोती बिलखती नारियों को पकड-पकड अग्नि भेंट की ।

इन नारियों के साथ बालकियों को भी चिता दी गई ताकि एक भी बालकी दुश्मन के हाथ पड़कर अपना सतीत्व भंग न कर सके । बालकों को अवश्य जहां तक बन पडा किसी के हाथ बाहर भिजवा दिया गया ताकि वे बडे होकर अपना राजपूती वश कायम कर सकें । कहीं ऐसा न हो कि सारे ही राजपूत मारे जांय और उनका वंश ही जडमूल से नष्ट हो जाये । इस जौहर में अगणित नारिया जल मरीं । यह जौहर विजय स्तम्भ के पास वाले कुड में किया गया जो आज जौहर कुंड के नाम से जाना जाता है ।

दासियों द्वारा कटार जौहर :

इस जौहर के बावजूद दासियां तो लकड़ी के अभाव में चिता में सम्मिलित ही नहीं हो पाई । इतनी लकडी कहां से लाई जाती । अत॰ दासियों ने तय किया कि वे आपस में एक दूसरी को कटार भोंक कर अपने प्राण त्याग देंगी । यही हुआ । जौहर कुड के पास के मैदान में सभी दासियां एकत्र हुईं और कटार युद्ध द्वारा अपनी इहलीला समाप्त की । इस जौहर में दासियों की लाशों की ढेरी इतनी ऊंची मगरी बन गई कि अकबर की मोहर मगरी भी इसके सामने फीकी लगने लगी

जौहर कुड में जल मरने वाली नारियों का त्याग-समर्पण तो अमर जौहर है मगर इन दासियो का त्याग-उत्सर्ग उनसे भी कई गुना ऊंचा है जिन्होंने मातृभूमि की रक्षार्थ जीते जी अपने को ऐसे मरणोत्सव के लिए समर्पित कर दिया ।

मा जगदम्बा का युद्ध-वरदान :

जौहर में अगणित नारियों की बलि देने के बाद कल्लाजी का हृदय इतना दुखित हो गया कि उनका युद्ध करने का मन ही न रहा तब वे अपनी कुल देवी 'नागणेचिया' की आराधना में लग गये और सुध ही भूल गये । सातवें दिन गुरु भैरव की विशेष कृपा से देवी जगदम्बा ने दर्शन दिये और वरदान दिया - 'युद्ध में तेरी कभी पराजय नहीं होगी । जो भी शत्रु तेरे सम्मुख आयेगा वह मृत्यु को प्राप्त होगा या फिर भाग जायेगा । तेरे पर पीछे से कोई वार करने की हिम्मत नहीं करेगा पर तू पीछे मुड़कर मत देखना । यदि कभी देख लिया तो विजय तेरे हाथों से निकल जायेगी ।'

देवी के इस वरदान से कल्लाजी में पुन: शक्ति का सन्चय हुआ और वे युद्ध भूमि में आ डटे ।

मीरांबाई का आशिष :

इस समय मीरां चित्तौड में ही निवास कर रही थी । अपने भक्तिभाव में तल्लीन रहने के कारण दुश्मन भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सके ।

कल्लाजी अपनी भुआ मीराबाई से इकतीस वर्ष बड़े थे । चित्तौड़ में रहते समय कल्लाजी अपनी भुआ तथा फूफा भोजराज से यदाकदा मिलते रहते । मीरां को तब राणाजी द्वारा जो यातना पहुंचाई जाती उससे कल्लाजी पूर्णत: भिज्ञ रहते परन्तु वे क्या कर सकते थे । वे जानते थे कि भुआ की कोई गलती नहीं है मगर राणा को कहने की उनकी हिम्मत भी नहीं होती । पहुंच भी नहीं थी । यदि कुछ कहते तो छोटे मुंह बड़ी बात होती । फिर कल्लाजी राणाजी के नौकर नहीं होकर काका जयमल के चाकर थे ।

आखरी बार जब कल्लाजी का मीराबाई से मिलना हुआ तब मीरा ने उनके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा कि जब तक जीवित रहो तब तक अपनी राजपूती को मत खोना । भुआ के इस कथन का अन्त तक कल्लाजी ने अक्षरश: पालन किया और आज भी कर रहे है ।

पेमला डाकू को पछाडा :

मेवाड़-महाराणा उदयसिंह के समय पेमला डाकू बड़ा उपद्रवी था । यह जाति से भील था इसका इतना जबर्दस्त आतक था कि सभी इससे थर्राते थे ने इससे

लोहा लेने के लिए कई वीरों को भेजा पर कोई भी इसे परास्त नहीं कर सका । अन्त में यह काम कल्लाजी को सौंपा ।

कल्लाजी अपने लीले घोड़े पर सवार हो पेमला से युद्ध करने चल पडे । भोराईगढ और टोकरगढ पेमला के अधीन थे ।

कल्लाजी शिवगढ पहुचे । वहां एक महुए के पेड के नीचे विश्राम कर रहे थे कि राजकुमारी कृष्णा की निगाह उन पर पडी । कृष्णा शिवगढ़ के ठाकुर कृष्णदत्त की लडकी थी । उस समय महलों में वह और उसकी दासी के अलावा और कोई नहीं था ।

कृष्णा ने दासी को भेजकर कल्लाजी और उनके उधर आने के संबध में जानकारी मगवाई । दासी ने जाकर कल्लाजी से पूछताछ की और महलों मे चलने को कहा । कल्लाजी ने बताया कि पेमला ऐसा कौनसा बडा भारी डाकू बना हुआ है जो सबको परेशान किये है । महाराणा ने उसका सफाया करने के लिए उन्हें भेजा है अत: वे सबसे पहले यही काम करेंगे ।

कृष्णा ने जब यह बात सुनी तो कल्लाजी के साहस और अतुल पराक्रम पर मुग्ध हो गई । उसने मरदाना वेश धारण किया और कल्लाजी के पीछे-पीछे दूसरे रास्ते से पेमला से लड़ने के लिए चल पड़ी । वहां जाकर पेमला को ललकारा । दोनो ओर से लडाई छिड गई । अन्त में कृष्णा ने अपने पराक्रम से पेमला का काम तमाम कर दिया ।

कृष्णा से मिलन :

कल्लाजी ज्योंही वहा पहुचे कि कृष्णा ने अपनी तलवार की नोक पर उठाये पेमला का सिर उनके चरणों में रख दिया । कल्लाजी उस वीर की बहादुरी से बड़े प्रभावित हुए । शाबादी दी और परिचय पूछा ।

उसने कहा-मैं पुरूष नहीं होकर नारी हू । शिवगढ के ठाकुर कृष्णदत्त चौहान की पुत्री कृष्णा हू । जब आप शिवगढ में महुए के पेड के नीचे विश्राम कर रहे थे तब मैंने ही तो अपनी दासी को आपके पास भेजा था । आज के दिन आप हमारे मेहमान बनिये और शिवगढ़ में ही विश्राम करिये ।

कल्लाजी राजकुमारी की असीम वीरता और अद्भुत शूरवीरता से बडे प्रभावित हुए । उन्होंने कहा - अभी तो मुझे बहुत जल्दी ही लौटना है । मैं फिर कभी अवश्य आऊंगा । कृष्णा यह सुन उनसे लिपट गई और बोली - आपको जब से मैंने अपने महलो से देखा है तब से ही मैं तो आप पर मोहित हो चुकी हूं और मन से आपको अपना स्वामी मान चुकी हूं पेमला को मौत के घाट उतारने का बल और साहस भी मैंने आपसे ही

पाया है नाथ ! आप मुझे इस तरह छोडकर कैसे जा सकते है ! कृष्णा ने यह कह घोडे की रास पकड ली ।

कल्लाजी ने उसके हाथ पर अपना हाथ रख उसे अपने हृदय से लगाया और वचन दिया कि मरते-जिन्दे रहते किसी भी हालत मे एक बार अवश्य आकर मिलूंगा । यह कह वे वहा से चल पडे ।

महाराणा द्वारा सम्मान :

पेमला का खात्मा करने पर महाराणा इतने प्रसन्न हुए कि टोकरगढ और भोगईगढ ही नहीं अपितु सारा छप्पन परगना ही कल्लाजी को बख्शीश कर दिया ।

पेमला का काम तमाम कर कल्लाजी चित्तौड लौटे तो अपार मुगल सेना पडाव डाले थी । जयमल को कल्लाजी मिले जैसे बहुत बड़ा सहारा मिल गया । सुबह होते ही घमासान लडाई छिड गई । सेना के तीन भाग थे जिन्हें जयमल, पत्ता तथा कल्लाजी सभाल रहे थे ।

अकबर द्वारा धोखे से जयमल पर वार :

कई दिन युद्ध चला मगर अकबर को विजयश्री हाथ नही लगी । वह निराश हो गया । एक रात्रि जब जयमल लाखोटिया बारी के वहां किले की दीवाल चुनवा रहे थे तब धोखे से अकबर ने अपनी संग्राम नामक बंदूक से वार किया जिससे उनका एक पाव लगडा हो गया । वहीं पास की एक चट्टान पर उन्हें सुला दिया गया जिस पर आज भी खून के निशान देखने को मिलते हैं ।

गौ रक्त से कल्लाजी विचलित :

अकबर यह भलीभांति जानता था कि कल्लाजी जैसे वीर से लोहा लेना खेल नहीं है । अत: कोई ऐसा रास्ता निकले जिससे कल्लाजी पर काबू पाया जा सके । इसके लिए उसने बीरबल से परामर्श किया । बीरबल बड़ा बुद्धिमान और समझदार था । वह हिन्दुओं की कमजोर नस से परिचित था । उसने कहा - यों तो इस वीर पर विजय पाना बहुत मुश्किल है किन्तु गाय का रक्त यदि उसके आगे डाल दिया जाय तो उसे लांघ कर वह वीर आगे नहीं बढेगा । ऐसी स्थिति में चारों ओर से घेरकर विजय पाई जा सकेगी ।

बीरबल की यह सलाह अकबर ने गांठ बांधली । दूसरे दिन उसने यही किया । कल्लाजी जब दुश्मनों का सफाया करते हुए आगे बढ़ रहे थे कि अचानक उनकी निगाह गौ रक्त पर पडी । उनके पांव आगे बढने से रूक गये और पल भर के लिए सुध हीन हो उन्होंने पीछे मुड़कर देखा

देवी को शीश चढाना :

ज्योंही उन्होंने पीछे देखा कि जगदम्बा का दिया वरदान उन्हें याद हो आया । उन्हे तत्काल अपनी गलती का एहसास हुआ और वे वहीं से सीधे लाखोटिया बारी के वहा देवी के पास पहुंचे । अपने ही हाथ से अपना सिर काटा और देवी को चढा दिया ।

देवी ध्यान मग्न थी । जब खून की धार उसके मुँह पर जा लगी तो उसने ध्यान खोला और कल्ला को पाया । उसी वक्त देवी ने अपनी तलवार देकर कल्लाजी को कहा कि जा जल्दी जा, काका (जयमल) बाहर पडा है, उसे अपनी पीठ पर उठा और युद्ध कर । मै तेरे साथ हूं ।

देवी की यह बात वहां खडे एक नागर ब्राह्मण ने सुन ली । वह तत्काल दौडा-दौड़ा गया और मुगलों को इसका भेद दे दिया । मुगल सावचेत हो अपनी व्यूह-रचना में लग गये ।

जयमल को कंधे उठाना :

कल्लाजी ने देवी से खड्ग प्राप्त कर चट्टान पर लेटे जयमल को अपनी पीठ पर बिठाया । जयमल की ठोडी कल्लाजी की गर्दन पर टिक कर उनका सिर बन गई । दोनो के चार हाथ - चतुर्भुज रूप हो गये । बड़ी बहादुरी से दुश्मनों को खदेडते हुए कल्लाजी की पीठ पर अधिकाधिक वार करने प्रारम्भ कर दिये ताकि जयमल जख्मी हो ठिकाने लगे । पर जब इससे भी दुश्मन को सफलता नहीं मिली तो उन्हें छुरा भोंक दिया गया । इससे वे नीचे जा गिरे ।

कल्लाजी ने पीछे देखा तो जरणी खडी थी । उसने तत्काल वहा से भाग निकलने का आदेश दिया । कल्लाजी तीन दिन के भूखे-प्यासे वहां से भागे ।

आगरा में गाड़े गये जयमल पत्ता :

जिस स्थान पर जयमल गिरे वहाँ उनकी यादगार में छतरी बनवा दी गई । यह छतरी आज भी इस घटना को ताजा किये है । इस छतरी के पास कल्लाजी की छतरी भी बनी हुई है ।

जयमल और पत्ता दोनों की लाशें दुश्मनों के हाथ पड़ गई । दुश्मन उन्हें आगरा ले गये जहां फतहपुर सीकरी के बुलद दरवाजे के पास जमीं में गाड दी गई ।

सिर विहीन कल्लाजी चले कृष्णा से मिलने :

कल्लाजी को दिये गये वचन का निर्वाह करना था चित्तौड़ से कल्लाजी चले तो

चौईस यवन उनके पीछे हो लिये । रास्ते में खदेड़ते-खदेड़ते कल्लाजी ने इक्कीस सिर कलम कर दिये । तीन बचे रहे जिन्होंने सलुम्बर से पन्द्रह किलोमीटर आगे तक कल्लाजी को नही छोड़ा । यहां आकर एक जगह खेजडी के पास कल्लाजी ने इनका भी काम तमाम कर दिया । इस समय कल्लाजी प्यास से बुरी तरह मरे जा रहे थे पर वहां कौन उनकी प्यास बुझाता । खेजडी से कल्लाजी की यह दशा देखी नहीं गई । वह द्रवित हुई और झरी जिससे कल्लाजी के धड पर पानी की बूदे गिरी । कल्लाजी तृप्त हुए और वहीं उनके प्राण पखेरू उड गये ।

कृष्णा को देवी का स्वप्न :

देवी ने कृष्णा को स्वप्न दिया तदनुसार कृष्णा अपनी दासी चम्पा को ले छकड़े में बैठ महल से निकल पड़ी । आकर देखा तो सिर विहीन कल्लाजी खेजडी के नीचे निष्प्राण पड़े थे ।

क्षण भर को कृष्णा असमजस में पड़ गई - 'क्या यही कल्लाजी हैं ? सिर के बिना धड के साथ कैसे सती होऊ ?' आकुल-व्याकुल कृष्णा बेचैन हो गई । उसने मन ही मन मां जगदम्बा का सुमिरण किया । सुमिरण करते ही देवी प्रगट हुई और कृष्णा के हाथों में कल्लाजी का सिर दिया । अब क्या था । कृष्णा व चम्पा ने मिलकर खेजडी के नीचे चिता तैयार की ।

कृष्णा द्वारा चिता में अपनी आहुति देना :

चिता तैयार हो गई । कृष्णा ज्योंही अग्नि-प्रवेश करने जा रही थी कि अचानक उसमे विचार आया कि स्वामी का शरीर खण्डित रूप में है तो क्यों न मैं भी खण्डित रूप में ही सती होऊ । यह सोच तलवार से उसने अपने हाथ-पांव के चौईस टुकड़े कर उनकी आहुति दी और अन्त मे अपने को चिता भेंट कर दिया ।

कल्लाजी-कृष्णाजी का सनातन संबंध :

कल्लाजी ने कृष्णा को दिये गये वचन का अन्ततः पालन किया । उनके मन में एक यह पीड अवश्य रह गई कि काका जयमल की मृत्यु के बाद वे उनकी देखभाल नहीं कर पाये । जरणी ने उनके वचन की रक्षा करते हुए उन्हें तत्काल भागने का आदेश दिया ।

कृष्णा-कल्लाजी का यह सबध उनके निधन के बाद आज भी सनातन है । जहा-जहां भी कल्लाजी की गादी लगती है, वहां दो जोत जलाई जाती है । एक कल्लाजी की और दूसरी कृष्णाजी की । इनमें कृष्णाजी की जोत स्वतः छोटी हो जाती है जबकि कल्लाजी की अपेक्षाकृत बड़ी रहकर जलती रहती है

सती का चबूतरा

[illegible] अंगन था । कृष्णा जहां सती हुई वहां एक [illegible] दिया गया । यह चबूतरा यहा आज भी बना [illegible] कहते है । इसके पास ही खेजड़ी का वृक्ष भी खडा है । [illegible] और देवी जगदम्बा-कालका व [illegible] की प्रतिमाएं है । दूसरी ओर कल्लाजी का देवस्थान बना हुआ है [illegible] आसोजी नवरात्र के प्रथम रविवार को बडा भारी मेला भरता है ।

[illegible] श्रद्धालु इकट्ठे होते हैं । मेले में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति [illegible] । एक गोंद घी से भरे कलावे में छोड दिया जाता है । जब [illegible] निकाला जाता है ।

रूण्ड से रूण्डेला गांव :

[illegible] के कारण इसके पास ही रूंडेला गांव बस गया । कहते है कल्लाजी का [illegible] गिरा तब सती ने उनकी आत्मा को ऊपर नहीं जाने दिया और [illegible] देवगति प्रदान कर जगत के कल्याण का दायित्व सौंपा ।

[illegible] समय यहां का कल्लाजी का देवरा बड़ा चमत्कारी था । तब मेले में कल्लाजी [illegible] अपने सेवक के कंधे पर बिराज कर सबको दर्शन देते थे ।

चित्तौड़ में कल्लाजी का निवास :

युद्ध से जब कल्लाजी अचानक गायब हो गये तो दुश्मन यह नहीं जान पाये कि वे कहां चले गये । उन्होंने सोचा कि हो न हो, वे अपने निवास में जाकर छिप गये हैं । यह सोच दुश्मनों ने उनके निवास को चारों ओर से घेर लिया और तोपों द्वारा पूरे घर को उडा दिया । आज उस जगह मात्र एक छोटी सी टेकरी रह गई है । कोई नहीं जानता कि कल्लाजी कहां रहते थे । यह निवास अकबर की हवेली के पास, पत्ता महल के पीछे था ।

कल्लाजी का सम्पूर्ण जीवन संघर्षों की करुण-कठोर कहानी है । स्वामी-भक्ति और देश-सेवा के लिए अपना सर्वस्व समर्पण कर देने में ये सदैव आगे रहे । साठ वर्ष की उम्र में इन्होंने अपना शरीर छोड़ा ।

कल्लाजी नागयोनी में :

नागों का हमारे यहां कई दृष्टियों से बड़ा महत्व और माहात्म्य है । ये नाग एक

फण से लेकर सहस्त्र फण तक के होते है । कल्लाजी को अर्जुन ने यही नाग योनि प्रदान की । ये पांच फणी नाग योनि लिये है । इनका विचरण अन्तरिक्ष, पृथ्वी और पाताल तीनों लोको मे है । जब ये पृथ्वी पर आते हैं तब इन्हें कोई न कोई रूप धारण करना पडता है । अतः ये अपने सेवकों के शरीर मे प्रवेश करते हैं ।

लोक देवता कल्लाजी के करीब 700 थानक है । इन थानकों-देवरों पर प्रति रविवार को चौकी लगती है । बडी सख्या में लोग इन देवरों पर जमा होते हैं और इनके दर्शन कर, इनका आशिष प्राप्त कर कृतार्थ होते है । कल्लाजी सबकी सुनते हैं । उनकी हर प्रकार की समस्या का समाधान करते हैं । दुख दूर करते हैं और अमन चैन देते है ।

सबका इलाज : सबका समाधान :

इनके दरबार से कोई खाली नहीं लौटता । पुत्र विहीन दंपतियों की यहां गोद भरी जाकर उन्हें संतान प्रदान की जाती है । पागल कुत्ता, भुजंग, गोहिरा, बिच्छु आदि के कटे लोगो का जहर दूर किया जाकर उन्हें चंगा बनाया जाता है । गूंगे, बहरे, पागल यहां आकर ठीक होते हैं । मिरगी, हृदय रोगी तथा लकवे से पीड़ित यहां आराम पाते हैं । पेट की बाड, खांसी, बुखार, सर्दी, हैजा, निमोनिया जैसी बीमारियां पलक झपकने जितने समय में हवा होती हैं । कैसर जैसी असाध्य बीमारियों का भी यहां इलाज है । इनके यहां कोई भी लाइलाज नहीं है । भूत, प्रेत, जिंद, डाकण, चूडैलण भी यहां भागते नजर आते है ।

यह इलाज होता है, केवल शक्ति (तलवार) का स्पर्श देने से, भभूत (तवन की राख) से या फिर लच्छे की बैल बांधने से । कभी-कभी ये बिना शरीर चीरे, खून की एक भी बूद बहाये ऑपरेशन करके भी बीमारी का शमन करते हैं तब अच्छे-अच्छे सर्जन तक आश्चर्यचकित हो देखते रह जाते हैं ।

अधे कवि सूरदास ने अपने अन्तर की अनुभूतियों से ये पंक्तियां उच्चरित की थीं - जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कुछ दरसाई । बहिरो सुनै, मूक पुनि बोले, रंक चलै सिर छत्र धराई ॥ मैंने कल्लाजी के यहां इन पंक्तियों को सार्थक चरितार्थ होते देखीं । इनके दरबार मे कोई बीमारी ऐसी नहीं जिसका इलाज न हो, कोई समस्या ऐसी नहीं जिसका समाधान न हो । कल्लाजी का जब भी गादी पर पधारना होता है उनके साथ नो देवियां रहती हैं । हरसिद्धि, आवड, करणी, निद्रा, सरस्वती सब की सब इनके कार्यों में हाथ बंटाती हैं । करणी तलवार की नोक पर रहती है जो बीमार के शरीर में प्रवेश कर बीमारी गलाती है । आवड मूठ पर रहती है ।

कृष्ण के भाई बलराम भी ये ही थे जिन्होंने कुरूक्षेत्र के युद्ध में अपना लोहा दिखाया । राम के भाई लक्ष्मण भी ये ही थे जिन्होंने शूर्पणखा की नाक काटी और सीता की रक्षा के लिए लक्ष्मण रेखा बनाई । इसलिए इनकी कीर्ति की यश गाथा हजारों कोस तक फैली देखी सुनी जाती है - कल्ला रीणा गाव री हेलो कोस हजार ।

कल्लाजी के सेवक सरजुदास जी :

कल्लाजी पर जगणी की बड़ी कृपा-दृष्टि है । जरणी ने कई महत्वपूर्ण कार्य इन्हे दे रख है । साथ ही 84 हजार सैनिक भी दिये हैं । इनमें से 35 हजार सैनिक तो जगत के कल्याण के लिए हर समय तैनात हैं । राजा मानसिंह जैसे श्रेष्ठतम वीररत्न इनके सेनापति हैं ।

कल्लाजी के जितने भी सेवक हैं, सबको अलग-अलग किरणें दी हुई हैं । ये किरणें एक से लेकर इक्कीस तक हैं । इनमें सर्वाधिक किरणें सरजुदासजी को प्राप्त हैं । एक से दस किरणों प्राप्त सेवकों में जब कल्लाजी का भाव आता है तब वे पूर्णत: स्थिर भावी नहीं हो पाते है । उन्हें अपने-पराये का भान रहता है जबकि दस के बाद प्रदत्त किरणों वाले सेवकों में पूर्णत: कल्लाजी ही अवस्थित रहते हैं । ऐसी स्थिति मे सेवक में अपने स्वय का ज्ञान एवं भान भाव नहीं रहता है । इन्हीं सरजुदासजी में यदा-कदा मानसिंहजी का पधारना भी होता है । बचपन में ही सरजुदासजी के माता-पिता चल बसे । अत: ये कुछ पढ भी नहीं पाये । जब इनका विवाह हुआ तब इनके स्वसुरजी ने शादी में इन्हें तुलसीकृत रामचरित मानस दी । उसी से इन्होंने मामूली पढना-लिखना सीखा । मिलेट्री में नौकरी की तब भी हस्ताक्षर नहीं कर अंगूठा लगाते ।

सरजुदासजी की एकांत साधना :

इनका प्रारंभिक जीवन बड़ी साधना व तपस्या में बीता । तीन वर्ष बांसवाडा के घने जंगलों में व्यतीत किये तब बील-पत्र बाट कर उनका एक गिलास पानी प्रतिदिन पीते । यही उनका आहार रहता । शरीर पर कुछ नहीं पहन कर केवल लगोट की जगह पत्ते लपेटे रहते । वृक्ष पर रात काटते । कभी नीचे शेर दहाड़ता और ऊपर बदर किलकारी करते । कभी अजगर और अन्य जानवर घूमते, भटकते पर ये जरा भी विचलित नही होते ।

इस बीच इन्हें कई वनस्पतियों और जड़ी-बूटियों का ज्ञान हो गया । रात्रि को कुछ वनस्पतियां दीपक की तरह प्रकाश देती । ये उन्हें आवाज देते । कहते - आ, मेरा यह काम कर दे कुछ हा कहती, कुछ ना बोलती हा वाली को ये अपने काम में लेने

इस प्रकार इन्हें वनस्पतियों की सत्ता महना और उपयोगिता की बड़ी अच्छी जानकारी हो गई । सात वर्ष तक ये फलाहारी रहे डेड़ बरस केवल मक्की की गेंदी खाई ।

रूंडेला में जब कल्लाजी का मेला भरा तो सरजुदासजी भी गये । यहां कुए की मुडेर पर बैठे थे कि भीतर से कल्लाजी ने फरमाया - बासवाडा से सरजुदास आया है, उसे बुलाओ । हजारों आदमियो में सरजुदासजी की ढूढ शुरू हुई । सरजुदासजी भीतर पहुचे । वहां एक महिला बैठी हुई थी जिसके कोढ चू रहा था । सरजुदासजी ने सोचा- इसे ठीक करें तो मैं इन्हे मानू । कल्लाजी ने कहा- इसके कलवाणी छिटक । उन्होंने कलवाणी छिटकी और देखते-देखते कोढ़ चूना बन्द हो गया ।

सरजुदासजी में कल्लाजी का पदार्पण :

जब सरजुदासजी मेले से लौट रहे थे तब रास्ते में एक महिला को गाडी में बिठाकर लाया जा रहा था । सरजुदासजी ने पूछा कहा ले जा रहे हो ? उसमें बैठा व्यक्ति बोला - इसे सर्प ने काट खाया है सो बावजी (कल्लाजी) के देवरे ले जा रहे हैं ।

सरजुदासजी मे उसी वक्त कल्लाजी पधारे और उन्होंने उस महिला का सारा विष चूस लिया । वह महिला स्वस्थ हो गई ।

बांसवाडा में कल्लाजी की गादी :

बासवाडा जाकर टेकरी पर कल्लाजी की गादी प्रारम्भ की गई । लोगो को पता लगा तो वहा भीड की भीड़ एकत्रित होने लग गई । सरजुदासजी में कल्लाजी का पधारना होता और मानसिक तथा शारीरिक सभी प्रकार के रोगियों का इलाज होता । धीरे-धीरे यह बात फैलती गई और वहा कल्लाजी की धाम चल पड़ी ।

बडी सरवण में गादी का जोर :

बांसवाडा में कुछ बरस तक कल्लाजी की बड़ी धाम चली । कई लोगों को भयंकर बीमारियों से मुक्ति मिली परन्तु अचानक मालिक (कल्लाजी) ने यहां से धाम उठवाकर रतलाम के पास बडी सरवण लगाने का आदेश दिया अत: सरजुदासजी बांसवाडा से बडी सरवण चल पडे ।

बडी सरवण में लम्बे फैले मैदान में हजारों लोगों की भीड निरन्तर बनी रहती । यहां मालिक का परचा भी बड़ा चमत्कारी रहा । दिन रात सरजुदासजी में मालिक का बिराजना बना रहता फिर भी यह संभव नहीं था कि प्रत्येक रोगी को बुलाकर व्यक्तिश: उसका दुख दूर किया जा सके । ऐसी स्थिति में स्त्री-पुरूषों की लम्बी लाइन लग जाती तब मालिक पधार कर उपर से शक्ति को निकालते और सभी ठीक हो जाते

मालिक की कृपा से जब मारे रोगी ठीक होने लगे तो वहां आने वालों की सख्या मे दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि होने लग गई । ऐसी स्थिति में स्थानीय व्यक्तियो में ईर्ष्या द्वेष और बेईमानी ने घर कर लिया । जब इन अवगुणों की अति होती देखी गई तो मालिक ने यह स्थान भी छोड़ दिया ।

फूलपुर में गादी का प्रभाव :

यहां से सरजुदासजी गाड़ी में बैठकर चल पडे । तब तक इन्हें यह मालूम नही था कि कहां चलना है । इसी बीच अहमदाबाद का एक सेठ मिल गया जो प्राय: बडी सरवण आता रहता । वह सरजुदासजी को अहमदाबाद ले गया और साबरमती के किनारे फूलपुर गाव में गादी लग गई ।

बड़ी सरवण आने वाले सभी लोग फूलपुर आने लग गये । यहा भी कल्लाजी के पर्चों ने बड़े-बड़े चमत्कारी काम किये परन्तु जब किसी के द्वारा मूलस्थान विकृत कर दिया गया तब जोर की बाढ़ आई जिससे वह पूरा हिस्सा ही उसमें बह गया । बचा तो केवल दीपक जलने वाला स्थान बचा रहा । यह घटना सन् 1973 की है ।

वर्तमान गादी वलाद में :

फूलपुर से उठी कल्लाजी की यह धाम इसके पास ही वलाद गाव मे काली कला धाम नाम से स्थापित की गई । यह गांव हिम्मतनगर-अहमदाबाद मार्ग पर स्थित है । यहा से अहमदाबाद सत्रह किलोमीटर दूर है । यहां हर दूसरे मगलवार को गादी लगती है ।

पिछली धामों की तरह कल्लाजी की यह धाम भी उतनी ही चमत्कारी, प्रभावी तथा प्रतापी पर्चों वाली है । दर्शनार्थियों, दुखियारों का यहा आना-जाना बना ही रहता है । सरजुदासजी इसे एक श्रेष्ठ आश्रम के रूप में विकसित करने में लगे हुए हैं । नवरात्रि मे यहां नौ ही दिन मेला लगा रहता है । इन दिनों सभी यहां प्रसाद रूप में भोजन प्राप्त करते है ।

कल्लाजी की कीर्तिपताका :

कल्लाजी की यह कीर्तिपताका बड़े व्यापक रूप मे फैलती जा रही है । वलाद की गादी के अलावा मालिक का जब-जब जहां-जहा आदेश होता है वहां सरजुदासजी पहुंच जाते हैं और अपने उन भक्तों की सम्हाल करते है जो मृत्यु शैया पर पडे हुए है । एक बार जो भी इनकी शरण में आ जाता है वह फिर इनका हो जाता है ।

जैसा कि ऊपर कहा गया कल्लाजी पाच फणी नाग योनी में हैं ये पाच फण हैं

आँखें दो, नाक दो, मुँह एक । मनुष्य के भी ऐसे ही सात फण हैं । दो कान और है जो कल्लाजी के, नाग के नहीं हैं । सुनने का काम नाग आँखों से ही करता है । इन सारे फणों का मूल एक है जो गला है । कल्लाजी कभी निद्रा नहीं लेते हैं । शुक्रवार को पूरे ही दिन ये जरणी की सेवा में रहते हैं ।

कल्लाजी की यह धाम दिन दूनी रात चौगुनी बढती रहे और अधिकाधिक-सर्वाधिक लोगों को निरोगी, स्वस्थ, सुखी, आनन्दित, उल्लसित, हर्षित, प्रफुल्लित एवं मस्त मगन करती रहे । कल्लाजी सबका कल्याण करें । जगदम्बा सबकी रक्षा करें ।



19

कुंवारो के देश में सभी विवाहित

राजस्थान के आदिवासी गरासियों का देश 'कुंवारों का देश' कहलाता है। आबू पर्वत के पूर्व में फैली पहाड़ियों में चौइस गांव फैले हुए है। इन गाँवों का यह क्षेत्र भाखरपट्टा कहलाता है। इस पट्टे का सबसे बड़ा गांव जाम्बुडी है। इसी गांव में इन गरासियों का सबसे बड़ा आदमी 'पटेल' रहता है। यह पटेल ही इनका राजा होता है। इसी का हुकम चलता है। फरमान चलता है। न्याय चलता है। सजा चलती है। सजा में पांवों में खोड़ाबेड़ी डालना, जेल देना तक रहा। कोठरियो के अवशेष तो आज भी देखे जा सकते हैं। पटेल परम्परागत पीढ़ी दर पीढी बनता आ रहा है। वर्तमान पटेल लालजी हैं।

लालजी से कई जगह मिलना हुआ। भीलवाड़ा गैर समारोह मे। उदयपुर लोकानुरंजन मेले में। गरासियों के ही सबसे बडे मेले सियावा में तो कभी और प्रसंगों पर भी। सब जगह लालजी अपने गरासिया कलाकारों नर्तक नर्तकियों के साथ अपनी सर्वाधिक रंगीन और आदिम प्रस्तुतियों में। लालजी ने बताया था कि उनके बापदादों का पूरा दबदबा था। राजा तक संकट की स्थिति मे उनके यहा शरण लेते थे। सिरोही दरबार ने ली थी। चारों दिशाओं में इनके चार नाके थे जो 'चौकी' कहलाते थे। आने जाने वालों की पूरी देखभाल की जाती थी। चौकसी रखी जाती थी। प्रत्येक आने वाले मुसाफिर से टैक्स वसूला जाता था जो 'मूडकू' कहलाता था। इस 'मूडकु' से उस क्षेत्र मे उस व्यक्ति की जान माल की पूरी सुरक्षा रहती थी।

गरासियों के घर आबूरोड पिंडवाड़ा वाली कोटडा तथा गोगुन्दा तहसील की पहाडियों में फैले हैं। इन पहाड़ियों का विस्तार गुजरात के बनासकांठा व साबरकाठा जिले तक है। इधर भी गरासियों की बस्ती है। आबू में गरासियों की उत्पत्ति हुई। इसके कई कथा किस्से हैं। बीच में युद्ध की स्थिति ऐसी आई कि इन्हें अपना देश छोडकर जाना पड़ा तब इन्होंने आन ली कि जब तक आबू वापस नहीं लेंगे एक ही कान में मुरकी

पहनेंगे । इस आन को पूरी निभाई । आबू वापस लिया तब ही दूसरे कान में मुर्की पहनी । पुन: अपने घर आने पर ये लोग गर आया - गगया कहे गये । गरग्या शब्द गरासिया की जगह आज भी प्रचलित है जिसके मूल मे यही भाव तथ्य लक्षित है ।

वैसाखी पूर्णिमा को इन आदिवासियों का समूह जुड़ता है । सघ एकत्रित होता है जिसे ये 'हंग' कहते है । यह हंग पाच वर्ष में एक बार कभी अबाजी तो कभी आबूजी जाता है । आबू की नक्की झील इनका वह पवित्र स्थान है जहां ये अपने पूर्वजों का अस्थि विसर्जन करते है । यह नक्की झील नक्खी झील है । नख यानी नाखून से यह खोदी गई है इसलिए यह बडी पवित्र मानी जाती है । इस झील संबंधी कई किस्से इनमें प्रचलित हैं ।

जाम्बुडी में दोसौ घरों की बस्ती । होली पर गांव के चौगहे पर प्रत्येक घर से एक एक बल्ली लाकर गरासिया होली थडे रखेगा । घास-फूस आदि स ढेर कर देगा । जंगल से और भी लक्कड लट्ठ लायेंगे और हँसी खुशी से होली मनायेंगे । रात को दो तीन बजे तक सारा का सारा गाव निरत गीतों की गूज में आसपास दूर दूर तक के जंगल को गूंजाते देखे जाते है । सुबह जब सारे लक्कड जलकर तेज अंगारे बन जाते है तब युवक मिलकर उन अंगारों पर खेलते कूदते मिलेंगे । इस समय ढोल के धमाकों की ऊजगूंज सारे आकाश को एक गहराती गूजती विशेष गर्राई में उठा लेते हैं । बीस-बाईस ढोल जब एक साथ बज उठते हैं तब गरासियों का मगल देखते बनता है । जंगल में सचमुच का मंगल देखना हो तो जाम्बुडी चले जाइये ।

होली के बाद से गरासियों के मेलों की बाढ आ जाती है । त्रयोदशी को अंबाजी के पास कोटेश्वर का मेला । अमावस्या को देलवाडा के पास कोटडा कोसीना गांव पर चेतर विचितर मेला । इन मेलो का पौराणिक संदर्भ है । उनके कथा किस्से कई तथ्य उजागर करते हैं । वैसाख कृष्ण पंचमी को सियावा गांव का गाणगौर मेला इनका सबसे बडा मेला भरता है लगभग ढाई सौ बरसों से यह मेला लगता आ रहा है । सुरपगला गाव के भूराराम गरासिया, जो सरपंच है, ने बताया कि सियावा गांव में तीन फली है - माता का खेडा, जलैया फली और सियावा गाव फली । इन तीनों फली में बांसिया डूंगाइचा तथा सिरीमिया बांसिया गौत्र के गरासिया रहते हैं । इनमें प्रतिवर्ष एक एक गौत्र के गणगौर लेते हैं । चैत्र शुक्ला एकम को पांचयुवक और पाच युवतिया गणगौर का व्रत लेती हैं । बीस दिन तक गौर माता का अखड दीपक जलता रहता है और ये युवक युवतिया प्रतिदिन अपने सिर पर गणगौर को लेकर गाते नाचते रहते हैं । गौर के साथ ईसर भी होते है । बीस दिन तक गणगौर ईसर छोटे रहते हैं । केवल लोठे मे नीमफल सहित डालिया या अन्य फूलावली लगादी जाती है वही गौर ईसर स्वरूप होता है अतिम दिन ये साक्षात्

स्वरूप धारण करने है तब बांस की खपचियों के सहारे इन्हें आदम रूप दिया जाता है । दोनों के मुंह (मुख मुखौटे) काठ के बने होते हैं जो लगा दिये जाते है । फूल पत्ती, खजूर के कच्चे फल गुच्छ, आम के पत्ते, महुवा फल आदि की मालाएँ बनाई जाकर गौर ईसर को सजाते है और संध्या को विशेष जुलूस-उत्सव के साथ नाचते गाते मेले मे पहुचते है । गणगौर ईसर का विवाह रचाया जाता है ।

इस मेले में प्रत्येक गरासिया-गरासियन भाग लेना अपना पवित्र कर्तव्य समझते थे । पहाड़ियां घाटों घाटियों के तंग संकडे रास्ते से चलकर झुड के झुंड, हग के हग रात-रात पर गाते नाचते चले आते थे । आज भी इसी हूस में ये लोग आते है । तब मेले मे प्रत्येक हग को आटा दिया जाता जिससे ये रोटले बनाकर खाते । अब यह प्रथा नही रही । अकाल की मार ने इनके साथ जबर्दस्त चोट की । अब उतनी फसल भी नही होती । भूराराम ने बताया कि तब एक किलो अनाज बीते तो एक कलसी पैदावार होती । एक कलसी का अर्थ दो क्विंटल के बराबर था । आज स्थिति ठीक उलटा खा गई है । अब एक कलसी बोते हैं तब जाकर एक किलो पैदा होता है ।

मोर को ये आदर्श पक्षी मानते हैं । कई गीत हैं मोर के इनमें । एक गीत में मोर से सवाल-जवाब हैं । उससे पूछा जाता है तुम्हारे मामा कौन है ? वह कहता है - बारह मेघ मेरे मामा हैं और तेरह बीजली मेरी मामियां है ।

लीला मोरिया रे थारे कुणे रो तूं भाणेज

लीला मोरिया रे मेघां रो मूं भाणेज

लीला मोरिया रे कुण है थारा मामा

लीला मोरिया रे बारे मेघा मारा मामा

लीला मोरिया रे कुण है थारी मामी

लीला मोरिया रे तेरे बीजली मारी मामी

किस्सा है एकबार मोर ने गेंद उछाली । बारह बरस का अकाल पडा । खाने को तो क्या देखने तक को अन्न का दाना तक नहीं । बादलों ने समझा कि मोर भी मारे अकाल के मर गया होगा पर जब उसे जिन्दा पाया तो उसके धैर्य और सहनशीलता पर बडा अचरज हुआ । मोर को पूछा कि क्या खाकर जीया होगा ? उसने कहा - 'नाज नहीं था तो क्या हुआ, कंकड तो थे । मैं उन्हीं को खाकर जीवित रहा । इन ककडों के लिए मुझे कम मेहनत नहीं करनी पड़ी । कितना भटका हूं, देखो न मेरे पांव । कैसे बेडोल हो गये है नाच तक बिगड़ जाता है तभी तो इन्हें देख रोता हूं .

विवाह शादियों में इन्हें बहुत खर्च करना पड़ता है । इतना खर्च कहा से लाओ । इसलिए अमूमन इनमे विवाह बहुत कम होते हैं । पर परिवार सभी बसा लेते हैं । लडका जब जवान हो जाता है तब वह अपनी हमउम्र लड़की की तलाश में रहता है । इस तलाश मे लडकी भी रहती है । दोनो के समधी भी इसमें पूरा-पूरा सहयोग करते हैं । लडकी-लडका अपनी ही जाति बिरादरी का होता है । दोनों को कोई प्रसंग ढूंढकर मिला देते हैं । यो इनमें विवाह पूर्व लडकी को किसी से मिलने की पूरी आजादी है । गरासिया युवक युवती तब अपने मिलनाचार में एक दूसरे को भेंट भेंटावण देंगे । यह भेंट काच कांगसी बीदी रूमाल जैसी रोजमर्रा की जरूरत लिये होती है । जब दोनों का प्रेम पक्का हो जाता है तब वे किसी मेले में मिलने का तय कर वहां से भागने का मचल पड़ते है । सियावा के मेले में ऐसे युगल प्रेमी सर्वाधिक उडते भागते सुने जाते हैं ।

लडकी को उडाकर युवा गरासिया कहीं छिपता लुकता नहीं है । वह सीधा अपने पितृगृह पहुंचता है । माता पिता सब समझ जाते हैं । बच्चा जवान हो गया है तो लड़की तो लायेगा ही । गाववाले भी इसे अछाने नहीं रहते हैं । मोट्यार ने जो कुछ किया है, उसमे सब राजी हो जाते हैं । इधर लड़की का पिता ढूढता पता लगाता वहाँ आता है । गाव के पचो को इकट्ठा करता है । पंच पंचायती बैठती है । फलाणे का लड़का फलाणे गाव की लडकी ले आया । अब जब ले ही आया और दोनों रजामन्द है तो पंच भी उस पर अपनी सही लगा देते हैं परन्तु हर्जाने के रूप में लडके के पिता को एक निश्चित रकम लडकी के पिता को देनी होती है जो वे तय करते हैं । अमूमन यह रकम चार हजार रुपया होती है इस प्रकार पंचो की साक्षी में मेले से उडा वह युवा मेल मिलाप प्रेमलीला से जीवनलाल में परिवर्तित हो जाता है । ऐसे अस्सी प्रतिशत गरासिये मिलेंगे जो इसी रूप में अपने जीवन साथी वरण करते हैं । विवाह की रस्म कहीं होती भी है तो बहुत बाद मे जब उनके सताने हो जाती है । ऐसे मौके भी आते हैं जब पिता पुत्र एक साथ शादी रचाते है । इसीलिए इनमें कहा जाता है कि ये कुंवारे होते हुए भी विवाहित होते हैं ।

आबू रोड़ के ओर गांव के गरासिया संस्कृति के अध्येता मगनलाल खंडेलवाल ने बताया कि गरासियो मे महिला सर्वाधिक सुरक्षित है । एक एक गरासिया दो-दो तीन-तीन औरतें रखता है । उसके फैले हुए खेत होते हैं । भयंकर मुश्किल मुसीबत में भी वह खेत को कभी नहीं बेचेगा । अपनी औरतों को वह जुदा-जुदा खेत देकर उनकी मालकिन बना देगा । अलग रहने के लिए उन्हें झोपडी दे देगा । खेतीबाड़ी का सारा काम औरते करती हैं जो पुरुषों से अधिक श्रमशील होती हैं ।

फिर यदि कोई औरत बीमार हो जाती है तो सबसे पहले इसकी सूचना उसके

पीहर मां बाप को भिजवानी होगी । तब उसके मा बाप उससे मिलने आयेंगे और इस बात की पूरी छानबीन करेगे कि उसका इलाज ठीक से कराया जा रहा है या नहीं । सुसराल मे उसे किसी प्रकार का कोई कष्ट तो नहीं है । यदि किसी स्त्री की मृत्यु हो जाती है तब भी उसके पीहर अनिवार्यत: खबर भेजी जायेगी और वे आयेंगे तब ही उसकाअंतिम सस्कार किया जायेगा । मृतक के सगासोई इस बात की पूरी जाच करेंगे कि उसकी मृत्यु प्राकृतिक हुई है या किसी षड्यत्र की वजह से की गई है ।

सहज मृत्यु नहीं होने की स्थिति में बहुत बडा झगडा खडा हो जाता है । ऐसी स्थिति मे लड़की के पीहर वाले तथा अन्य समधी तीर तलवार भाले आदि से सुसज्जित हो उन पर धावा बोल देंगे तब गॉव वाले भी उन्हे बचाने नहीं आयेंगे । इस धावे में वे घर जला देगे । मवेशी लूट ले जायेंगे । घर का धनमाल ले जायेंगे और उस पूरे गाव के लिये भी खतरा पैदा कर देंगे । इस स्थिति की पूर्व आशंका से कभी-कभी लडकी के सुसराल वाले अपना घर छोड़ अन्यत्र भागते छिपते भी सुने गये है । कदाचित समझौते के लिये पचायत भी बैठाई गई तो आक्रमणकारियों को बात-बात पर नेग देना पडेगा । जैसे हाथो से तीर नीचे रखवाई का नेग, कमरबधा खुलवाई का नेग, जूते खोलाई का नेग, छाया मे बैठने का नेग । ऐसे नेग पर नेग और उसके पैसे पर पैसे बढ़ते जायेंगे । यह राशि भी इतनी अधिक हो जायेगी कि उस परिवार के लिए बहुत भारी पड़ेगी । यह वैर यानी झगड़े की रकम कहलाती है जो आक्रमणकारी आपस में बाट लेते हैं । कभी-कभी वैर नहीं चुक पाता है तो उनमें अंटस बंधी रहती है । चाहे पीढ़ियां बीत जायेंगी मगर गरासिया हत्या का बदला हत्या करके ही दम लेगा ।

लडकी को इस बात की पूरी आजादी है कि यदि वह अपने वर्तमान पति से सतुष्ट नहीं है तो उसे छोड़कर किसी दूसरे के साथ जा सकती है । ऐसी स्थिति में पचायत बैठती है जो दापे के रूप में नव पति से दुगुनी रकम वसूल करती है । यह रकम लडकी के पिता तथा पूर्व पति को आधी-आधी दे दी जाती है । पचायत का निर्णय निष्पक्ष तथा सर्वमान्य होता है । ऐसा कहा जाता है कि सरकार की अदालत मे तो फिर भी कोई कसूरवान गरासिया बिना सजा के छूट जायेगा मगर अपनी अदालत-पचायत मे तो वह हरगिज नही बच पायेगा ।

गरासिया कभी अकेला नहीं रहता । वह जहां भी जायेगा, स्त्री पुरुष दोनो होगे । दोनों साथ-साथ नाचेंगे । कोई त्यौहार हो चाहे मेला ठेला हाट हो चाहे हंग सघ युवक युवतियों और पुरुष महिलाओं का झुण्ड साथ साथ चलेगा गरासिया महिला बड़ी

कलात्मक और गहरे रंगो मे सदैव अपने को बनीठनी बनाये रखती हैं । उसकी पारम्परिक रगधर्मिता और वेश विन्यास में कोई बदलाव फिलहाल नहीं आया है ।

इतना सब कुछ होते हुए भी जब सब तरफ बदलाव आया है तो कहीं न कहीं तो इस जाति में भी कुछ बदलाव आया ही होगा । गरासियों के परिवारों का अध्ययन करते समय खडेलवालजी ने कुछ घर भील गरासिया के बताये । भील आदिम जाति तो है ही पर भील गरासिया नाम मेरे लिए कुछ प्रश्नवाचक बन गया था । पूछने पर उन्होंने कहा कि जैसे आजकल कही-कही जातपॉत के बन्धन टूटते नजर आ रहे है वैसे ही इस जाति मे भी जो गरासिया भील महिला से शादी कर लेता है उसे जाति से बाहर कर दिया जाता है । फिर वह गरासिया नही कहलाकर भील गरासिया कहलाता है । यो भी गरासिया लोग अपने को भीलों से ऊचा मानते हैं । भील गरासिया को भील लोग अपनी जाति में सहर्ष अपना लेते है । इसी तरह यदि कोई भील किसी गरासिया महिला के साथ रहने लग जाता है तो उसे भी भील गरासिया कहा जाता है । कहीं-कहीं इन्हें गमेती गरासिया भी कहते हैं ।

इसमें कोई दो राय नहीं कि राजस्थान की आदिम जातियों में गरासिया जाति ही सर्वाधिक सम्पन्न जाति है । अकाल के भीषण से भीषण दुर्दिनों में भी यह जाति कभी घुटने नहीं टेकेगी । न कभी भीख मांगती हुई नजर आयेगी । गरासिया लोग मेहमानदारी के भी बडे आदरजीवी होते हैं । कूकडे कुत्ते तथा कबूतर एवं अन्य जंगली जानवर पालने के बडे शौकीन होते है । दिल के ये लोग राजा होते हैं । वैसे भी कई पत्नियों के बीच अकेला पति बना गरासिया अपने परिवार का राजा ही होता है । बांसुरी नगाडा अलगोजा इनके प्रिय वाद्य है । सारी-सारी रात नाचने गाने में भी इन्हें कभी थकान महसूस नहीं होती । थके थके से तब लगते हैं जब ये नाचना गाना छोड देते है ।

इनका जीवन अजीब । मस्ती अजीब । मेले ठेले अजीब । घर संसार अजीब । रीतिरस्म अजीब । नाच गाना अजीब । प्रेमाचार अजीब । वैवाहिक संस्कार अजीब । सब कुछ अजीब निराला अनूठा है । हर मेले में गरासिया युवक अजीब ढंग से बना ठना खटकेदार सिणगार किये मिलेगा । अलबेला छेला मिलेगा । युवती गालों पर लाल लाल बिंदियां दिये पोशाक का ही नही, आभूषणों का भी पूरा सिंगार लिये छम छमाती छकित चकित सी अपनी सखी सहेली की बांह में बांह डाले डोलती अपने को तोलती नखरा लिये दिखेगी । या फिर कमर में एक दूसरे के हाथों में हाथ लिये गाते नाचते गरासिये दिन की चिलबिलाती धूप हो चाहे रात की छिटकी चांदनी बिना थके हारे गीतों के सहारे पावो की थिरकन दिये निरत मग्न रहेंगे

बूढी उम्र मे कष्ट पाना इन्हें बर्दाश्त नही है। ऐसे बूढे जो बडे कष्टों में जीते हैं, मौत को आमन्त्रण देते है पर मोत बुलाने पर कब आती है। ऐसी स्थिति में परिवार वाले मौत को बुलाने की मनौती लेते है। यह मनौती पहाड़ सनान कराने के रूप मे होती है। पहाड सनान का अर्थ पहाड जलाने से है। मनौती पूरी करने के रूप में तब पहाड में आग लगा दी जाती है। हमने अबाजी से लौटते समय ऐसे पहाड को अग्नि मे पवित्र होते देखा। रात मे यह दृश्य एक अजीब तरह का चित्र-विस्मय दे रहा था।

गरासियों की तुलना किसी आदिम जाति से नहीं की जा कसती। ये अपने आप में बड़े निराले अनूठे और जंगल मंगल के मौजी सायबे हैं।



20

नौ लाख देवियों का वृक्ष-झूला

राजस्थान की लोकनाट्य परम्परा मे मेवाड़ के गवरी और उसके साहित्य पर शोध प्रबंध लिखने के सिलसिले में मैं जब भीलों में प्रचलित सुप्रसिद्ध गवरी (राई) में वर्णित भारत-गीति-गाथा-कथा को पढ़ रहा था तब उसमें वर्णित देवी अंबाव का सातवें पिंयाल (पाताल) जाकर बडल्या (वट वृक्ष) लाना, देवल ऊनवा में उसकी स्थापना करना, मान्या जोगी का अपने चेलों सहित उसे देखने आना, देवी द्वारा चेलों को बड़ के भेंट चढाना, धार नगरी के राजा का बड कटवाने के लिए फौज भेजना, देवियों का कंजरी रूप धारण कर श्राप देना, नोरता (नवरात्रा) की स्थापना करना, मानसरोवर का पानी गंदलाना, हठिया दानव का वहा फौज लेकर आना, देवी पर रीझना और अन्त में अपना शीश कटवाना, इस पर आनंदोल्लास में देवियों का नृत्योत्सव मनाना जैसे मुख्य प्रमुख घटना प्रसंगो ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया फलस्वरूप गणेश चतुर्थी 1967 को मैं देवल ऊनवा नामक स्थान के अध्ययन के लिए चल पडा ।

लोकजीवन में बडल्या हीदवा सम्बन्धी गवरी में वर्णित भारत नामक गाथा गीत के विविध रूप सुनने को मिलते हैं । भारत के अनुसार इसकी कथा इस प्रकार है-

एक समय देवी अम्बाव को स्वप्न आया जिसमें उसे विशाल वटवृक्ष तथा नवरात्रि पूजन का दृश्य दिखाई दिया । मृत्युलोक मे पहले उसने ये दृश्य कभी नहीं देखे थे । इसलिए उन्हें देखने की उत्कण्ठा जागी । वटवृक्ष तो राजा वासुकि की बाड़ी में था । अतः किसी ऐसी देवी की खोज प्रारम्भ हुई जो पाताल में जाकर वासुकि की वाड़ी से वटवृक्ष ला सके । संयोग से रामू तथा केवल ये दो देवियां इसके लिए तैयार हो गई । उन्होंने प्रण किया कि - 'जब तक वटवृक्ष नहीं लायेंगी, देवलऊनवा नहीं जायेंगी । हिमालय जाकर हाड गालेंगीं, नहीं तो काशी में करवत लेंगी ।' दोनों देविया बहुत भटकीं मगर उन्हें सफलता नहीं मिली । फलस्वरूप वे मरने निकलीं । देवी अम्बाव ने उन्हें ऐसा करने से रोका ।

उसकी वाडी में प्रतिदिन एक भँवरा आता था। यह बडा जबर्दस्त था। बारह मन का उसका भार था तथा तेरह कोस तक उसकी गुजार सुनाई देती थी। एक दिन देवी अम्बाब ने भँवरी का रूप धारण किया और बाडी मे जाकर बैठ गई। नित्य की तरह भँवरा नहा आया। देवी ने फदा डाल उसे आने जाने का भेद बताने को कहा पर उसने भेद नहीं दिया। इस पर देवी ने ताबे की कूँडी में तैल उकाला और भँवरे को उसमें डाल दिया। भँवरा बड़ा छटपटाया। अन्त में उसने वासुकि की वाडी जाने का भेद दिया और मार्ग बताया।

देवी ने वहा से प्रस्थान किया और देवलऊनवा पहुँची। सब देवियों को एकत्र किया और पाताल में वासुकि की बाडी मे जाने का निश्चय किया। जाते समय देवी कूँडी में दूध भर गई ओर कह गई इसका दूध कभी सूखेगा नहीं। यदि सूख जाय तो समझ लेना मेरी मृत्यु हो गई है।'

देवी ने अपने मैल से नेवला पैदा किया और उसे लेकर वासुकि की वाडी में पहुँची। वासुकि सोया हुआ था। वह उसे जगाने लगी। इस पर वहां पहरा देती हुई नागिन ने उसे रोका और कहा - 'ये बारह बरस की गहरी नींद में सोये हुए हैं। यदि जग गये तो तुम्हारा अनिष्ठ कर बैठेगे। तुम्हें बडल्या चाहिये तो तुम चुपचाप ले जा सकती हो।' देवी ने जवाब दिया - 'ऐसा करने पर तो मैं चोर कहलाऊंगी।'

बार-बार कहने पर भी जब नागिन ने नाग को नहीं जगाया तो उसे क्रोध आ गया और क्रोध ही क्रोध में नाग को उसका अँगूठा पकड जगा दिया। जगते ही, ज्योंही नाग की दृष्टि देवी पर पडी कि वह वहीं भस्म हो गई। उसके भस्म होते ही सुनहली ज्वाला तथा रूपहला धुंआ निकला और राख की ढेरी केसर वर्ण की हो गई। उधर देवलऊनवा मे ओखली का वह दूध सूख गया जिसे देवी भर कर आई थी। इससे देवियों में खलबली मच गई।

संयोग से शिव-पार्वती भ्रमण करते हुए नाग की बाड़ी में आ निकले। पार्वती की दृष्टि देवी की ढेरी पर पड़ी। वह इतनी मोहक तथा लुभावनी थी कि पार्वती उस पर मुग्ध हो गई। उसने शिवजी से इसका रहस्य जानना चाहा पर उन्होंने उसकी बात टाल दी। इस पर पार्वती अलोप हो गई और मक्खी बनकर शिवजी की जटा में जा बैठी। शिवजी के बहुत ढूंढने पर भी वह नहीं मिली। तब वे नारद के पास गये। नारद ने युक्ति बताई। उसके अनुसार शिवजी ने पार्वती को आवाज दी - 'पार्वती, तुम जहा भी हो आजाओ, तुम्हारे आने पर जो तुम कहोगी, वही करूंगा।' यह सुन पार्वती दौडी-दौडी आई शिवजी ने ढेरी पर अमृत छिड़का और देवी को पुनर्जीवित कर पार्वती की इच्छा

पूरी की । देवी उठ खड़ी हुई । शिवजी ने उसे वर मागने के लिए कहा । देवी ने कहा - 'यदि देना ही है तो यही वर दो कि मै वासुकि की मारी नही मरूं ।' शिवजी ने वरदान देते हुए कहा - 'मृत्युलोक में लाली नाम की लुहाग्नि रहती है । तुम उससे कटारी और जहरी फूल लेकर फिर यहा आना । फण काटते समय ज्योंही नाग तुम्हारे फण मारे । तुम फूल पर उसका एक-एक फण झेलती हुई कटार से उसे काटती जाना और अन्त में जब वह विष रहित हो जाय तब नाग को मार कर यहा से वट वृक्ष ले जाना' ।

शिवजी के कथनानुसार देवी लुहारिन के पास गई । वहां से कटारी तथा जहरी फूल लेकर पुन: नाग के पास आई और सोये हुए नाग को जगाया । नाग ने जोर की फूंकार मारी । देवी ने फूल पर फूंकार झेली और कटारी से उसका फण काटडाला । इस तरह उसने नाग के सारे फण काट डाले । जब एक फण शेष रह गया तो नागिन ने देवी के पाव पकडे और कहा - 'कांचली के रूप में एक फण तो मेरे लिए छोडती जा ।' देवी ने शेष बचा वह फण उसके लिए छोड दिया ।

यहा से देवी बड के पास गई और उसे अपने साथ चलने को कहा । बड़ ने यह कह कर कि वहा उसका निर्वाह नहीं हो सकेगा । देवी के साथ चलने को मना कर दिया । देवी ने उसे बहुतेरा समझाया और कहा - 'वहां मैं तुम्हे अनेक यत्नों से रखूंगी । नित्य दूध दही पिलाऊंगी और इठ्योत्तर मानवी भेंट चढाऊंगी ।' इस पर बड़ राजी हो गया । देवी ने देवलऊनवा लाकर एक काली चट्टान पर उसे स्थापित कर दिया ।

कई दिनों तक देवी बड को दूध दही से सींचती रही पर मानवी भेंट चढ़ाने का अवसर उसके हाथ नहीं आया । एक दिन उसे पता लगा कि यहीं कहीं पहाड़ों में भान्या नामक जोगी तपस्या कर रहा है उसके साथ उसके इठ्योत्तर चेले भी हैं । देवी ने यह अच्छा अवसर पाया । वह जोगी के पास गई और बड की सारी घटना कह सुनाई । जोगी ने प्रसन्न हो बड देखने की इच्छा व्यक्त की । देवी उसे निमंत्रण देकर चली आई ।

समय पाकर जोगी ने अपने चेलों सहित बड के लिए प्रस्थान किया । देवी ने उसकी अच्छी आवभगत की । एक दिन जोगी अपने चेलों को वहीं छोड कर धारनगर के राजा जेल से मिलने चला गया । पीछे से अवसर पाकर देवी ने सभी चेलों को बड भेंट चढा दिये । जोगी लौटा । अपने चेलो को मौत के घाट पाकर वह बडा दुखी हुआ । वहां से वह पुन: धारनगर गया और राजा से कहा - 'देवलऊनवा का जो बड है, वह मानव भक्षी है । उसने मेरे सभी चेलों का भख ले लिया है, अत: उसे कटवाकर उसकी जड़ों मे तैल डलवाया जाय नहीं तो मैं शाप दूगा जिससे तुम्हारा राज्य नष्ट हो जायेगा ।'

राजा ने जोगी की बात मानली और अपनी सेना को बड काटने का आदेश

दिया । [illegible] सभी मक्खियां बन बड़ के पत्ते पत्ते पर बैठ गई । [illegible] किया, सभी मक्खिया वहा से उडी । [illegible] आई । मार्ग में धारुया भील मिला । [illegible] । उसने अपनी स्त्री जाउड़ी के कचुली, सवामन धान, थोडी सी अफीम, [illegible] की शर्त मंजूर कर मक्खियां उडाने का ठेका लिया । [illegible] को देवी अम्बाव की आण दिला कर उसके अनुसार पूजा किया [illegible] हो गई ।

[illegible] के लिए देवी अम्बाव तथा चामुण्डा ने कजरियों का रूप धारण कर, धारानगर की ओर प्रस्थान किया । अपने साथ देविया सैकडों की तादाद में गायें, [illegible] भी ले गई । गायें पाडों ने फसलों पर हाथ साफ किया तथा सूअरों ने [illegible] मचा दी । राजा ने तंग आकर कंजरियों को राज्य से बाहर निकाल देने का हुक्म दिया पर कंजरियां नहीं मानीं । उन्होंने कहा - 'हम वरत बांधेगी और अपना [illegible] नहीं छोड़ेंगी ।' राजा की आज्ञा से उन्होंने वरत बाधी और खेल दिखाया । उनके खेल से प्रसन्न हो राजा ने कंजरियों को इनाम इकराम मांगने को कहा । उन्होंने और कुछ न मांग कर केवल धारुया भील तथा जाउड़ी भीलनी मागी । राजा ने वही किया । देवियों ने [illegible] । धारुया को नवरात्रा व्रत तथा पूजन का आदेश दिया । वह थाल बजाता, जाउड़ी गाती । वह पूजा करता, वह गीत गाती ।

दशहरे के दिन सभी देविया पाती विसर्जित करने चलीं । इसमें देवों ने भी भाग लिया परन्तु गणपत को आधी का मुँह होने के कारण वहीं छोड़ दिया गया । उन्हें जब यह ज्ञात हुआ तो वे बड़े क्रोधित हुए और मंत्र द्वारा उड़द फेंकने लगे । इससे देवों के रथ उलट गये और उनके पहिये पाताल में जा धंसे । देवों को इसका पता नहीं लगा । वे दौड़े-दौड़े धारुया के पास गये जिसने मुरली देखकर गणपत की करामात का फल बताया । देवी अम्बाव ने गणपत को मनाने का बीड़ा उठाया । वह उनके पास गई । उन्होंने प्रत्येक मांगलिक कार्य के पूर्व अपनी पूजा चाही । देवी ने यह बात सहर्ष स्वीकार की । फलतः रथ पूर्ववत् चलने लगे ।

मानसरोवर की पाल पर सभी ने अपने डेरे डाले । कालका का काला, चावण्डा का लाल, अम्बाव का भगवा, रामापीर का सफेद, इस प्रकार नौ लाख देवों के अलग-अलग तम्बू तने । देवियों ने पाती विसर्जित की । इससे सरोवर का पानी गंदा हो गया । पानी गंदा पाकर पणिहारियाँ रीती लौटीं । रावले बैल प्यासे रहे । यह खबर जब हठिया को लगी तो उसने अपने सेणे को बुलाया और कहा - मानसरोवर जाकर पता लगाओ,

कौनसी धरती की राडे है जो उधम मचा रही है ? उन्हें यहाँ पकड लाओ । यहाँ लाकर उनसे वायदा डलवाओ, पीसणा पीसवाओ और वालक्ये रखवाओ ।' संणा सरोवर पर गया । देवियों ने उसे कोडों से बुरी तरह पीटा । जब वह लौट कर नहीं आया तो हठिये ने हसण्या नामक दानव को भेजा । देवियों ने उसे भी तीर द्वारा मार गिराया । यह खबर पा हठिये को बडा गुस्सा आया । वह नीले घोडे पर सवार हो सरोवर पर आया । देवियां उसे देख भागने लगी । भागती हुई देवी अम्बाव का चीर उसके हाथ आ गया । देवी के सामने उसने शादी का प्रस्ताव रखा । इसे स्वीकार करते हुए देवी ने भाड़िया नम (आसाढ सुदी नवमी) के लग्न तय किये ।

यथा समय हठिया बारात लेकर आया । सीम पर हीरां दासी अगवानी करने गई और नेग के रूप में पाच मुड लेने को कहा । हठिये ने मुड की बजाय पांच मोहरें देनी चाहीं पर हीरा ने नहीं मानी । वहां से बारात पनघट पर आई जहां हीरा ने पचास मुंड प्राप्त किये । पनघट से चलकर बारात तोरण पर आई । हीरा ने कहा-तोरण का नेग सौ मुंडों का है, सौ मोहरो से काम नहीं चलेगा । सास ने आरती उतारी । हठिया चंवरी मे आया । अम्बाव ने कहा - 'यदि चंवरी में तू जीत गया तो मुझे शादी कर ले जाना और यदि कहीं हार गया तो यहीं तेरा सिर काट लिया जायगा ।' हठिया यह बात मान गया पर देवी को परास्त करने में वह असमर्थ रहा । इससे विवश हो उसे अपना सिर कटाना पडा । देवियों ने इस उल्लास में नृत्य का उत्सव मनाया । नृत्य का यह उल्लास गवरी के प्रत्येक खेल में देखने को मिलता है ।

एक अन्य कथा के रूप

लोकजीवन में प्रचलित जिस घटना कथा का ऊपर उल्लेख किया गया है । उसी तरह की, इस संबध की, एक कथा और सुनने को मिलती है जो इस प्रकार कही जाती है-

प्रलय होने पर सारी सृष्टि का विध्वंस हो गया, केवल एक सुमेरु पर्वत बच रहा । अत: देवी अम्बाव सभी देवियों को लेकर पर्वत पर चली गई । वह छ: छ: महीने की नींद लेती । उसके आँख बन्द करते ही सातवें पाताल से बड आता जो छाया कर उसकी रक्षा करता और देवी के पलक खोलते ही वह वहां से अदृश्य हो जाता । अदृश्य होते हुए एक बार देवी ने उसे देख लिया और कोंपले पकडते हुए कहा - 'यहीं पृथ्वी पर क्यों नहीं बस जाते हो ताकि सातवें पाताल से इतनी दूर बार-बार आने का चक्कर तो मिटे ?' इस पर बड ने कहा - 'यदि तुम मुझे यहां लाना चाहती हो तो पाताल आकर ला सकती हो ।' देवी पाताल गई और बड़ के साथ साथ नीम केल, मरवा मोगरा केतकी बेर आदि भी

[illegible] दिया । डेवियां प्रतिदिन उसे सींचती और कुरेद कुरेद कर [illegible] नहीं ।

कई दिन [illegible] नहीं फूटी तो अम्बाव बडी चिंतित हुई । एक दिन [illegible] कुरेद-कुरेद कर देखने पर ही ऐसा हुआ है । [illegible] और उसे पानी की बजाय प्रतिदिन दूध-दही से सींचने [illegible] फलत: आठवें ही दिन कोंपलें फूट आई । [illegible] बारह बीघे में फैल जायेगा तो मैं उसके [illegible] हुआ । बारह बीघे में बड फैला; फला-फूला तब [illegible] की चिंता लगी । बड के पास ही बेर की झाडी थी । देवी ने उस पर [illegible] कि मैं वापिस लौटूं तब तक तुम बेरों से [illegible] जब लौट कर आई तो उसने झाड़ी को पूरी [illegible] से अपना टोकरा भर लिया । उसे लेकर वह गाव में गई । [illegible] मुट्ठी बेर देती और अपने टोकरे में छिपा लेती । [illegible] लिए उसने इक्योतर बालक एकत्र कर लिये । [illegible] में घाटे पर मामादेव से उसकी भेंट हुई । [illegible] । देवी के रहस्य का उसे पहले ही पता चल गया था [illegible] घाटे को पार करा देने को कहा । देवी ने पहले तो आनाकानी की पर अंत में उसे वैसा करने को वाध्य होना पड़ा । मामादेव ने टोकरा अपने सिर पर लिया और देवी के साथ-साथ घाटा चढ़ना प्रारम्भ कर दिया । रास्ते में चतुराई से वह एक-एक बालक छोड़ता जाता और उसकी बजाय एक-एक पत्थर टोकरे में रखता जाता । इस प्रकार उसने सारे ही बालक रास्ते में छोड़ दिये और उतने ही पत्थरों से उस टोकरे को भर दिया । देवी को इस रहस्य का किंचित भी पता न चला । घाटा पार कर लेने पर मामादेव ने देवी को वह टोकरा संभला दिया और अपनी राह ली ।

देवी बडल्ये पहुँची । वहां बालक भेंट चढ़ाने के लिए ज्योंही उसने अपना टोकरा देखा तो बजाय बालकों के उसमें पत्थर ही पत्थर देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और थोड़ी निराशा भी । वह आगे किसी ऐसे अवसर की टोह में रहने लगी । उन्हीं दिनों वहां बड़ा अकाल पड़ा । पास ही पहाड़ी पर भान्या नाम का एक जोगी रहता था जिसके इक्योतर चेले थे । अकाल के मारे वह अपने चेलों को लेकर वहां से चल दिया । लौटते समय चेलों ने जोगी से कहा- 'गुरुजी ! काफी देशाटन हो गया है; आसपास का कोई स्थान ऐसा नहीं बचा जो नहीं देखा गया हो पर एक बडल्या डोंगर अवश्य देखना रह गया

है, यदि आज्ञा हो तो उसे भी देख लिया जाय ।' जोगी ने कहा-'तुम लोग जाओ और बडल्या देख आओ । जब भी मै आवाज लगाऊं; फौरन चले आना ।' चेलों ने प्रस्थान किया । वहा पहुँचने पर देवी ने उन्हें बड के भेंट चढा कर सिर का चबूतरा तथा धड़ की तलाई बना दी ।

बहुत समय व्यतीत हो जाने पर जब चेले नहीं पहुँचे तो जोगी ने उनको आवाज दी, मगर जब चेले वहा नही पहुँच पाये तो उसे अनिष्ट होने की आशंका हो आई । वह उन्हे ढूढने निकला । बड के वहा आकर उसने जो लहू-लुहान देखा उससे वह सारी घटना भाप गया । यह बड राजा जेल की सीमा में पड़ता था अतः वह राजा के पास पहुँचा और मानव-भक्षी बड को जडमूल से कटवाने के लिए कहा । राजा अपनी सेना सहित वहां पहुंचा । रामू केवल को इस बात का पता चल गया । वे दौड़ी-दौड़ी भँवर मूतने हूवारकाटूये गई और भॅवरा दानव को भँवरों के लिए कहा । उसने मना कर दिया, तब देवियो ने कहा कि तुम्हारे जितने भँवर मृत्यु को प्राप्त होंगे उतने ही सोने के बनाकर दे दिये जायेंगे । इस पर वह राजी हो गया । देवियों ने भँवरों को लाकर बड़ के पत्ते-पत्ते पर बैठा दिये । सेना जब बड के पास आई तो भँवर उडे; इससे वह भाग खडी हुई । मार्ग में गारिया मिला जो थोडे से अमल के डोड़े तथा सेर भर अनाज से भँवर उडाने के लिए तैयार हो गया । वह बड के पास आया और भँवर उडाने के लिए गूंज दी । इससे बड़ रोया । रोने पर उसके आसू देवियो के वस्त्र पर पडे । वस्त्र भीग गये । देवियां वहां से भागने लगीं कि सेना ने उनको पकड लिया और घुडसाल के नीचे उतार दिया । देवी अम्बाव के पास इस बात की खबर देने का उनके पास कोई साधन नहीं रहा । अन्त में उन्होंने पवन देव से कहा कि वह किसी भी तरह बड़ का पत्ता उनके पास पहुँचा दे ताकि देवी को वे अपना सदेश उस पर लिख दें । पवन ने यही किया । अस्तबल के छोटे से छिद्र के रास्ते से मुड़ता-मुडता बड का पत्ता देवियों के पास पहुँचा । उन्होंने अम्बाव को सदेश लिखा-'म्हां दोई राजा जेलरे घोडा रे ठाण नीचे रूकाणी थकी हां; झट आई ने म्हाणे तारो ।' (हम दोनों राजा जेल के अस्तबल के नीचे रोकी हुई हैं । शीघ्र आकर हमारा उद्धार करो ।) पवन ने सदेश पहुंचाया । पत्ता उडता-उड़ता देवलऊनवा के माणक चोक में पहुचाँ । देवी ने सदेश पढा और राजा से बदला लेने के लिए नट का भेष बनाकर धारनगर को चल पडी । वहा गाव के बाहर अपना डेरा डाला और उपद्रव मचाना प्रारम्भ कर दिया । राजा ने उसे बुलवाया और बिना खेल दिखाये ही इनाम-इकराम लेकर चले जाने को कहा । इतने में देवी ने राजा के झरोखे तक वरत बांधकर खेल दिखाना प्रारम्भ कर दिया । खेल ही खेल मे उछलती हुई वह गवाक्ष में जा पहुँची जहां उसने राजा का वध कर गूंगा होने का शाप

[illegible] सामूहिक [illegible] का आयोजन [illegible] के रूप में प्रदर्शित की जाती है।

[illegible] ने गवरी को साधारण नृत्य की [illegible] के आधार पर प्रतिष्ठित किया। तदनुसार कालका, [illegible], [illegible], हठिया, कालू, कीर, [illegible] जैसे [illegible] के रूप में देवियों की सम्पूर्ण कथा-[illegible] हुई। इसमें [illegible] अब गवरी ने इस कथा के रूप मे विशुद्ध [illegible] किया। इस प्रकार जब सम्पूर्ण समाज, गाँव और लोक [illegible] यह स्वाभाविक था कि इसमें लोकजीवन भी अपने विभिन्न [illegible]। [illegible] मीणा, बाणिया, गरडा, खेतु, भोपा, गोमा, [illegible], कानजी, पाईता जैसे खेल गवरी मे समाविष्ट हुए।

[illegible] (लोक देवियों) का क्रीडा स्थल माना जाता है। [illegible] आदि का जो उल्लेख आया है [illegible] के पास ऊनवास नामक [illegible] का पुराना मन्दिर है। इसे देवलमालिया भी कहते है। [illegible] स्थान [illegible] ऊनवा के नाम से भी प्रसिद्ध है।

[illegible] बाई ओर काले पत्थर का कुटिल लिपि का एक शिलालेख [illegible] संवत् 1016 का है। ऊनवास के पास ही बड (बड़ला) का [illegible] से लाई थी। यही बड़ बड़ल्या हींदना के नाम से [illegible] है।

[illegible] में फैला हुआ था। थाली जितने [illegible] थीं। इसकी कई शाखा-प्रशाखाएँ थीं। [illegible] (झूलनी) थीं। किसी समय इस बड़ के [illegible] था।

[illegible] किलोमीटर दूर है। यहा, जहा अब गुलाब की [illegible] था। गुलाब की झाडियां वाला यह आज भी [illegible] राज नगर (वर्तमान राजसमंद) का प्राचीन [illegible] ऊनवास से 30 किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में है। इसी के पास [illegible] राजसमंद आज तो स्वतंत्र जिले के रूप में जाना जाता है

खमनौर के पास ही मोलेला नामक गांव है जहां के कुम्हारों द्वारा निर्मित माटी की मूर्तिया (लोक प्रतिमाएं) राजस्थान, मालवा, गुजरात तक के देव-देवरों में प्रतिष्ठित की जाती है । देश के ही नही, विश्व के कई संग्रहालयों मे यहां की बनी मूर्तियां शोभा बढ़ा रही हैं ।

हल्दीघाटी, देवल ऊनवा, मोलेला का यह पूरा क्षेत्र ही भक्ति और शक्ति का कमाल रहा है । जहां भक्ति है वहा शक्ति का निवास रहता है और शक्ति बिन भक्ति के चल नहीं सकती । इस दृष्टि से इस पूरे परिक्षेत्र का सम्यक अध्ययन और अन्वेषण आवश्यक है ।



21

इतिहास प्रसिद्ध जोधाबाई की पुत्री थी मीरां

मीरांबाई जितनी लोकचर्चित है उतना ही उसका जीवनवृत्त अनबुझ पहेली बना हुआ है । वह राजकुल की जितनी मर्यादा में रही उतनी ही लोककुल की गगा बन भक्ति रस में लवलीन रही । यही कारण है कि बहुत कुछ कहने के बावजूद भी उसके सबंध में बहुत कुछ कहना और शेष रह गया है । यह एक ऐसी अद्‌भुत नारी है जिसके सबंध मे इतना अधिक लिखा जाता रहने पर भी कोई लेखन पूर्णता को प्राप्त नहीं होगा और मीरा नित नई होकर उभरती रहेगी ।

मीरां का जन्म राजस्थान के नागौर जिले के कुडकी गाव में विक्रमी संवत् 1572 की श्रावण शुक्ला पंचमी, सोमवार को हुआ । इसके पिता मेडता राव दूदा के पुत्र रतनसिंह तथा माता जयपुर राजा मानसिंह की बहिन जोधाबाई थी ।

इतिहासकारों ने जोधाबाई का विवाह मुगल सम्राट अकबर से होना लिखा है जो सही नहीं है । असल में यह विवाह पानबाई से करा दिया गया था । पानबाई राजा मानसिंह के दीवान वीरमल की पुत्री थी जो जोधाबाई की ही हम उम्र थी । वीरमल का पिता खाजूखा था जो अकबर का सेनापति था जिसे अकबर ने किसी गलती के कारण फासी का हुक्म दे दिया था मगर मौका पाकर खाजूखां वहा से भाग निकला और जयपुर आकर जैनी शाह बन गया ।

मानसिंह चूंकि अपना खून अकबर को नहीं देना चाहता था अत: वीरमल से गुप्त मत्रणा कर ली गई । फलस्वरूप जोधाबाई और पानबाई दोनों के हल्की पीठी चढी । सब जगह दिखने को जोधाबाई ही दिखाई दी । मंडप तक भी जोधाबाई ले जाई गई परन्तु चवरी में पानबाई हाजिर कर दी । विदाई की बेला में जोधाबाई को सगे सबधियों से मिलाई गई पर डोली में पानबाई बिठा दी गई इस समय अकबर 56 बरस का था

जबकि पानबाई मात्र सोलह वर्ष की थी । जोधाबाई की भी यही उम्र थी । यह विवाह हिन्दू रीति से काजी मुल्ले द्वारा कुरान साथ रखकर करवाया गया । पूरे सात दिन आगत रही । दहेज में अनाप-शनाप धन-दौलत हीरे-जवाहरात दिये गये । सौ दास और सत्तावन दासियां दी गई । यह दिन वि. स 1564 फाल्गुन शुक्ला अष्टमी, मंगलवार का था ।

अकबर की नीति मानसिंह को अपना सेनापति बनाकर राजपूतों का सारा भेद लेने की थी इसीलिए जोधाबाई से ब्याह रचाया पर मानसिह भी कम खिलाड़ी नहीं था ।

जोधाबाई को इधर मेडता के राव दूदा के सुपुर्द कर दी । उसके साथ मानसिंह ने अपने सामत हिम्मतसिह और उसकी पत्नी मूलीबाई को धर्म के मां-बाप बनाकर भेज दिया । दूदा ने जोधाबाई का नाम जुगतकुंवर कर दिया और कुडकी भेज दिया जहां अपने पुत्र रतनसिह से उसका विवाह रचा दिया । रतनसिंह इससे पूर्व चार विवाह कर चुका था पर सतान किसी से नहीं हुई थी । विवाह के एक वर्ष बाद जुगतकुंवर ने एक बालिका को जन्म दिया । इसी बालिका का नाम मीरांबाई रखा गया ।

मीरां सबकी लाडली थी । दूदा महल में उसका लालन-पालन हुआ । दूदा ने उसे गज घोड़े की सवारी करना सिखाया । तीर-तलवार, बदूक, भाला चलाना सिखाया । सिह, सुअर जैसे जानवरों से लडाया । गोकुल, मथुरा देशनोक व बीकानेर की तीर्थयात्रा भी कराई । करणी जी के दर्शनार्थ तो दूदा प्रतिमाह के तीसरे रविवार जाया करते थे तब मीरा भी उनके साथ होती थी । इन महलों में मीरा बारह वर्ष रही । पं. पद्मनाथ नामक एक वृद्ध पुरोहित उसे पढ़ाने आते जिनसे उसने सात घर (कक्षा) तक की शिक्षा ली ।

मीरां को कई बार शेरनी का व खरगोश का दूध पिलाया गया ताकि इन जैसी ताकत और स्फूर्ति उसमें बनी रहे । साधु संतों का आना-जाना भी वहां होता रहता था । अयोध्या के संत गुणवंतदास अपनी साधु मडली के साथ वहां दो बार आये जिन्हें दूदा ने बडा मान दिया । गुणवतदासजी को तो अपने महल की पोल में बैठणी पर ही मुकाम दिया । ये रामपथी थे । मीरां जब प्रात. चारभुजा के दर्शन कर लौटती तो इनके पास आ जाती । सत तब अपने शालिग्राम को नहलाते धोते गोपीचंदन आदि लगाते मंत्रोच्चार से अभिषिक्त कर रहे होते । मीरा यह सब चुपचाप बड़े ध्यान से देखती रहती ।

एक दिन वह इन सतजी से यह शालिग्राम ही मांग बैठी और जिद् पर चढ गई, लेने को अड़ गई । बूढे गुणवतदासजी के पास और कोई चारा नहीं था । वह शालिग्राम उन्हे मीरां को देना ही पड़ा । इस समय मीरा की उम्र पाच वर्ष की थी । इस शालिग्राम को पाकर मीरां निहाल हो गई । उसके बाद तो मीरा ने इसे किसी को छूने तक नहीं दिया और आजीवन अपने पास छिपाये रखा

यह शालिग्राम गुणवंतदास जी से कोई ग्यारह सौ वर्ष पूर्व संत मीठणदास को नेपाल की गंडकी गंगा से प्राप्त हुआ था। कहते हैं, मीठणदास जब घूमते हुए नारायणपुर गाम पहुंचे तो अपना शालिग्राम कहीं खो बैठे फलस्वरूप उन्होंने अन्न-जल का त्याग कर दिया और गंगा से जिद कर शालिग्राम माग बैठे। अंत में गंगा उन पर प्रसन्न हुई और शालिग्राम दिया।

मीठणदास के बाद यह शालिग्राम संत-दर-संत चलता रहा। गुणवंतदास उस परम्परा के दसवें संत थे। अयोध्या में मीठणंदास ने राममदिर की स्थापना की। यह मदिर आज भी बड़ा प्रभावी है। मीठणदास के बाद क्रमशः लक्ष्मणदास, रामशरणदास, गोकुलदास, भगवानदास, हरिदास, गोविन्ददास, सेवारामदास, नारायणदास और गुणवंतदास नामी संत हुए।

अयोध्या में राम मंदिर रामनंदी पथ के स्वामी अखाड़े का प्रसिद्ध मदिर है। अपनी शोधयात्रा में मैं इसके महंत वासुदेवदासजी से मिला। ये संत गुणवंतदास की परम्परा के सतरवें महंत हैं। इन्होंने बताया कि गुणवंतदास के बाद क्रमशः हरिदास, जगन्नाथदास, केशवदास, मनोहरदास, पुरूषोत्तमदास, दयारामदास, गिरधारीदास, माधवदास, पुरूषोत्तमदास, रामशरणदास, देवदास लक्ष्मणदास, जानकीदास, रामदास और भगवानदास हुए। भगवानदास के काल कवलित होने पर यह महंताई इन्हें संभलाई गई।

कहते हैं, यह वही शालिग्राम है जिससे कृष्ण ने जरासंध का वध किया था। जरासंध की मृत्यु के बाद कृष्ण जब नारायणी में हाथ धोने गये तो शालिग्राम भी उसी में डाल दिया।

जिस दिन मीरां का जन्म हुआ उसी दिन रतनसिंह ने मीरां के रहने के लिए चन्द्रतालाब के किनारे मेड़ता में मीरां महल की नींव रखी। ये महल बारह वर्ष में पूरे हुए। बाद में मीरां यहां आ गई। इनमें दस वर्ष रहने के बाद बाईस वर्ष की उम्र में उसका विवाह चित्तौड़ के राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ कर दिया। फिर इन महलो में कोई नहीं रहा। ये महल दो मंजिला हैं।

भोज पक्के शिव भक्त थे। ये विवाह नहीं करना चाहते थे। विवाह मीरां भी नहीं करना चाहती थीं। लगातार युद्ध के दिन होने के कारण भोज की बारात में कुल पाच सरदार, एक बनिया, एक पड़िहार, एक पंडित, एक भाट और बीस डावड़ियां थीं। इनके साथ दो हाथी और शेष घोड़े थे। भोज ने घोडे पर तोरण बांधा और गज पर इनका टीका किया गया

मीरां का विवाह भी जबर्दस्ती कराया गया । इसके लिए चंवरी में जयमल और ईश्वरदास खड़े रहे । मीरा तो शालिग्राम से विवाह कर चुकी थी । बचपन में देखी बारात के लिए जब उसकी मा से उसने सवाल किया कि घोडे पर कौन जा रहा है तो जवाब मिला कि दुल्हा जा रहा है तब मीरां ने फिर प्रश्न किया - मेरा दुल्हा कौन है ? मा ने कह दिया - तेरा शालिग्राम ही तो तेरा दुल्हा है ।

भोज ने जगह-जगह शिवलिग स्थापित किये । ग्यारह तो चित्तौड़ मे ही किये । विवाह पूर्व मेडता मे भी शिवलिग स्थापित किया और कहा कि मेरा विवाह न हो तो अच्छा ।

मीरां को दहेज में भानकंवर और भूरीबाई दो दासियां दी गई । सागा ने इनकी अगवानी कर कुंभामहल में तीन मंजिले महल रहने को दिये । इनके सामने दो मंजिले महल मीरा को दिये ।

भोज की भक्ति निष्काम भक्ति थी । शिवजी ने उन्हें जब निर्भय रहने का स्वप्न दिया तो चित्तौड में इन्होंने निर्भयनाथ का मंदिर बनवाया । इसमें एक ही पत्थर में ब्रह्म, विष्णु, महेश की अलग-अलग प्रतिमाएँ हैं ।

सांगा की मृत्यु के बाद रतनसिंह गद्दी पर बैठा । भोज और रतनसिंह के कभी नहीं बनी । मीरा से भी रतनसिंह नाखुश ही रहा । दोनों को आदर देने की बजाय अपमान और तिरस्कार ही दिया । ऐसी स्थिति में भोज ने गौमुख कुंड के पास अपने लिए अलग से महल बनवाये । यह कार्य इतना शीघ्र कराया गया कि कुल सत्रह दिन में महल बन गये । अठारहवें दिन तो भोज कुंभामहल छोड इनमें रहने लग गये । भोजमहल के पास ही मीरा के रहने के लिए मीरां महल बनवाये गये । पीछे गौमुख कुंड में जाने के लिए सीढ़ियां भी बनवाई । इन महलो में एक मुंवारा भी बनवाया गया जिसमें होकर मीरां भोजमहल पहुचती ।

मीरां महल के सामने निर्भयनाथ मंदिर के पीछे दासियों के निवास और पास में मीरां के लिए पूजा मंदिर बनवाया । इसके पास एक चबूतरा बनवाया जहां साधु सत बैठकर भजन कीर्तन करते । कभी-कभी मीरां भी इनकी सत्संग का लाभ लेती ।

राणा रतनसिंह की यातनाएँ दिन-प्रतिदिन बड़ी क्रूर होती गईं । इसके लिए उसने कुछ दासिया भी मुकर्रर कर रखी थीं । इन दासियो में एक कालीबाई तो साक्षात् काल ही थी । यह रतनसिह के मुँह लगी हुई थी । इसने मीरां को कौडे लगाने में भी कोई कसर नहीं रखी । कई तरह के लाछन भी इसके द्वारा मीरां पर लगाये गये । रतनसिंह की सात रानियों

में सबसे छोटी लालकंवर ने भी आग में घी डालने का ही काम किया। भोज और मीरा दोनों इन यातनाओं को घुट-घुट कर सहते। मीरा ने तो एक बार परेशान हो जहरी प्याला ही ले लिया परन्तु उसका कोई असर नही हुआ। भोज मीरा के पीछे रतनसिंह का पूरा दरबार पडा हुआ था। मीरां को 'रामजणी' और भोज को 'फोतडा' तक कहा जाने लगा।

भोज की उम्र साठ वर्ष की हुई कि उन्होंने निर्भयनाथ की शरण में अपना शरीर छोड दिया। मीरा ने तब अपनी दासियों के सहारे उनका दाह सस्कार किया। मीरा भोजजी से बीस वर्ष छोटी थी।

विधवा होने पर मीरां ने अयोध्या काशी मथुरा वृन्दावन की यात्रा की। यात्रा पूर्ण कर लौटी तो रतनसिह और खफा हुआ और कहने लगा कि भोज के निधन के बाद मीरा का पगफेरा घर बाहर हो गया है और वह मेवाड कुल को कलकित करने पर तुल गई है।

भोज विहीन मीरां की स्थिति और विकल हो गई। उन्हीं दिनों मीरां को पता चला कि निर्भयनाथ की खाडी में कोई पहुंचा हुआ साधु डेरा डाले हैं। मीरा ने पहले तो अपनी दासियों से पता करवाया और बाद में फिर स्वय गई। यह संत रैदास था जो जोधपुर के पास के पीपलोदा (पीपाड़) का रहने वाला था। यह बडा अन्तर ज्ञानी और अकेला था। इन्हें 'रोहीडा' कहते थे।

एक दिन मौका पाकर मीरां ने अपना महल छोड दिया और रैदास के साथ हो ली। आगे तो कड़ा पहरा था अत: मीरां पीछे के रास्ते से निकल गई। दोनों दासियां भी उसके साथ चलीं।

मेवाड राजघराने की वह रानी जिसे देखने सूरज की किरण तक तरस खाती थी, महल छोड चलती बनी। विक्रम रतन राणा का पराक्रम भी कोई मामूली नहीं था जिनके पास हर समय पच्चीस हजार राजपूतों की फौज तैनात रहती थी, उस घराने की रानी एक साधुडे के साथ चली गई, यह कितनी साहस की बात थी। चित्तौड की सीमा के बाद तो मीरां ने अपना घूंघट भी त्याग दिया। आगे-आगे मीरां, पीछे-पीछे रैदास।

मीरां जिधर से निकलती, गांव के गांव उसे देखने उमड पड़ते। जितने मुँह उतनी बातें सुनने को मिलती। कोई कहता - राजघराने की रानी एक चमारडे के साथ भाग गई। कोई कहता - मीरां ने मेवाड़ वंश को मिट्टी में मिला दिया। कोई कहता उसने पीहर और ससुराल दोनो कुल कलकित कर दिये। मीरां के साथ कभी कोई सतनिया अवधूतनिया भी हो जातीं रैदास के साथ सत हो जाते इनमें कई असतनिया और असत भी होते

मीरा का भ्रमण सदा एक जैसा नहीं रहा, निरूद्देश्य भी नही रहा । योजनाबद्ध भी नही रहा । मन की मौज के अनुसार रहा । सारी यात्राएँ सर्पाकार रही । साधु सतों का सान्निधय एव सत्सग लाभ, देव दर्शन, पवित्र नदियों, समुद्रों, तालाबों मे स्नान, भोजजी का अस्थि विसर्जन, तीर्थाटन, पिडदान आदि का लक्ष्य लिये मीरां चालीस वर्षों तक निरन्तर भ्रमण करती रही ।

इस भ्रमण के दौरान वह जाने-माने कृष्ण मदिरों में तो गई ही, भोज के इष्टदेव शिव मंदिरो को भी उसने नहीं छोडा ।

मीरा का सर्वाधिक भ्रमण गुजरात का रहा । सर्वाधिक मान भी उसे गुजरात ने ही दिया । सोमनाथ, गिरनार, शामलाजी, अंबाजी, डाकोर, द्वारिका, वृन्दावन, हर्षद, वीरपुर, सिद्धपुर जैसे सभी तीर्थो पर वह गई । डाकोर में तो रैदास को अपना गुरू ही बनाया । तब रैदास ने मीरा को अपना इकतारा दिया और मीरां ने अपने गले में पहनी तुलसीमाला गुरू दक्षिणा के रूप में दी । एक बार तो मीरां यहां लगातार अठारह माह रही । सर्वाधिक चौदह बार हर्षद गई । गिरनार के शिवरात्रि मेले में वह प्रतिवर्ष जाती । सिद्धपुर मे भोजजी का पिंडदान किया । मीरां दातार नाम ही मीरां के कारण पड़ा ।

मध्यप्रदेश में मीरां उज्जैन मांड जैसे धर्मस्थलों पर गई । महाराष्ट्र में बंबई पंढरपुर कोल्हापुर नासिक तक के तीर्थस्थलों का पुण्य कमाया । कन्हेरी गुफा मे भी उसने वास किया । कोल्हापुर में तो स्वय शिवाजी ने अपने यहा मीरां की मेहमानदारी की ।

मथुरा काशी अयोध्या गया भी मीरां के मुख्य यात्रा स्थल बने । वह रामेश्वरम् भी गई ।

अपने यात्राकाल मे मीरा ने तुलसी, कबीर, रसखान, रामानंद, जीव गोस्वामी, नरसी आदि जाने-माने सत भक्तों से भेंट की । गगा, यमुना, सरयू, गोमती, अहिल्या आदि पवित्र नदियों में उसने भोजजी की अस्थियों का विसर्जन किया और स्नान ध्यान का लाभ लिया ।

राणा रतनसिंह के बाद जब बालक उदयसिंह राणा बना तो उसने मीरां की सुध लेनी चाही । रतनसिंह को बुलाकर कहा कि मीरां को कष्ट देकर अच्छा नहीं किया । रतनसिंह ने इसे अपना अपमान समझा और कहा कि मै मीरां को यहां वापस बुलवा लेता हू । यह कह रतनसिंह ने दो राजपूत सरदार तथा एक ब्राह्मण पंडित को भेजा कि मीरा जहा भी, जैसी भी स्थिति में हो, लाकर हाजिर करो ।

तीनों पता लगाते ढूंढते अंत में द्वारिका पहुँचे वहां मदिर मे मीरा से भेंट की पर मीरा ने चित्तौड लौटना अस्वीकार कर दिया और कहा कि जिस नदी

को मै पार कर गई उसमें वापस नही जाना चाहती । पंडित बोला कि अभी तो हम आये है फिर रतनसिंह आयेगे । मीरां ने सोचा, जबर्दस्ती से जाने की बजाय तो अपने को यहीं खो देना अच्छा है फलस्वरूप दूसरे दिन बडे सवेरे तीन बजे समुद्र के किनारे वाले समुद्रनारायण मंदिर से कूद गई । समुद्र में कूदते वक्त उसकी साडी का पल्ला वहां पडे पत्थर में अटका रह गया । पडित को जब पता चला तो बडा अफसोस हुआ मगर चिता यह लगी कि अब रतनसिंह को क्या कह विश्वास दिलायेंगे कि मीरा नही रही ।

यह सोच उन्हें रैदास का स्मरण हो आया कि क्यों न उस चमारडे को ही जा पकडे जिसके कारण सारा घराना बदनाम हुआ । वहीं उसकी ढूढ शुरू हुई । समुद्र के किनारे पास ही, उसकी झोंपडी थी । उसमें रैदास मिले । वही उनका सिर उडाया और उसे लेकर चित्तौड पहुंचे । रैदास का धड समुद्र में डाल दिया । यह दिन संवत् 1654 माघ कृष्णा अमावस्या का था ।

मीरा अपने श्याम रंग समुद्र में जा मिली । जीते जी भी वह अपने श्याम रग में ही तो रंगी रही थी समुद्र चाहता तो मीरा को अस्वीकार कर सकता था जैसे रामदेवजी के पिता अजमलजी को किया । भोज और मीरा दोनों का रास्ता सत्य का था इसलिए वे शक्ति और सत्ता से दूर रहे । तीर्थकर भी शूर थे पर वे अपने शूरत्व से परे रहे और सत बने ।

मीरां सर्वप्रकारेण अपने कृष्ण में खोई रही । बेसुध होने पर जब वह अपने श्याम से बात करती तो लोग उसे ही उसकी वाणी समझ पदों मे बांधते रहे । उसने कोई पद नही लिखा । कभी गाया नाचा भी नहीं पर आज उसी के नाम के सैकडो पद कई भाषाओं में बिखरे मिलते हैं । पूरे विश्व इतिहास में मीरा जैसी अद्भुत भक्ति वीरागना नारी नहीं हुई ।



22

रसों में रस - 'प्रेम रस' मेंहदी ने दिया

मेंहदी मे कई कलाएँ छिपी हुई हैं । जैसे मेह में कई कलाओं के रूप है । मेह है तो सब कुछ है । प्रकृति की सारी हरीतिमा है । रूप, रस, रग और लावण्य है । ऐसे ही मेहदी में सब कुछ है । यह अपने में कई कलारंगों को रूपायित करने वाली है । है कोई ऐसा अन्य झाड़ जो लगता है, बंटता है, मडता है, रचना है और रस देता है प्रेम का, सुहाग का, सौभाग्य का, जीवन का । जो हरा है मगर लाल है । लाल है मगर हरा है । दिखता हरा है मगर निखरना लाल है । इसीलिए कई गीत हैं । सब गीतों में मेंहदी की महिमा है । 'मेहदी राचणी रे लाल' । 'प्रेम रस मेंहदी राचणी' । 'भंवर पल्लो छोड़ दो म्हारे हाथा में रचरई मेंहदी ।' 'जग लाली रहे जैसे रंग मेंहदी' ।

मेंहदी मेह ने दी । यह इस धरती का झाड़ नहीं है । सुमेरू पर्वत पर इसका बूंटा जब पहली बार अवतरित हुआ तो चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश हो गया । बादल गरजने लगे । मधरे मधरे मेहुडा बरसने लगा । मेह ने इसे महक दी । बादल और बिजली ने इसे सहलाया । इन्द्र ने अपने सतरंग दिये । यह दूध से सींची गई । मेंहदी सोने की सिलाडी पर बटती है । गगा-जमुना के निरमल नीर में ओलीघोली जाती है । मही-मही मखमल से छनती है । रतन कटोरे में रखी जाती है । इसकी महिमा ही न्यारी है ।

मेंहदी सुरगी है । जब यह आती है तो सुरंगी रितु आती है । इसका रंग अपना रग है । चिरमी इसके सामने चुप है । लाल का सिर शर्म खारहा है । हिंगलू हार खा बैठा है । सिन्दूर लज्जित है । कुंकुम का क्या रग । रंग तो मेंहदी का ही सुरंगा है । यह रंग जिस पर चढ जाता है उसे कोई बदरग नहीं कर सकता । राहगीर से नवोढ़ा मेंहदी उचवाने को कहती है । राहगीर कहता है- 'मेंहदी तो उचवा दूंगा मगर आधा शैय्या सुख लूंगा' । इस पर नवोढ़ा कहती है - 'केसरिया लाल, तुम्हें नहीं मालूम मेरे पर मेंहदी का रग चढ़ा हुआ है । तुझे तो नहीं छोडूगी, तेरे बाप तक को देख लूंगी । तेरी मूंछों पर अंगारे धर दूंगी और तेरे बाप की दाढी जला दूगी

कलात्मक मेंहदी माडते-मांडते अंगुलियो की रेखाएँ घिस गई है । साहित्य के सारे रसिक नौ रसों की गिनती मे ही खोये रहे । प्रेमरस की ओर किसी का ध्यान नही गया जो मेंहदी ने दिया । प्रेम है तो रस है, जीवन है, उमंग है । यह रस नही है तो कुछ नहीं है । जीवन सूना, जग सूना, परिवार समाज और मनुष्य सब सूना सूना है । हथलेवे की मेहदी रचती है तो जीवन साथी का प्रेम देखा जाता है । अच्छी रचने पर अच्छा प्रेम । बोदी रचने पर अपरिपक्व प्रेम, बोदा प्रेम, झूठा और दिखावटी प्रेम । इसीलिए मेहदी बोने से लेकर उसे चूंटने छानने बांटने घोलने तक की सारी क्रियाऐं बडी सावधानी से की जाती हैं ।

प्रेम ऐसे ही नहीं उमडता है । मेंहदी के बंटने-बांटने से, रचने-रचाने से, मांडने-मडाने से प्रेम फूटता है । केवल मेंहदी की पत्तियां बांध लीजिये, कुछ नही होगा । प्रेम बटता है तो रचता है । जैसे मेंहदी बटती है तब रचती है । इसीलिए मेंहदी की महिमा अपरम्पार है । कोई त्यौहार उत्सव अनुष्ठान हो, मेंहदी आवश्यक है । मेंहदी गणगौर पर नारियों के हाथों में ओपती है । विभिन्न बूंटों में घेवर मिष्ठान्न देता है । चक्र विजयश्री देता है । चूनड सुहाग बनाये रखता है । पील्या जच्चा को बच्चा देता है । चोपड मनोरंजन भरता है । बाजोट बत्तीसी भोजन और तैंतीसी तरकारियों से तर रखता है । गलीचा भरेपूरे परिवार को समृद्धि देता है । होली पर माडे जाने वाला बीजणी मांडणा ठंडक देता है । बतासा पान शकुन देता है । दीवाली का शंख दीवा दशों दिशाओं का यशस्वी जीवन देता है । तीज का लहरिया फूला फूला मन, फूल छाबडी, हराभरा परिवार, पतग सुनहरे सपन, कलियां कूंपल चटकता मन और धनक मोठडा मौसमी परिधान देता है ।

दशामाता हो कि करवा चौथ हो, दीयाड़ी नम हो कि तेजा दशम हो, फूली हो कि राखी हो, अहोई आठम हो कि भाई दूज, शीतला सातम हो कि नाग पांचम, लडकी ससुराल जाती हो कि पीहर आती हो; नारियों के हाथों में बिछुडा हथपान मछली कमल सांकल चौक षटकोण भमरा चकरी चटाई तारा कचनार जैसे मन भावन बूटे खिल पडते हैं । सावण में तो मेंहदी की बहार देखते ही बनती है । जब प्रकृति का प्रत्येक उपादान फूट पडता है तो मेंहदी की मरोड़ कैसे चुप बैठी रहेगी । यही तो मेंहदी का मौसम है जब मेंहदी रचाकर रमणियां मेंहदीबाई बन बादाम सी बाग-बाग होती अपने मेंहदा लाल से अपना तन-मन रचाती रगती रूपसी सुवासित होती है । यह सब तो है पर यदि कोई नार अकेली है तो फिर मेंहदी उसके लिए लाग नहीं आग है । यह आग जहां मेंहदी लगा रखी है हथेलियों में, तलवों में; वहां भी है और दिल में तो है ही । कहने वाले ने कहा भी क्या खूब है

मेंहदी ने गजब दोनों तरफ आग लगा दी
तलवों में इधर और इधर दिल में लगी है ।

इस आग ने प्रिया को ही नहीं, प्रिय को भी अकझारा है इसीलिए वह मेंहदी के पत्ते-पत्ते पर अपने हृदय की, प्रेम की बात लिखता रहा, इस आशा में कि कभी न कभी तो वह प्रियतमा के पास पहुचेगा और मेरी बात कहेगा । मेंहदी सचमुच में एक ऐसी रगरेजण है जो कई रंगों में उगती अकुरित होती है और हर रंग नयापन, अनोखापन लिये होता है । इसकी हर लाली की अपनी लीलीतमा जुदा है । प्रेम का ऐसा रग अन्यत्र कहा मिलेगा । इसीलिए भावज आशिष देती है - ''जग लाली रहे जैसे रंग मेंहदी ।''

यह मेंहदी हाग और सुहाग देती है । भाग और सुभाग देती है । राग और सुराग देती है । फाग और सुफाग देती है । भाव और सुभाव देती है । इसका रग धीरे-धीरे चढता है और धीरे-धीरे उतरता है । इस रंग से दोनों रगे जाते हैं । जिसके लगती है वह भी और जो लगता है वह भी बल्कि निरखने वाला भी रंगदार हुए बिना नहीं रहता ।

बहिन ने भाई के हाथो मेंहदी दी और ससुराल भेजा । सालाहेलियों ने अपने बहनोई के हाथों को निरखा और पूछा - ''किसने मांडे हैं इतने कलात्मक माडने ?'' जीजाजी ने बहिन का नाम लिया तो वे बोल उठीं -''ऐसी सुगणी बहिन को चूंदड़ ओढाओ और चूड़ा पहनाओ जिसने इतने प्यारे-प्यारे मांडणें मुलकाये हैं ।''

सुहागिन के मेंहदी रचे हाथों पर पति भी रीझा है । उसने कहा - ''धण मेरी, मेहदी रचे ये हाथ मेरे हिरदे पर रख दे । मैं इन पर हीरे जवाहरात न्यौछावर कर दू ।'' मेंहदी अपने बालम से भी अधिक प्यारी है बहू को । इसीलिए वह कह बैठती है - ''भंवर पल्ला छोड़ दो, म्हारे हाथां में रचरई मेंहदी ।'' यही नहीं, अपने प्रिय को पढना-लिखना छोड अपने मेंहदी रचे हाथ निरखने तक को बाध्य कर देती है - ''पढणो लिखणो छोड़ दो सजी निरखो गोरी रा हाथ ।'' मेंहदी का आनंद उल्लास और हुलास शब्दों में बाधने का नही, हिरदे में सांधने का है । मेंहदी के माहात्म्य के फलस्वरूप अर्जुन एक बड़ा कुंड बनाता है और उसमें मेंहदी घोलता है । तीनों लोकों में यह खबर फैल जाती है । इसके छींटे मात्र से लोगों के भाग्य उदित हो जाते हैं । वासुदेव बलराम भी अपनी पगड़ियो को मेंहदी के छींटों से पवित्र सुभग करते हैं ।

यह मेंहदी बडे जतन से, बडे सलीके से, बडे करीने से लगाई जाती है । सोये-सोये मेहदी नहीं दी जाती न धूप में दी जाती है । दिन का दोपहर तिपहर का वक्त भी इसके लिए वर्जित कहा गया है । मेंहदी पांवों में पगथली के बीच भी नहीं लगाई जाती । यह स्थान भाई के लिए छोडा जाता है ताकि उस पर भार न आ सके । मेंहदी की टीकी लगाना

खोड समझा जाता है । विधवा भी और कुवारी भी मेहदी नही लगाती । बना-बनी के मेहदी गीतों मे बन को मेंहदी सा रचता बताया गया है । बना, मेहदी बना इतना रचीला, रगीला है कि बनी, मेंहदी बनी उसे अपनी मुट्ठी मे, अपनी हथेली में कैद कर रखना चाहती है - ''बना म्हेंदी सरीखा रचणा थानै राखू मुठडी माय ।'' ऐसी प्रेम प्रगाढिनी मेहदी का रसनिजों न कही कोई उल्लेख नहीं किया और न कही प्रेम रस को विवेचित किया जबकि हकीकत में यही रस जन-जन में, लोक जीवन में सर्वाधिक रूप से परिव्याप्त है ।

मेंहदी हाथों में ही नहीं, पावों मे भी दी जाती है । इसकी जो भातें माडी जाती है उन्हे और अधिक सुन्दर आकर्षक तथा कलात्मक बनाने के लिए उनके आस-पास भाति-भाति की भरण भरी जाती है । यह भरण दो-दो खडी लकीरों के रूप में दी जाती है जो ''जावा'' कहलाती है । जावा के अलावा चीरण, डबके तथा डोरे भी उकेरे जाते हैं । डोरों के बीच बारीक-बारीक बेलें भरी जाती हैं । ये बेलें हथेली के पीछे भी खींची जाती हैं । इसे भाईबेल कही जाती है । बेल के अलावा सुआ फूल फूलडी फूलपत्ती पायल कमल फूलमाल पानबेल झिलमिल तारा मोतीडा बाजोट चोपड़ गलीचा फूलकमल जैसे मांडणें भी मांडे जाते है । ऊगली के ऊपरी टोप की मेंहदी नाखून डूबा मेहदी कहलाती है । अगुलियो के पास से लेकर पांव के चारो ओर डोरा मांडा जाता है । इस डोरे से छूटती हुई दो-दो तीन-तीन पखुड़ियों की बेले बनाई जाती हैं । मेहदी के ऐसे भात-बूटे-आभूषणों को भी मात करते पाये जाते हैं ।

आईये, आप भी मेहदी के कलात्मक मांडणें मांडिये और इसका रंग बांटिये । मेहदी का रग और रस सब ओर फैले । सबका जीवन सुरंगा बने । प्रेम रस मेंहदी सबको मुबारक हो ।



23

अंगारों पर नृत्यानन्द

दहकते अंगारो पर महकते फूलों की तरह नाचना यों तो अनहोनी बात लगती है, परन्तु हमारे यहाँ ऐसे कई अजब कलाकरिश्मे प्रचलित हैं जिनके साथ यहाँ का कलाकार असाधारण-विचित्र होता हुआ भी सामान्य साधारण बनकर जीता है । आग पर फाग खेलना और राग अलापना अपने आप में कितना संश्लिष्ट चित्रण है । आइए, इनका पर्यवेक्षण करें ।

दहकती पगडंडी के चहकते पाँव :

उड़ीसा की ओर कटक से तीस मील, महा नदी के तट पर एक मंदिर है, जिसकी देवी है चोचका । यहाँ प्रतिवर्ष वैशाखी को एक बडा भारी भव्य मेला लगता है । दूर-दूर से दर्शनार्थी-मेलार्थी उमड पडते हैं और यहाँ अपनी मनौती पूर्ण करते हैं- आग पर चलकर । वैशाखी को प्रातः ही सभी मनोती बोले देवी के सम्मुख एकत्र हो जाते हैं । यहाँ ऑगन में सभी लोग जितना उन्हें बोला होता है उतना बडा गड्ढा अलग-अलग रूप मे खोदते हैं । यह गड्ढा लगभग एक फुट चौडा तो होता ही है । इसकी लम्बाई मनोती के अनुसार कर ली जाती है । गड्ढा खोदकर उसे कोयलों से पूरा भर दिया जाता है । तदनन्तर उन्हे घास-फूस से प्रज्वलित किया जाता है । 30 से लेकर 120 फुट तक की 50-60 के करीब पगडंडियाँ बन जाती हैं । इनके दोनों सिरों पर एक-एक छोटा गड्ढा बना दिया जाता है, जिसमें देवी का चरणामृत दिया जाता है ।

कोयले तेज हो जाते हैं, इधर दोपहर को सूर्य भी तेज हो जाता है, तब मनौतीवाले नदी में नहाकर पीले कपडे धारण करते हैं और देवी का प्रसाद पाकर अपनी-अपनी पगडंडी पकड़ते है । यहाँ पहले फल-फूल, चदनादि से देवी की पूजा करते हैं । अग्निपूजा के बाद चरणामृतभरे गड्ढे में पॉव डुबोकर अंगारों पर चल पड़ते हैं । दोनों सिरों पर चरणामृत में अपने पाँव डुबोते हुए अगारों पर चलने के बाद देवी के दर्शन कर उसे अपनी मनौती पूरी होने का देते हैं यह देवी का ही समझा जाता है कि इस

दिन जो भी अगारा पकड लेता है, उस पर उसका कोई असर नही हो पाता है । आज की आग इन मनौतीधारियो के लिए सौभाग्य बनकर आती है, तब सब फूले-फूले फिरते नजर आते है ।

आग, भक्त भोक्ताओं की फूल खूंदी :

छोटा नागपुर; रांची, हजारीबाग और सिंहभूमि जिले के आदिवासी तथा पिछडे लोग माता पार्वती की पूजा के पक्के विश्वासी हैं । ज्येष्ठ-आषाढ में इधर का प्रत्येक गॉव-घर पूजा निमग्न रहता है । पुजारी गोसाई और प्रधान भक्त कठभोक्ता । दोनों मिलकर पूजादिन तय करते है और गॉव के बाल-युवा-वृद्ध को अपना सहयोगी भक्त-भोक्ता बनाते हैं ।

ये भोक्ता पूजादिन से एकमास अथवा पखवाडा पूर्व से प्रति संध्या उपवास करते हैं । रात को अर्द्धरात्रि के बाद खीर खाते हैं । पूर्णाहुति के रोज निर्जला एकादशी रखते हैं । इस दिन पाँच बार नहाते हैं । इसके बाद इन भोक्ताओं को दो खूंटों के बल टाँग कर सिर नीचे कर झुलाया जाता है । इस समय धुवन की धूनी दी जाती है और इनके व्रत की परीक्षा के लिए इनकी पूरी जाँच की जाती है ।

तदन्तर भोक्ताओं की गिनती के अनुसार नालियाँ बनाई जाती है, जो लगभग 20-30 फीट लम्बी, 3 फीट के करीब चौडी और एक फीट के करीब गहरी होती हैं । इनमें लकडियों के ढेर कर अंगारे तैयार किए जाते हैं । अंगारे तैयार हो जाने पर एक-एक भोक्ता आकर आग के समक्ष खड़ा रहता है । गोसाई सबको आग-पूजा करवाता है और तब काठभोक्ता के पीछे-पीछे भोक्ता लोग उन धधकते हुए अंगारों पर चल पडते हैं । इनके पीछे-पीछे इनकी बहनें, माताएँ तथा स्त्रियाँ भी आग में प्रवेश कर जाती हैं । कई बार अंगारों पर चलने के बाद भोक्ता लोग कॉटों, झाड़ियों की ढेरियों पर लुढ़कते लोट-पोट होते अंत में महादेव के स्थान पर जाकर जल चढाते हैं ।

शंकर और पार्वती के अटूट विश्वास के आगे आग भी अपना गुण धर्म खो देती है । नहीं तो क्या मजाल कि कोई उसे रौंदता चले और उसे कुछ असर अहसास तक न हो । आग पर चलने का यह पर्व मेला अपने आप में, सचमुच में कितना आदिम, ओजस्वी और यशस्वी लगता है । जीवन का यह सरस सौंदर्य कॉटों में फूल खिलाता हुआ, तब कितना छिटक पड़ता है । कितना जन्म सार्थक होता है तब कितने भव मधुमासे लगते हैं ?

अंगारों के फुहारे छोडते जसनाथी सिद्ध :

कतरियासर, लिखमादेसर, मालासर, साधासर, नारंगदेसर, पूनरासर जैसे कई सारे सर और अन्य गाव जसनाथी सिद्धो के प्रमुख स्थल बने हुए हैं - इनमे बारों नाम से परिचित जसनाथी मदिर । मेले भरते हैं और जुम्मे जागरण के साथ-साथ अग्नि नृत्य का आयोजन । गाने वाले भी ये ही सिद्ध और नाचने वाले भी सिद्ध ये ही । नगारे और मजीरे की जोरदार जगरन मे सबद, बानियों तथा भगत-चरित्रों का विविध राग-रागिनियों मे आलाप । भगवी पगडी और गेरूई वेशभूषा में सिद्ध लोग एक अजीब वातावरण बना देते है और इधर नृत्य की तैयारी होती है ।

शमी वृक्ष की ढेर-सी लकडियाँ एकत्र कर एक चबूतरा-सा बना दिया जाता है । इन लकडियों की आँच बहुत तेज होती है । लकडियाँ जलकर सब अंगारों के रूप में दहकने लगती है, तब गायक विशेष सबद गाना प्रारभ कर देते है । वाद्य तेज कर लिये जाते है और देखते ही देखते गायक मंडली के आगे विविध मुद्राएं निकालने वाले जसनाथी अगारो के मच पर जा कूदते है । यहाँ अगारों की अजुलियां भर-भर उछालते है - जैसे पानी की बूँदें उछाली जाती हो । कभी मुँह में अंगारों को भर कर उनकी फुहारें छोडते है - जैसे हाथी अपनी सूंड से पानी की फुहार छोड़ता है और कभी अगारों की झोलियाँ भर-भर उचक-निचक करते हैं । आग इनके लिए तब एक खेल बन जाती है । राजस्थान का बीकानेर जिला इन आगनर्तकों के लिए जग-प्रसिद्ध हो गया है ।

कोई तत्र-मत्र या टोटका नही । केवल सिद्धाचार्य जसनाथजी की असीम कृपा । फतै-फतै कह कर अग्नि कूदकों का यह आश्चयजर्नक कमाल देखते ही बनता है ।

नंगी औरत और आग का कूंडा :

बीमारी-निवारण का एक अजीब तरीका, टोटका । घर-घर में कोई बीमारी फैलने की आशका होने पर अर्द्धरात्रि को अपने हाथों में डडे लिए प्रत्येक घर-दरवाजे को खटखटाती हुई - धमकमूसल खेमकुशल बोलती हुई श्मशान की ओर चल पड़ती हैं । इनके आगे रहती है एक नगी औरत अपने सिर पर आग जलता कूंडा लिये । श्मशान मे जाकर आग जले कूंडे को पटक आती है और निश्चित हो लौटती है कि अब कोई बीमारी किसी घर में घुसपैठ नहीं कर पाएगी । जोधपुर का यह धमकमूसल बड़ा चर्चित रहा है ।

कच्छी लोगों का अग्नि-मातम :

मध्य प्रदेश के जावरा में हुसैन टेकरी पर मोहर्रम के चालीस दिन बाद चेहल्लुम के

दिन क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सभी टिड्डीदल की भाँति उमड पडते है । झांझ, ताशे और ढोलक की पुरजोर बजबजाहट में कच्छी मुसलमानों के परिवार अपने बदन पर चाकू-छुरी मारते हुए अगारों पर मातम मनाते हुए चढ बैठते हैं । प्रात: 4 बजे से ही यहाँ बनी कोई 6 फीट गहरी, 4 फीट चौडी और 50 फीट लम्बी नाली मे लकडियों का जलना प्रारभ हो जाता है । जब अगारे पूर्ण तेजी पर हो आते हैं, तब कच्छियों की कूद-कबड्डी चलने लगती हे । अंत में वहीं पर बने एक कुएँ मे, झालरे के पानी में ये लोग स्नान कर लेते हैं । कहते हैं पहले यह कुआँ बावडी था, जिसमें पानी की बजाय दूध भरा रहता था पर जब लोगों ने दूध को दूध नहीं रहने दिया, तो वही दूध पानी बन गया । अहमद नगर की ओर ताजियों पर मुसलमान फकीर -अल्लाह ओ अकबर की वाणी लिये आग पर निकलता था जिसे दोनों ओर दो आदमी पकडे रहते थे । महाराष्ट्र के सोनई गाँव मे बालाजी का मंदिर है । चैत्र सुदी 12 से पूर्णिमा तक चार दिन का बडा भारी उत्सव होता हे । नि.सतान औरतें सतान होने पर अपनी मनौती के फलस्वरूप आग पर निकलती हैं तब बालाजी के सम्मुख 8 × 2 की जमीन पर अंगारे दहका कर निकलती है । इसे पुजारी दोनों ओर से पकड़े रहते हैं ।

भोपों द्वारा दांतों तले जलते गोले दबाना :

राजस्थान के भोपे अपने अत्यंत कठिन, अजीब विचित्र कला-करिश्मों के लिए प्रसिद्ध हैं । इनमें अग्नि के माध्यम से कई कठिन प्रदर्शन उनकी विशेषता है । माताजी के भोपे अपने सिर पर जलती हुई अंगीठी रखकर आग पर बडा कलात्मक नृत्य करते हैं । अर्द्धरात्रि के बाद उनकी यह कला बडा निखार लाती है । मिट्टी के अत्यधिक गर्म गोलों को अपने दाँतों से उठाना, लोहे की गरमागरम साट को तैल के हाथों से सूतना उनके अन्य विचित्र कला प्रदर्शन हैं, जिन्हें देखकर चकित हुए बिना नही रहा जाता ।

भारत के दक्षिण-पूर्व के आदिवासी तो आग पर चलने का त्यौहार मनाते है । गाँव के बाहर एक लबा गड्ढा खोदकर आग जला देते है और सबके सब उस पर चल निकलते हैं । एक बड़ा-सा मेला भर जाता है । सारा गाँव आग-सा उल्लास लिये थिरक उठता है । गुजरात के खेडा जिले का पलाना गाँव होली के प्रभाव मे आकर होली के दिन उसके अंगारों में अंगडाइयाँ भरता देखा जाता है । किशोर और किशोरियाँ होली की आग-ज्वाला में अपने को केसरवरणी पाकर धन्य करती हैं ।

पत्थरों की आग यात्रा :

फिजी द्वीप के लोग आग त्यौहार मनाते हैं । एक विशाल खड्डा खोदकर बड़े बड़े पत्थरों को चुना जाता है उनके ऊपर लकड़ियाँ फिर लकडियों पर पत्थर फिर उन पर

लकड़ियाँ इस प्रकार तीन-चार बार लकड़ी-पत्थर जमा कर आग लगाई जाती है । लकड़ियों के साथ-साथ जब पत्थर भी जलकर गर्म शोले बन जाते हैं तब लोग इन पर चल पड़ते है । प्रशात महासागर के उर्मात द्वीप मे भी लकड़ियों के स्थान पर पत्थर जमा कर अग्नि यात्रा की जाती है । तमिलनाडु में धार्मिक पर्वो पर ऐसी यात्रा शुभ मानी गई है । बैगा लोग रामनवमी पर लोहे की जंजीरो को अग्नि में तपाकर उन्हें अपने नगे हाथों से दोहने का उत्सव मनाते हैं ।

मनुष्य वास्तव मे आग है । आग उसके जीवन की ज्योति, ज्वाला, चेतना और चपला है । आग उसे राग और रश्मि देती है, फाग और फगुआ लुटाती है । इसलिए वह आग को नाना रूपो में वरण कर अपनी जीवन-बाती को जलाए-जिलाए रखता है ।





24

रावण की याद में दशहरे के विचित्र कौतुक

सारे ससार में भारत ही एक ऐसा देश है जो कई दृष्टियों से बडा विचित्र और अपनी प्राचीन संस्कृति की निराली विशेषताओं के लिये विख्यात है । यहाँ के विविध वार त्यौहार, विविध मेले ठेले, विविध संस्कार, वेशभूषा, रहन-सहन और यहाँ के निवासी पर कोई भी त्यौहार-उत्सव आता है सब के सब एक मन-तन और भावना लिये, गीत -नृत्य और आनंद उल्लास लिये थिरक उठते हैं । शक्ति और भक्ति की पूजा का प्रतीक दशहरा इन त्यौहारोत्सवों में विशेष महत्व रखता है ।

शस्त्र व शास्त्र पूजा :

यह दशहरा कई रूपों, कथा किवदंतियों और भावनाओं का प्रतीक है । जहाँ यह रावण पर राम की विजय का प्रतीक है वहाँ यह शक्ति रूपा देव-देवियों की उपासना का प्रतीक भी है । इस दिन शस्त्र पूजा का विधान भी है तो शास्त्र पूजा भी की जाती है । आदिवासी अंचलों में अलग-अलग मान्यताएँ इसके पीछे रही हैं । राम की जय विजय के साथ कहीं माता सीता की पूजा-प्रतिष्ठा है तो कहीं हारे जाने पर भी अपने पराक्रम और पौरूष के लिये प्रसिद्ध रावण की स्मृति में भी इसे मनाया जाता है । दशहरा नाम के पीछे भी कई संदर्भ सकेत जुडे हुए है । दस मुख वाला रावण हार जाने के कारण दसहारा शब्द होते-होते दस हरा बन गया और रावण की प्रधानता का द्योतक दशहरा शब्द त्यौहार के रूप में चल पडा ।

दस सिर रावण दहन :

बस्तर के आदिवासी रावण के दस सिर को अपने नृत्य में प्रदर्शित करते हैं । प्रमुख नर्तक जो रावण बनता है वह अपने सिर पर दस सिर बांधकर नृत्यगीतों के साथ रात रात भर अन्य आदिवासी इस दिन नया अन्न अपने देवता को भेंट कर फिर अपने

उपयोग मे लाते हैं । नये अन्न को देवताओं को अर्पण करने के उल्लास में कई स्थानो पर नवा खाई त्यौहारो की परम्परा चल पड़ी । मेवाड में कहते हैं, पहले दशहरे को दस हरे यानी भुट्टे अपने कुल देव-देवी को चढाने के बाद ही उन्हें खाने के काम में लिया जाता था । दसहरे चढाने का यही दिन दस हरा के रूप में चल पडा । कई लोग इस दिन विशाल पैमाने पर रावण आदि के बडे-बडे पुतले जलाते है । कई दल रामलीलाओं का आयोजन करते है और कई जगह विशाल पैमाने पर विविध जुलूस, सवारियाँ और मेले ठेले आयोजित किये जाते है जिनमें आस-पास तथा दूर-दूर तक का विशाल जन समुदाय उमड पड़ता है ।

दशहरा कुल्लू का :

कुल्लू घाटी का दशहरा न केवल हमारे देश में अपितु विदेश में भी बड़ा प्रसिद्ध रहा है । यहाँ की घाटियों में बसे कई सौ गाँव हैं । इन गाँवों से पालकियों में देव-देवता उमड पडते है । भक्त लोग भाँत-भाँत की तुरहियाँ, बिगुल, ढोल, नगाडे, घंटियाँ और बाँसुरिया बजाते हुए विविध पोशाकों में नाचते हर्षित होते अपने-अपने देवों को लाते है । घाटी में आते-आते ये पालकियाँ स्वत हिलने लग जाती हैं तब यह समझ लिया जाता है कि या तो देवता गुस्से में आ गया है या फिर उसे कोई बात कहनी होती है । ऐसी स्थिति में पुरोहित के दिल में भाव आता है । तब वह आने वाली विपत्तियों के संबंध में अथवा खेती बाडी के संबंध में कोई भविष्यवाणी करता है जिससे लोग सावधान हो जाते है ।

इस घाटी में लगभग 300 देवी-देवताओं का निवास माना जाता है । इन सबके मुखिया रघुनाथ नामक देवता हैं । इनके सबध में इधर यह कहा जाता है कि लगभग तीन सौ वर्ष पहले अयोध्या से काई ब्राह्मण रघुनाथजी की मूर्ति चुरा ले आया परन्तु वह सशकित हो गया । उसने अभिशाप से बचने के लिये राजपंडितों से परामर्श किया । इस पर राजा ने गादी रघुनाथ जी को सौंप दिया । तब से रघुनाथ जी सब देवों के मुखिया और पहले दिन उन्ही का रथ भी निकाला जाता है ।

शमी की पूजा :

इसी दशहरे के साथ महाभारत का प्रसंग भी न जाने कब कैसे सम्मिलित हो गया । कुल्लू घाटी मे ही जब कई मील की यात्रा के उपरात जुलूस मैदान में पहुँचता है तब मैसूर के महाराजा शमीवृक्ष की पूजा करते हैं । इसकी भी एक कहानी है । महाभारत मे पाँडवो के अज्ञातवास का अंतिम वर्ष आने पर दुर्योधन राजा विराट की गायें हर लेता है इस पर राजकुमार उत्तम को लेकर अर्जुन युद्ध के लिये चल पड़ता है और अपने शस्त्रो को जिन्हें पहले से शमीवृक्ष में छिपाये रखा होता है निकालता है इसमें कौरवों की

पराजय हो जाती है । कहा जाता है कि पाडवों की विजय के प्रतीक रूप मे ही महाराजा यहाँ केले या नारियल का निशाना लगाते हैं ।

देवी दंतेश्वरी की आराधना :

बस्तर के आदिवासी इस अवसर पर अपनी आराधना देवी दतेश्वरी की आराधना मे रात-रात भर नाचते गाते फूले नहीं समाते हैं । यह देवी दतेश्वरी माता सीता का ही एक रूप माना जाता है । दशहरा आते ही ये लोग दल के दल बनाकर शिकार के लिये निकल पड़ते हे । इधर गोंड लोग अपने को रावण का वशज मानते हुए इस दिन रावण की पूजा करते हैं । प्रत्येक गाँव के बाहर रावण का स्थान बना होता है । इस दिन भैंस, भेड़, बकरी अथवा मुर्गे की बलि दी जाती है और भालों को अपने गालों के आर-पार निकालने जैसे कठिन और आश्चर्यकारी प्रदर्शन दिखाते हैं । इन्हीं लोगों का एक बहुत प्रसिद्ध करमा नृत्य इस दिन का विशेष नृत्य माना जाता है जिसमें युवक और युवतिया नाचते-गाते हुए एक दूसर पर मोहित हो जाते हैं और नृत्य गाने से छूट जगल की ओर स्वच्छद विहार के लिये चल पड़ते हैं ।

मेहमाननवाजी का पर्व :

यही स्थिति नाटी पुरूषों में देखने को मिलती है । नाटी युवक-युवती के सामूहिक व युगल नृत्य में जो आपस में संवाद मिलते हैं उनका रग देखिये जिसमें युवती युवक से कहती है मैं दशहरे पर आऊगी रेशमी घाठ बांधकर । युवक कहता है तू आना अवश्य पर चित्रापट्ट पहनकर आना । फिर युवती कहती है कि मेरा दिल नारियल के गोले खाने को कह रहा है । युवक जवाब में कहता है मैं झोला भर कर लाऊँगा तुम अवश्य हमारी मेहमान बन कर आना और खूब गोले खाना । इस पर युवती जवाब में कहती हैं - मैं मेहमान बनकर नहीं तुम्हारी दुल्हन बन कर आऊंगी । दोनो की आँखें यहीं चार हो जाती हैं और गीतों ही गीतों में उनकी जोड़ी बन जाती है ।

शक्ति देवियों की अखंड धाम :

राजस्थान में इस दिन खासतौर से शक्ति-देवियों की बडी धाम चलती है । जीणमाता, सतीमाता, संकरायमाता, सूसानी, करणी, नाग-ठोचिया, आशापुरी, चावडा, राठाशरण, बाण, बोरज, धंखलाज, एलवा, आवरी, झांतला, सानु, भरक, लाल फूला आदि नामधारी शक्ति देवियों के देवरों में रात-रात भर जागरण होते हैं । इनके भोपे अपने में देवी का भाव बनाये रखते हैं और भक्त लोग अपनी मनौतियाँ पूरी कर मन चाहा आशिष प्राप्त करते हैं

मेवाड में दशहरे के दस ही दिन प्रत्येक गाँव में, देवरो में देवी-देवताओ की पूजा, अनुष्ठा आराधना की जाती है और रात-रात भर जागरण कर इन देवी-देवताओ की यशगाथा के रूप मे भारत गाये जाते है। इन भारतों के साथ ढाक नामक वाद्य बजाया जाता है। अत. इनका एक नाम ढाक भारत भी सुनने को मिलता है। मैंने जगह-जगह देवरो में जाकर रेवारी, भेरू, राडा, रामदेव, वासग, रागड् या, देवनारायण, ताखा, राईका, भूणाभेंदू, मामादेव, ओगड, नाथू, हडवंत, डेरावीर, गलालेंग, रूपण, मासीमा, लटकाली, चावडा, मेलडी, शिकोतरी, चौथ, काछा, पीपलाज, बड़ल्याहींदवा, हठिया आदि के भारत सुने है। इनकी राग ज्यों-ज्यों तेज होती जाती है त्यों-त्यों गाने वालों को जोश तो आता ही है पर सुनने वालों में भी जो किसी विशिष्ट देवी-देवता के भोपे होते हैं वे उसके नाम के भारत को गाते सुनते हुए जोर की हाक भरते हुए भावमय हो उठते है। यह दृश्य बडा ही विचित्र और उतना ही भयावना हो उठता है। सारे भारत पूरे गाये जाते है। कोई भारत अधूरा नही छोडा जाता है।

आटे का रावण ·

मेरठ की ओर दशमी के दिन जहाँ घरों के बाहर दरवाजों पर घोड़े-घोड़ी के चित्र अकित किये जाते हैं वहाँ भूमि पर सूखे आटे से रावण का चित्र उकेरा जाता है। शिकोहाबाद मे मिट्टी का रावण बनाया जाता है। कई जगह रात्रि को रावण, मेघनाथ, कुम्भकरण के बडे-बडे पटाके भरे पुतले जलाये जाते हैं। इस प्रकार हम देखते है कि दशहरा क्या आदिवासियों में और क्या अन्य जातियों में, सभी में शौर्य, शक्ति और सबल पैदा करने वाला त्यौहार है। हमे जहां से शक्ति, प्रेरणा और बल मिलता है, हम इस दिन उसे पूजाकर अपनी श्रद्धा और भक्ति प्रकट करें, यही इस दिन का हमारे लिये विशेष स्मरण है।

दशहरे पर कई जगह बडे मेले भरते हैं। रावण, मेघनाद, कुम्भकरण आदि के विशालकाय बारूद के पुतले बनाकर भस्म किये जाते हैं। मध्यप्रदेश के सजापुर नगर से 70 किलोमीटर दूर भाटखेडी नामक गाव में रावण-मेघनाद की विशालकाय सीमेंट की मूर्तियां उधर से गुजरने वाले सबके लिए अचरज बनी हुई हैं। कई लोग तो यहां नारियल अगरबत्ती चढाकर मन्नत तक मांगते देखे जाते हैं . दशहरा भी यहां बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। इधर भाटखेड़ी को लोग रावण-मेघनाद का गाव भी कहते हैं। राजस्थान में चित्तौड़ जिले के छीपों का आकोला गांव में भी रावण की सीमेंट की बनी अच्छी मूर्ति है पर यह सिर-विहीन है। दशहरे को सिर की जगह मटकी रखकर लोग तीर-पत्थरों से उसे छेदते भेदते हैं



25

गुप्तांग का गहना

नारी का भूषण उसका आभूषण हैं। सुन्दर से सुन्दर और गरीब से गरीब नारी भी आभूषण से अपना सिणगार करना चाहेगी। सिर से लेकर पांव तक का पूरा शरीर नाना प्रकार के आभूषणों से लदा रहेगा। ये आभूषण जातिगत पहचान के प्रतीक भी रहे है। अपनी हैसियत के अनुसार हीरा-जवाहरात से लेकर सोना-चांदी-तांबा-एल्युमिनियम कथीर के विविध आभूषण मिलेंगे। लकडी की कान में पहनने की टोटियां, नारियल की काचली की चूडियां भी पहनने को मिलेगी। लाख की चूडियों का प्रचलन भी बहुत रहा है। घास तथा गेहूं आदि अनाज के पतले-पतले डंठल से बने गजरे, बोर, करधनी भी बडे खूबसूरत लगते हैं। जंगली फलों जैसे खजूर नीमोली के आभूषण भी वनजीवी जातियों में अधिक पाये जाते है। चिरमू तथा भांति-भांति के फूल और पत्तों की सहायता से भी बड़े कलात्मक आभूषण बनाकर पहने जाने का रिवाज रहा है।

गहने सभी अंगों के लिए जरूरी हैं। सिर पर का बोर रखड़ी सौभाग्य का, सुहाग का चिन्ह है। कान के लिए टोटियां बालियां जैसे कई तरह के आभूषण जो कान के ऊपर भी पहने जाते हैं। कहीं ऊपर और बीच में पहनने का भी रिवाज है। कान की नीचली पपडी में तो सभी महिलाएँ कोई न कोई गहना पहनी ही मिलेगी। नाक में नथ भमर क्या बहुत पहना जाता था। नथ भी कई तरह की होती थीं। अब लोंग-लूग का प्रचलन अधिक है। हाथ तो ऊगली से लेकर ठेठ ऊपरी सिरे तक गहनों से लदा रहता है। कमर में कई तरह के, लड़ों के कदोरे मिलते हैं। ऐसे ही पावों के गहने हैं। गहनों का पूरा शास्त्र है। पूरा इतिहास है। इनसे जुडे गीत है। कथाएँ है। सुख सुहाग और सौभाग्य के जडाव है। कुंवारी और विवाहिता की पहचान है। ये गहने नारी की सम्पन्नता के सुरक्षा के सहारे हैं। उसके गर्व गौरव के रक्षक और खजाने हैं।

गहनों की शोध-बोध में इधर-उधर भटकने और पूछने पर मुझे यह तथ्य हाथ लगा कि नारी के और सब अगों के तो गहने होते ही हैं पर उसके गुप्तांग का भी गहना होता

है । उन्ही दिनों राजस्थान पत्रिका के नगर परिक्रमा स्तम्भ में प्रकाशित अमरसिंह की डायरी का 10 मार्च 1912 का हाल पढने को मिला जिसमें गुप्तांग - गहने पर बड़ी रोचक टिप्पणी थी । इसमें अमरसिंह ने मह में ही अपनी साथीण (मारवाड़) यात्रा पर यह इबारत लिखी - ''एक बार मै उनके (हरिसिहजी महाजन) साथ कपड़ों और गहनों की चर्चा कर रहा था तो उन्होंने बताया कि बीकानेर में भारी आभूषणों का फैशन बहुत बढ गया है । इतने भारी जेवर लोग पहनने लगे है कि चलना भी मुश्किल हो जाता है । उन्होंने एक बनिये की बात भी बताई जिसकी जायदाद की किसी कारण तलाशी ली गई थी । उसके जेवरों में एक गहना ऐसा भी था जिसमें हीरे जवाहरात जड़े थे और यह स्त्री के गुप्तांग पर लगाने का था । यह अकल्पनीय बात थी । मैं तो समझ ही नहीं सकता कि कोई पुरूष या स्त्री उस जगह कैसे कोई जेवर पहन सकते हैं क्योंकि न तो इससे आराम मिल सकता है और न कोई देख सकता है । जो हो, संसार में बेवकूफों की कमी थोड़े ही है ।''

मारवाड में ही कई व्यक्ति मुझे ऐसे मिले जिन्होंने नारी गुप्तांग गहने की पुष्टि ही नहीं कि अपितु इससे जुडे लोक प्रचलित कई किस्से कहानी भी सुनाये । इधर तीज त्यौहारों पर कुछ जातियों में महिलाएँ आज भी अपने अधोवस्त्र (घाघरा) के भीतर एक कौर किनारीदार कपडा रखती हैं जो गुप्तांग को ढके रखता है । यह कपड़ा गहरे रंग का रेशमी अथवा मसरू होता है जिस पर लालों मोतियों के फूल पत्ती और चीडे-चाड़ी बने होते है । सम्पन्न महिलाएँ इस पर सोने-चादी के तारों का कसीदा निकाले होती हैं । यह विशिष्ट उल्लास और सज्जा का प्रतीक होता है । कहीं-कहीं यह कपड़ा झालर की तरह का होता है । झालर की बात में एक बात यह सुनी गई कि जो पुरूष अपने मुँह मियां मिट्ठू बनता है उसे 'जारेजा, थारे जसी कई देखी झालर' कहकर निरूत्तर कर दिया जाता है । लोक-लोक में यह झालर वह नारी होती है जो कुंवारी ही रह जाती है और चालीस वर्ष बाद जिसकी योनि के दोनों ओर झालर लटक जाती है । मेवाड़ की ओर विवाह के पश्चात किसी पुरूष को 'झालर वजाई के नीं' अथवा 'झालर डंका बाज्या के नीं बाज्या' कहकर उसकी मजाक बनाई जाती है ।

गुप्तांगों को सजाने के लिए आभूषणों का प्रयोग नर्तकियों तथा वेश्याओं में अधिक होता रहा है । गुप्तांग पर गुदना गुदाने का रिवाज तो कई जातियों में पाया जाता है ।

पुरूष जब परदेश गमन करता तो अपनी पत्नी के जनमदरी के बालों में एक विशेष रीति से गांठ लगा जाता था जिसे वापस लौटकर ही खोलता था । इसके पीछे उसके पतिव्रता बने रहने का ही भावबोध रहा होगा

खोईया के गीतों में गुप्तांग पर मिट्टी का दीया, सरवा, चिपकाने का उल्लेख मिलता है -

कजरौटरिया बेतौ कौन के नाह बरात गये ?
कजरौटरियां बेतौले सरवा भुरि ल्हेसि गये
कजरौटरिया बेतौ आयेंगे जब खोलेंगे ।

बडी बूढ़ियो का तो यह भी कहना है कि विवाह में जो बायबबंद मूंदा जाता है वह महामाया की योनि का प्रतीक है । इसे बंद कर देने से तात्पर्य यही है कि सृष्टि के महाभूत आधी मेह आग ओले आदि उपद्रव न करें और शांति से विवाह सम्पन्न हो जाय । कुछ जातिया तो ऐसी है जिनमें जनमदरी के बाल नहीं काटे जाकर उनकी बतल्या (चोटी) गूंथी जाती हैं । कहीं किसी स्त्री की मृत्यु होने पर उसे दाहक्रिया के लिए ले जाने से पूर्व उसके गुप्तांग पर एक पैसा अथवा रूपया चिपका दिया जाता है । फ्रांस आदि में चरित्रवान महिलाएँ कभी अपने गुप्तांग के बाल साफ नहीं करती हैं । घरों की सुरक्षा के लिए जैसे ताले लगाने की प्रथा है वैसे ही स्त्रियों के यौनांगों पर ताले लगाये जाने की परम्परा रही है । पश्चिमी देशो तथा मुस्लिम देशो में ऐसे चेस्टिटी बेल्ट होते जो ताले की तरह गुप्तांग को सुरक्षित एवं चरित्रमय बनाये रखते । खासतौर से पति जब युद्ध के लिए प्रस्थान करता तो ऐसा बेल्ट लगाकर जाता ताकि उसकी अनुपस्थिति मे कोई पर पुरूष उसकी स्त्री से भोग नहीं कर पाये न वह स्त्री ही किसी के साथ व्यभिचार कर सके । इस प्रकार के चेस्टिटी बेल्ट का प्रचलन उन्नीसवीं सदी तक रहा । ऐसे 1899 में बने एक बेल्ट का नमूना फ्रांस के एक संग्रहालय में रखा हुआ है ।

इस शताब्दी में इसकी लोकप्रियता इतनी बढी-चढी थी कि इसके विज्ञापन तक छपते । फ्रांस के रेम्स नामक एक प्रांत में जो विज्ञापन प्रकाशित हुआ वह इस प्रकार था-

"पति अब अपनी पत्नी को घर में अकेली छोड़कर निश्चित हो बाहर जा सकते हैं । उनका प्रेम अब कोई नहीं छीन सकेगा । शका कुशंका की समस्या ही खत्म । यह चिंता अब सपने में भी नही रही कि आपका बच्चा पाप की निशानी तो नहीं ।"

कहा जाता है कि इस बेल्ट का आविष्कार राजा फ्रांसिस्की करार ने किया था । यह बडा अत्याचारी राजा था । उसके हरम में कई औरतें थीं । उनमे से एक बहुत सुन्दर थी । इसे राजा बहुत प्यार करता था और चाहता था कि किसी अन्य पुरूष की परछाई तक इस पर नहीं पडे । एक बार वह युद्ध के लिये गया तो मन में विचार आया कि ऐसी कोई हो जिससे उसकी प्रेमिका की पवित्रता बनी रह सके इसी सोच ने चेस्टिटी बेल्ट का आविष्कार दिया

इस बेल्ट में धातु की एक पट्टी होती है जो कमर में पहना दी जाती है । एक ताला इसमें रहता है जो गुप्तांग को ढकता है । इसे बंद कर चाबी पुरूष अपने साथ रखे रहता है । (द्रष्टव्य दैनिक जय राजस्थान, उदयपुर के 4 दिसम्बर 1988 के अंक में प्रकाशित - ताला ही प्रगति व सभ्यता का प्रतीक शीर्षक समाचार) ।

ब्राजील में आदिवासी नारियां अपने गुप्तांगों पर गोलाकार पट्टियां बांधती थी । इन पट्टियों पर स्वस्तिक का चिन्ह अंकित रहता था । इसे टूंगा कहते ।

गुप्तांग को लेकर एक बडा ही दिलचस्प किस्सा मुझे सुनने को मिला । इसके अनुसार एक स्त्री किसी पर पुरूष से लगी हुई थी । यह बात उसके पति को मालूम थी अत: उसने अपनी पत्नी के गुप्तांग के बालों की ऐसी गांठें लगा दीं कि कोई उसके साथ सहवास नही कर सके । यह बात पति उस प्रेमी को इशारे द्वारा समझा देना चाहता था फलस्वरूप उसने एक दावत आयोजित की जिसमें गांव के बड़ेरों को बुलाया । लाडू बाटी का भोजन था । परूसकारी करते समय पति ने - 'जीमो मरदां लाडू बाटी, गांठा दीधी काठी' बोलकर प्रेमी के मन में यह बात डाल दी ।

प्रेमी यह बात समझ गया पर उसका प्रेम पूर्ववत जारी रहा । वह भी नहले पर दहला देना चाहता था । फलस्वरूप उसने भी ऐसी ही दावत कर ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहा । दावत में वे ही बड़े एकत्र हुए । लाडू और दाल का भोजन बनाया गया और उसी तरह परूसकारी करते हुए उसने उसका जवाब इन पंक्तियों में दिया - 'जीमो मरदा लाडू और दाल, गांठा दीधी टाल ।'

लोक जीवन में ऐसी समझाइश के इशारे, फड़के बहुत मिलते हैं । यहां हर अच्छा नही कहा जाने वाला कार्य भी बड़े विवेक एवं संयतपूर्ण ढंग से होता है और उसका प्रतिकार भी उतने ही धैर्य शांति और संयमित ढंग से दिया जाता है । यहा शिष्टाचार से परे रहकर न कोई किसी की पगड़ी उछालने का उपक्रम करता है, न अपनी जांघ को उघाड़कर अपनी हेठी ही प्रदर्शित करता है ।



26

मनुष्यों के मेले में देवता की दुकान

किलों की संस्कृति हमारे यहां बड़ी अजूबी अनूठी अलौकिक और कई प्रकार के रहस्य रोमाचक किस्सों से भरी मिलेगी । इतिहास के पन्नों में बहुत कुछ पढने पर भी लगता है जैसे बहुत कुछ जानना अभी शेष रह गया है । जानने की यह लालसा बराबर बनी रहती है । सैकड़ों बरसों से हजारों-हजार किस्से कहानी और विविध घटना प्रसग लोकजीवन की मुख्यधारा से जुडते हुए भी नित नवीन लगते हैं और अद्भुत ताजगी लिए खडहरों में भी जीवत वैभव का एहसास देते हैं ।

किलों में सिरमौर चित्तौड का किला कहा गया है - गढ तो चित्तौड़ गढ । वास्तव में यह है भी । प्रारंभ में यह चित्रकूट के नाम से बसाया गया । लगभग तीन हजार बरस पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य ने इसे बसाया । इसकी प्रेरणा चन्द्रगुप्त को अपने भाइयों के झगडे के दौरान मिली । झगडे में चन्द्रगुप्त ने अपने भाइयों को ललकार दी और यह कह निकल पडा - 'यदि एक अलग चित्रकूट न बसाया तो असल मरद मत कहना ।' आज जो डियर पार्क है वही प्रारंभ का चित्रकूट है ।

इसे अजीब संयोग ही कहना चाहिये कि जब से चित्रकूट की नींव पडी तब से यहां रक्त ही बहता रहा । या तो यहा जौहर हुए या फिर जुद्ध-युद्ध । जुद्ध और जौहर का ही तो इतिहास है चित्तौड । इसे कई मिटाने आये पर वे स्वयं मिट गये । चित्तौड़ आज भी अमिट अमर है ।

इसी चित्तौड के किले पर बडे विचित्र मेले भरते हैं । दीवाली की घनी अंधेरी रात में भूतों का मेला और देव दीवाली को दिव्य आत्माओं का मेला लगता है मगर कौन इन्हें देख पाता है । मनुष्य की कोई आँख इन्हें अपने में दृश्यमान नहीं कर सकती । लोकदेवता कल्लाजी की असीम कृपा से उनके सेवक सरजुदासजी के साथ ये दोनों मेले मुझे देखने को मिले । कल्लाजी चक्रवात युद्ध के धनी थे । इन्होंने अपने हाथ में कभी ढाल नहीं ली । इनके दोनों हाथों में तलवारें रहती थी जो आगे पीछे ऊपर नीचे जैसा चाहो वैसा वार कर

गाजर मूली की तरह दुश्मनों का सफाया करती ।

इन्हीं कल्लाजी ने मुझे यहां एक मेला ऐसा दिखाया जिसमें देवता मनुष्य वेश धारण कर अपनी लीला दिखाते हैं । यह मेला हरियाली अमावस्या का था जो गत पांच सौ वर्षों से भर रहा है । मोती बाजार से लेकर कालिका मंदिर तक भरने वाले इस मेले में अधिक भीड नहीं होती । यह अब तो सांध्यकालीन मेला ही अधिक रह गया है । सन् 84 में देखे गये इस मेले में हमारे साथ हिन्दी प्राध्यापिका कवयित्री डॉ. सुधा गुप्ता तथा मेरी बिटिया कविता भी थी ।

साय पांच बजे बिड़ला धर्मशाला से हम मेला देखने निकले । मोती बाजार से नर नारियों और बच्चों की चहल-पहल शुरू हो गई थी । घूमते-घामते हम विजयस्तंभ पहुचे । वहां चबूतरी पर अपने पांव लटकाये एक फुग्गेवाला देखा । इसके आसपास बच्चों की भीड़ थी । कल्लाजी ने हमें अंगुली का इशारा दिया । हम समझ गये फुग्गे बेचने वाला कोई देव पुरूष है । पास ही चाय की दुकान थी । बैंच पर बैठकर हम चाय की चुस्की लेते रहे और फुग्गे वाले को निहारते रहे ।

यह फुग्गेवाला फकीर तहमत पहने था । कधे पर झोली थी । कत्थई रंग के सिर के जटाधारी बाल और वैसी ही दाढ़ी थी । इसका एक हाथ छोटा था और छोटा ही एक पुराना पप था जिससे फुग्गे में हवा भर-भर कर बच्चों का मन बहला रहा था । उसकी निगाहें बडी नेक, सूरत बड़ी भोली और शक्ल बड़ी सौम्य थी । बच्चे उससे फुग्गे ले-लेकर बड़े मस्त मगन हो रहे थे ।

कल्लाजी हमारी उत्सुकता ताड गये । फलस्वरूप वे हमें उसके नजदीक ले गये । हम उसके पास जाकर खडे हो गये । हमारे जाने से उसमें कोई फर्क नहीं पड़ा । वह अपने काम में खोया रहा । हाँ, वाणी तो हम नहीं सुन सके पर हमें यह अवश्य लगा कि कल्लाजी और उसके बीच कोई वार्तालाप जारी है । सुनने को हम उस फकीर से यही सुन पाये - 'फेरकार तो करनोई पड़े ।' दोनों खूब मुस्कराये । हम उन्हें देखने में ही खोये रहे ।

इतने में सुधाजी ने एक फुग्गा लेने को कहा । उसने झोली में हाथ डाला । एक फुग्गा-ककड़ी निकाली । पप से उसमें हवा भरी और कविता को थमा दी । इसका रग नीला था । सुधाजी ने एक रूपया दिया तो उसने अपना कमीज ऊंचाकर बनियान की जेब से पैसों की पोटली निकाली और उसमें से एक अठन्नी निकालकर देनी चाही पर हमने नही ली और हाथ जोडकर वहा से आगे बढ़े । फकीर अपने हाल में मस्त था । उसने हमारी ओर देखा तक नही परन्तु हम तो उसे कदम-कदम पर पीछे मुड़-मुड़ घूर-घूर कर देखते आगे चलते रहे ।

चलते चलते हम पत्ता महल पहुंचे । मुख्य द्वार से ज्योंही हमने भीतर प्रवेश किया कि महल में एक बूढ़ा व्यक्ति आता दिखाई दिया । इसके सिर पर मेवाडी लहरिया बंधा था । खादी धोती और अंगरखी पहने था । अपने दोनो हाथों से इसने अपने कधे पर रखी लकड़ी थाम रखी थी । हमने इसे हाथ जोडकर नमस्कार किया । इसने बड़ी मुस्कान के साथ हमारा अभिवादन स्वीकार किया । अपनी सफेद दाढी में यह व्यक्ति बडा ही सरल चित्त का था । हम इसे निहारते रहे पर इसने पीछे मुडकर झाका तक नही ।

पत्ता महल में केवल हम ही थे । मूल महल में नीचे दीवाल के भीतर आमने-सामने भेरूजी व पत्ताजी के थानक हैं । भेरूजी के दर्शन कर हम पत्ताजी के थानक गये तब उसी समय वहां मालपुओं से भरा दोना देख हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा । हमने इधर-उधर देखा कि किसी ने गुपचुप कोई करिश्मा तो नहीं कर दिया पर वहां कोई नहीं था । कल्लाजी ने वह दोना उठाया और मालपुए देते हुए हमें कहा - 'आज के दिन घर-घर में मालपुए बनते है फिर आप कैसे इनसे वंचित रहते । यह प्रसाद पत्ताजी ने भेजा है, इसे ग्रहण करो ।' हम प्रसाद रूप में मालपुए खाते रहे और आश्चर्यमग्न होते रहे ।

यहां से हम एक दूसरे रास्ते से पुनः लौटे । बीच में हमने आदिवासी नर-नारियों के गाते नाचते ठुमकते बड़े उल्लसित झुंड देखे । ध्यानपूर्वक देखने से पता चला कि ये सब देवता पुरूष है जो मेले से अलग अपनी मौज में खोये हुए हैं । कुंभा महल आते-आते मेलार्थियों के बीच हमने एक ऐसा व्यक्ति देखा जो अपने एक पाव पर अधिक जोर देकर चल रहा था । इसका शरीर बड़ा काला था । इसने सफेद पाजामा पहन रखा था और सफेद धारी वाला काला कमीज बड़ा साफ सुथरा लग रहा था । हमने थोड़ी दूर स्थिर रह इसे देखा । वह भी हमें देखता हँसता मुस्कराता धीरे-धीरे आगे बढ़ता रहा । इसके भंवरे जैसे काले घुंघराले बाल थे और दांत सर्वाधिक सुन्दर लग रहे थे । बड़ा अचरज यह रहा कि हम इसे देखते रहे और वह हमें देखता-देखता कैसे कहां अलोप हो गया ।

मेले तो हमने कई देखे मगर ऐसा स्वप्नजगा मेला कभी नहीं देखा । इस मेले ने जहां हमें कभी न भूली जाने वाली यादे दीं । वहां मालपुए का वह स्वाद और ककडी फुग्गा तो आज भी हमारी अनमोल धरोहर बना हुआ है ।



27

भगवान एकलिंग की सेवा में राजपाट छोड़ा प्रताप ने

भारतीय इतिहास में महाराणा प्रताप का नाम स्वाधीनता का पर्याय बन गया है। उनके द्वारा मुगल बादशाह से लड़ा गया हल्दी घाटी का युद्ध भारतीय स्वातन्त्र्य चेतना का अमिट अध्याय बन विश्व मानचित्र में सबके लिए प्रेरणा का प्रणम्य बना हुआ है। जब राजपूताने के सभी राजाओं ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली तब अकेला प्रताप ही एक ऐसा राणा था जिसने अपने मेवाड़ को अनमित ही रखा। यही कारण है कि इस भूमि में जो भी आता है, सबसे पहले यहा की माटी का वंदन कर शीश चढ़ाता है।

चित्तौड दुश्मनों से निरन्तर घिरा रहने पर सुरक्षित नहीं रह गया था अत: प्रताप चाहते थे कि यहां से ऐसी जगह कूच किया जाय जो भली प्रकार से सुरक्षित हो और जहा दुश्मन भी आसानी से नहीं पहुंच सके। इसके लिए जगह-जगह तलाशी गई तब चारों ओर पहाडियों से आच्छादित वह स्थान पसंद किया गया जहा वर्तमान उदयपुर बसा हुआ है। तब त्रिपोलिया के वहां का नाला पाटकर प्रताप ने महल बनाया और देवपुर नाम दिया जिसे बाद में प्रताप ने ही यह नाम बदलकर अपने पिता उदयसिंह के नाम पर उदयपुर कर दिया। यहा सबसे पहले चित्तौड के जीवों को लाकर शरण दी।

प्रताप ने उदयपुर बसा तो लिया परन्तु दुश्मनों का पीछा सदा ही बना रहा। निरन्तर होते आक्रमण को प्रताप झेल नही पाये और सेना भी धीरे-धीरे कम रह गई। वे निराश हो गये। तब उन्होंने कैलाशपुरी में शिव मदिर बनाकर उसमें एकलिंगनाथ की चौमुखी मूर्ति स्थापित कराई। यह मूर्ति भोज द्वारा मंगवाई गई थी। भोज स्वयं इसकी किसी तीर्थस्थल पर स्थापना करवाना चाहते थे पर वे नहीं करवा सके तब प्रताप ने यह कार्य किया

प्रताप ने यही नहीं किया, एकलिंगनाथ के श्रीचरणों में अपने साथ-साथ पूरे राजपाट को ही समर्पित कर दिया और स्वयं ने उनकी दीवानी धारण कर ली । सामंतो की उपस्थिति में उन्होंने यह कार्य किया । उन्होंने कहा - 'नाथ ! यो राज म्हासूं नीं संभल्यो जावै । लोग मार्‌या जाइर्‌या है, आपई सभालो । म्हूं तो आपरो दीवाण बण सेवा में हाजिर रे सूलो ।' तब से ही मेवाड के राणा अपने को एकलिंगजी का दीवान मानते आ रहे है ।

हल्दीघाटी का युद्ध प्रताप का ही नहीं, अकबर का भी आखरी युद्ध था । इस युद्ध मे प्रताप की ग्यारह रानियों में से एक चेतीबाई (चतर कुंवर) ने बड़ा शौर्य दिखाया । इसके नेतृत्व में करीब डेढ सौ महिलाओं ने पुरूष वेश में अपनी बहादुरी का जौहर दिखाया । इनमें से अधिकाश नव परिणिताएँ थीं जिनकी हल्दीघाटी ही अपना रंग नहीं छोड पाई थी । हल्दीघाटी नाम के पीछे एक तथ्य यह भी छिपा हुआ है । दूसरा यहां हल्दू वृक्ष की बहुतायत थी इसलिए आदिवासी इसे आज भी हल्दूघाटी नाम से ही सबोधित करते हैं । प्रताप के निधन के बाद भी दस साल तक चेतीबाई जीवित रही । अमरसिंह इसी का पुत्र था । यह गोगुन्दा के चुहाण खानदान की थी । प्रताप की मावड बेणीजी भी चुहाण थी । हकीम खां भी मूलत: मीणा ही था । उसके पुरखे मुसलमान बना दिये गये थे । प्रताप के बाद शक्तिसिंह भरत की तरह राजकाज में सहायक बने रहे । अमरसिंह को राजगद्दी देने के बाद इनका निधन हुआ ।

उदयपुर की मोतीमगरी, जहां प्रताप स्मारक बना है, पर प्रताप ने निवास किया था । यहीं अपना भेष बदल, फकीर वेश में एक बार अकबर आया था जिसे राणा के सरदारों ने पहचान लिया और प्रताप को कहा भी कि अच्छा मौका है, दुश्मन को मौत के घाट उतारने का पर प्रताप ने कहा - 'ऐसा कभी नहीं होगा । घर आया तो अतिथि होता है ।' यह कह अमरसिंह के हाथ से रोटी दिलाई । राणा ने भी अकबर को पहचान लिया था । उसकी आंख के नीचे मस्सा था । उसके चले जाने पर सरदारों ने कहा - 'बिलाव की तरह चोरी छिपे आया और रोटी ले गया ।'

पूरे मेवाड़ में घूम जाइये । ऐसे कई स्थान हैं जो प्रताप की स्मृति लिये विजन विरान बने हुए हैं । किसी ने उनकी तलाश नहीं की । उन सारे खडहरो में उस स्वाधीनचेता रणवीर की कई यादें मौन अजान बन खोई पडी हैं । उन्हें जगानेवाला, चेतना देने वाला कोई हो तो प्रताप का सारा यश: प्रताप चित्रपट की तरह जीवंत हो उठेगा । किसी कलम ने इतिहास का कोई अक्षर तक नहीं दिया ।

गोगुंदा जहा प्रताप का राजतिलक हुआ से सात किलोमीटर दूर झालों का गुढ़ा

क्षेत्र कभी प्रताप का निवास क्षेत्र रहा । इधर की बटमाल पहाड़ियों में प्रताप के हाथी घोड़े बधते थे और रानिया निवास करती थी । जहा हाथी बांधे जाते वह स्थान हाथी डांग्या कहा जाता और रानियों का निवास राणीमाता नाम से आज भी जाना जाता है । तब यहा भयावह जगल था । युद्ध के दौरान प्रताप के लिए यह बहुत ही एकांत क्षेत्र था ।

इसी के पास बावड़ी है जहा रानियां व दासिया नहाने आती थी । दासियों के साथ उनकी छोरियां तो यहा बनी ही रहती थी इसलिए यह बावड़ी भी छोरियों की बावड़ी कहलाई । कालान्तर में छोरियों की वावड़ी चोर बावडी हो गई और यहा जो बस्ती बसी उस गाव का नाम भी यही चोर बावड़ी चल पड़ा । यहा पहाड़ियों पर छोटा सा महल स्थल हे जो कभी प्रताप का शस्त्रागार था । अमरसिंह का लालन-पालन भी यहीं हुआ । महल मे एक गुफा भी हे । साधु संतों की धूणी भी है ।

खमनौर के पास कालेड़ा मे प्रताप ने एक अस्पताल खोला जहा हल्दीघाटी युद्ध मे घायल हुए सैनिकों का इलाज किया जाता था । यहा सेना का पड़ाव भी रहा ।

केलवाडा मार्ग पर स्थित बरनाडा गांव में पहाड़ी पर प्रताप का अलाव पूजा गया । उदयपुर के पास केलियों का गुडा में भी प्रताप का रिसाला था । भीलवाड़ा से बावन किलोमीटर दूर सिंगोली के पास सेवालिया गाव से प्रताप की पुत्री के विवाह में घी मगवाया गया था । यहां पहाडियों पर गढ बना हुआ है । प्रताप यहां शिकार के लिए आते थे । एक ओदी भी इसके लिए यहा बनी हुई है ।

प्रताप की सेना का एक डेरा लोसिंग में भी था । इस गांव की राणी की खार नामक जगह प्रताप की राणियों से जुडी है । गांव वालों ने यहां थकी मांदी सेना को पानी पिलाया था । उन सैनिकों का लहू इस गांव में पडा जिससे उसका नाम ही लोसिंग हो गया । पहले यह गांव भाटोली नाम से जाना जाता था । मेवाड़ी में रक्त को लोई कहते है ।

जब चावड को प्रताप ने अपनी राजधानी बनाया तब इधर के पहाड़ों में भी प्रताप की कई यादे जुडी है । अदवास गांव में प्रताप के वंशज निवास करते हैं । सभी सिसोदिया राजपूत है । इन सब स्थानो पर शिवलिंग स्थापित किये मिलेंगे ।

चेटक स्मारक के पास ही बलीचा गांव है । प्रताप ने यह गांव श्रीधर व्यास को दिया था । उसके बाद महाराणा जवानसिंह ने पुनः वह ताम्रपत्र बनवाकर दिया । सवत् 1891 का यह ताम्रपत्र श्रीधर के वंशधरों (श्रीमालियों) के पास सुरक्षित रखा हुआ है ।

श्रीमाली जमनालाल जी ने बताया कि संध्या को श्रीधरजी जब शिवजी की पूजा कर रहे थे तब प्रताप वहा आये और मृत चेटक को समाधि दी । श्रीधरजी से कहा कि शिवजी के साथ साथ इसकी भी प्रतिदिन नियमित सेवापूजा होती रहे इसके लिए

उन्होंने बलीचा गाव लिया । तब से चेटक की पूजा जारी है । अभी श्रीधरजी की 18वी पीढ़ी चल रही है । इसके पास ही वह नाला है जिसे चेटक कूद कर खोडा (लगडा) हुआ । जहां वह गिरा वहां इमली का वृक्ष था जो आज भी है । इसे खोडी इमली कहते हैं । युद्ध के बाद बरसात हुई थी तब सारा पानी रक्तमय हो गया था और वहा तलैया मे एकट्ठा हो गया था तब से उसका नाम ही रक्त तलाई चल पड़ा ।

चेटक प्रताप का अति विश्वसनीय घोड़ा था । प्रताप का और इसका जन्म एक ही दिन हुआ । यह बड़ा रणबाज था । इसने कई लड़ाईयां लड़ीं । इसका रंग सफेद मिश्रित काला था । ऐसे घोड़े अबलक कहलाते हैं । युद्ध में घोड़े से मालिक की पहचान होती । योद्धा के मरने पर घोड़ा उसकी लोथ अथवा पाग लेकर घर पहुंचता तब उसकी पत्नी उसके साथ सती होती । यह पागसती कहलाती । प्रताप पर देवी देवता भी महरबान थे । सिकोतरी ने उनकी कई बार सहायता की । यह भी कहा जाता है कि चित्तौड़ का दुर्ग भी पहले उससे तेरह किलोमीटर दूर घटियावली के पहाड़ पर बनने वाला था । यह स्थान शस्त्रागार तथा सैनिकों का शरणगाह भी रहा ।

कहने का तात्पर्य यह है कि पूरा मेवाड़ क्षेत्र प्रताप की कई स्मृतियों का अपरिमित कोष बना हुआ है । इस संबंध में पुख्ते सर्वेक्षण अध्ययन तथा अनुसधान की आवश्यकता है ।



28

हल्दीघाटी में हल्दी रंगी वधुओं ने युद्ध रचा

सभी जानते हैं कि हल्दीघाटी के प्रसिद्ध रणक्षेत्र में जयपुर के राजा मानसिंह ने अकबर की ओर से मेवाड के महाराणा प्रताप से युद्ध किया था । इतिहासकारों ने मानसिंह का सही मूल्यांकन नहीं कर उसे नमकहराम और दगाबाज तक कहा । ये ही मानसिंह आगे जाकर मृत्यु के बाद लोकदेवता कल्लाजी के सेनापति हुए । 21 मई 85 को जब मैं और डॉ. सुधा गुप्ता मीरां संबंधी शोध के सिलसिले में कल्लाजी के सेवक सरजुदासजी के सान्निध्य में गिरनार गये तब दतात्रेय के दर्शन कर लौटते हुए तपती दुपहरी में सरजुदासजी को मानसिंहजी के भाव पड़े और पहली बार उन्होंने हल्दीघाटी की रहस्य और रोमांच भरी दास्तान कही । यह दास्तान इतिहास के कई अछूते पृष्ठ खोलती है जिससे जनजीवन में फैली अनेक भ्रांत धारणाओं का शमन होता है । इस संबंध में मानसिंहजी ने जो कुछ बताया वह यहां प्रस्तुत है ।

''इतिहास कत्हा लडाई में आकर खड़ा रहता है । एक बहन के नाम को दबाने के लिए हमने क्या नहीं किया ! अकबर के हर हुकम को बजाया । उसने कहा - इस राजपूत को भाला मार दे, हमने मार दिया उस राजपूत को खडा चुन दे, हमने चुन दिया । हमने केवल एक ही बात का ध्यान रखा कि यदि राजपूत नारी बच गई तो कई राजपूत खड़ा कर देगी पर यदि सब मुगल हो गये तो सलीम ही सलीम पैदा हो जायेंगे ।

इतिहास जो मुझे जानता है, अकबर के पीछे जानता है । उसे क्या मालूम कि कितनी रजपूतनियां मरदाना वेश धारण कर रणभूमि में काम आयीं ? कोई नहीं जानता कि उन रणचडियों ने कितने मुगलों का खात्मा किया ? रजपूती भेष में जो भी वीरागना सामने आती, हम हट जाते । उसके पडदे की लाज से कोई मुगल यह नहीं जान पाया कि युद्ध में कोई रणचढी महिलएँ लड़ रहीं है हमारे ही लोगों ने हमारे साथ कितना धोखा

और षडयत्र किया. इसे कौन जानता है ? हमने दिल्ली में गुपचुप बैठक बुलाई राजपूतों की, पर उस बैठक की सारी बात हमारे अपने ही लोगों ने जाकर अकबर को बता दी । इतिहास क्या जाने कि हमारे पीछे सौ गुप्तचर लगे रहते थे । एक बीरबल ही ऐसा था जिसने हमारी बहुत मदद की । वह बडा पंडित था । हमारे खिलाफ जो भी कुछ होता, वह हमें सचेत कर देता ।

हल्दी घाटी नाम हल्दी रंगी मिट्टी के कारण नहीं पडा । ऐसी मिट्टी यहा है भी कहा । लाल पीली और काली तीन रंगो वाली मिट्टी है फिर हल्दीघाटी नाम क्यों दिया गया ? इसका एक मात्र कारण यह है कि यहॉ हल्दी चढ़ी कई नव विवाहिताएँ पुरुष वेष मे लड मरीं ।

राणा प्रताप को तलवार के घाट उतारना कौनसी बडी बात थी । घोड़ों के हाड मजबूत होते हैं या सवार का दिल ! जब हम घोड़ों को गाजर मूली की तरह काट सकते थे तो प्रताप को मारना क्या मुश्किल था । मगर जब जब प्रताप पर हमने वार करना चाहा तब तब उनकी धर्मपत्नि वीरागना ने अपने हाथ के इशारे से हमें अपनी मांग के सिन्दूर की रक्षा का संकेत दिया । इससे हम डांवाडोल होते रहे । हम जानते थे कि नारी के लिए सुहाग से बढकर कोई चीज नहीं होती । राजपूतों ने हमें कुछ नहीं समझा तो हमने भी उनकी कभी कद्र नहीं की पर राजपूतनी वीरागनाओं को हमने भी माँ से कम नहीं समझा । इसीलिए राणा बचते चले गये । मुगलों में एक की भी ऐसी ताकत नहीं थी कि राणा के एक बाल तक को भी उखाड़ सकें ।

प्रताप का यह अतिम युद्ध था जो 6 माह तक चला । एक दिन सूरज ढलने की तैयारी में था तब हमने राणा को युद्ध से चले जाने का इशारा किया । उस समय उनकी और हमारी ऑखो में पानी था । इशारा पाते ही राणा वहां से हटे । इधर हमारा भाला पडा तो लोग समझ बैठे कि राणा मार दिये गये मगर जब वह खेमें में पहुँचे तब पता लगा कि राणा तो जिन्दा हैं ।

हमने चेटक पर तलवार चलाई और उसका पांव काटा । अकबर दूर खडा यह तमाशा देख रहा था । वह बडा बुद्धिशाली था । एक-एक तलवार कहाँ किधर कैसी चलती है, उसे सारा पता रहता था । हमसे भी सवाल हुआ तो जवाब में हमने यही कहा कि यदि घोडे पर वार नही करते तो घोडा सीधा गज पर उछलता इसलिए उसका पाव काटा गया । सवार मारने से पहले घोडा मारना जरूरी था । नाले के उस पार जब चेटक कूद कर गिर पड़ा तो हमने शक्तिसिंह को कहा कि जाओ अपने भाई की रक्षा करो । बातें बड़ी गहरी हैं ' वहाँ कौन इतिहास लिखता '

उदयपुर की मोतीमगरी पर राणा रहे । अकबर फकीरी वेश में उनके दीदार करने आया । राणा को उनके लोगों ने कान में कहा - यह कोई फकीर नहीं, अकबर है । इसका सर कलम कर दो मगर वाह रे राणा ! उस राजपूत का कलेजा देखो । उसने कहा - अपने दर आया आदमी अतिथि होता है । राणा ने वचों के साथ में उस फकीर को रोटी खिलाई । राजपूत कहते रहे - बिलाव की तरह चोरी छिपे आया और रोटी ले गया । तभी से उसे बिलाव कहा जाने लग गया । बिलाव का खिताब तो राजपूतों ने दिया अकबर को । इसे कौन जानता है ? प्रताप ने भी अकबर को पहचान लिया था । यह पहचान उसकी आँख के नीचे मस्सा होने के कारण हुई । कई गुप्तचर भी होते थे जो एक दूसरे का भेद देते थे ।

मुगल आपसी रंजिश पैदा करने के लिए वीर राजपूत के साथ फरमान भेजते । हम भी आये थे खलीफा बनकर, रण का पैगाम लेकर । उदयपुर के पास पूर्व की ओर जो पठार हैं वहाँ जंगल में राणा को उनके भील-रक्षक के साथ संदेश कहलवाया तब राणा से हमारी मुलाकात हुई । हमने पहले तो उनकी सुनली । फिर जोश दिलाया कि लड़ाई इस हालत में करनी है ।

अकबर की सेना कोई गिन नहीं सकता था । एक-एक सेना नायक के साथ हजार के नीचे कोई सैनिक नहीं होते । यह सुबा कहलाता । ऐसे 122 सुबा और 3 हजार सेनापति थे । अकबर ने हल्दीघाटी के बाद कोई युद्ध नहीं किया ।

चेटक और प्रताप का जन्म एक दिन हुआ । यह बडा रणनीति बाज था । इसने कई लडाइयां लडीं । प्रताप को यह इतना प्रिय था कि इसकी मृत्यु के बाद प्रताप इसके गम में बीमार पड गये । इसका रंग काला व सफेद मिश्रित था इसलिए इसे अबलक कहते थे । दो रंगों वाले घोडे आज भी अबलक कहलाते हैं । युद्ध में घोडे से ही उसके मालिक की पहचान होती थी । यदि कोई योद्धा मर जाता तो उसका घोड़ा उसकी लोथ अथवा पाग लेकर उसके घर पहुँचता था । तब पगड़ी के साथ मृतक योद्धा की वीरांगना सती होती थी । ऐसी महिला 'पाग सती' कहलाती थी । घोड़ों पर या तो सईश बैठते या फिर रईश । सईश उगाडी पीठ पर बैठते जबकि रईश काठी पर बैठा करते थे । चेटक देव घोडा था ।

प्रताप महाराणा उदयसिंह के लडके थे । इनकी माता का नाम वेणीजी था जो चुहाण थी । अपने पिता के नाम पर उदयपुर की नींव प्रताप ने ही डाली । प्रताप के 11 पत्नियां थी । इनमें से हल्दीघाटी के युद्ध में चेतीबाई (चतर कुंवर) ने बडा जलवा दिखाया यह गोगुन्दा की चुहाण की थी प्रताप का पुत्र अमरसिंह इसी

हल्दीघाटी में हल्दी [illegible]

चेतीबाई की कुआ [illegible]

उनकी मृत्यु के [illegible]

और [illegible]

[illegible]

मुगल बना दिया गया था [illegible]

प्रताप की मृत्यु के बाद [illegible]

है। [illegible]

उदयपुर की मोतीमगरी पर राणा रह । अकबर फकीरी वेश में उनके यहाँ आया । राणा को उनके लोगों ने कान में कहा यह कोई फकीर नहीं अकबर है इसका सर कलम कर दो मगर वाह रे राणा ! उस राजपूत का कलेजा देखो । उसने कहा - अंदर आया आदमी अतिथि होता है । राणा ने बच्चे के हाथ से उस फकीर को रोटी दिलाई । राजपूत कहते रहे - बिलाव की तरह चोरी छिपे आया और रोटी ले गया । तभी से उसे बिलाव कहा जाने लग गया । बिलाव का खिताब तो राजपूतों ने दिया अकबर को । इसे कौन जानता है ? प्रताप ने भी अकबर को पहचान लिया था । यह पहचान उसकी आँख के नीचे मस्सा होने के कारण हुई । कई गुप्तचर भी होते थे जो एक दूसरे का भेद देते थे ।

मुगल आपसी रंजिश पैदा करने के लिए वीर राजपूत के साथ फरमान भेजते । हम भी आये थे खलीफा बनकर, रण का पैगाम लेकर । उदयपुर के पास पूर्व की ओर जो पठार हैं वहाँ जगल में राणा को उनके भील-रक्षक के साथ संदेश कहलवाया तब राणा से हमारी मुलाकात हुई । हमने पहले तो उनकी सुनली । फिर जोश दिलाया कि लड़ाई हर हालत में करनी है ।

अकबर की सेना कोई गिन नहीं सकता था । एक-एक सेना नायक के साथ हजार के नीचे कोई सैनिक नहीं होते । यह सुबा कहलाता । ऐसे 122 सूबा और 3 हजार सेनापति थे । अकबर ने हल्दीघाटी के बाद कोई युद्ध नहीं किया ।

चेटक और प्रताप का जन्म एक दिन हुआ । यह बड़ा रणनीति बाज था । इसने कई लडाइयां लडीं । प्रताप को यह इतना प्रिय था कि इसकी मृत्यु के बाद प्रताप इसके गम मे बीमार पड गये । इसका रंग काला व सफेद मिश्रित था इसलिए उसे अबलक कहते थे । दो रंगों वाले घोडे आज भी अबलक कहलाते हैं । युद्ध में घोड़े से ही उसके मालिक की पहचान होती थी । यदि कोई योद्धा मर जाता तो उसका घोड़ा उसकी लोथ अथवा पाग लेकर उसके घर पहुँचता था । तब पगडी के साथ मृतक योद्धा की वीरांगना सती होती थी । ऐसी महिला 'पाग सती' कहलाती थी । घोड़ों पर या तो सईश बैठते या फिर रईश । सईश उगाड़ी पीठ पर बैठते जबकि रईश कांठी पर बैठा करते थे । चेटक देव घोड़ा था ।

प्रताप महाराणा उदयसिंह के लडके थे । इनकी माता का नाम वेणीजी था जो चुहाण थी । अपने पिता के नाम पर उदयपुर की नींव प्रताप ने ही डाली । प्रताप के 11 पत्निया थी । इनमें से हल्दीघाटी के युद्ध में चेतीबाई (चतर कुंवर) ने बड़ा जलवा दिखाया यह गोगुन्दा की चुहाण की थी प्रताप का पुत्र अमरसिंह इसी

चेतीबाई की कुक्षि से पैदा हुआ था । यह अंतिम समय तक महाराणा के साथ रही । उनकी मृत्यु के 10 वर्ष बाद इसका निधन हुआ । नेतीबाई के साथ लगभग डेढ़ सौ और वीरांगनाएँ थीं । जिन्होंने शाही बहादुरों के साथ हल्दीघाटी का युद्ध किया ।

हकीम खां मूलतः मीणा था । यह बड़ा बहादुर योद्धा था । इसके पुरखों को मुगल बना दिया गया था । इस युद्ध में प्रताप का पुत्र अमरसिंह नहीं लड़ा । शक्तिसिंह तो प्रताप की मृत्यु के बाद भरत की तरह राजगद्दी की सेवा कर राजकाज चलाने में सहायक रहे । अमरसिंह को राजगद्दी पर बिठाने के बाद ही इनका देहावसान हुआ ।"



29

झाड़ फूँक तंत्र-मंत्र जादू-टोना

आदिवासियो में अनेक प्रकार के विश्वास व्याप्त है जिन्हें हम लोग अंधविश्वास ही अधिक कहते है । इनमें इहलोक तथा परलोक की कई बातें कही-सुनी जाती हैं । आत्मा के चौरासी भ्रमण, नाना योनियों में जन्म, प्रेतगति, पितरगति, चुड़ैल गति पीरयाजी गति आदि ऐसी इनमें कई मान्यताएँ है जो बड़ी अजूबी, अनूठी और विस्मयकारी है ।

अनोखे आदिवासी :

यों तो पूरा आदिवासी संसार ही अनोखा है । जिन मान्यताओं तथा स्वीकारोक्तियो के बढते विज्ञान के कारण झूठला चुका हैं, वे आज तक आधुनिक इन लोगों में प्रचलित मिलेगी । इस समुदाय में कई बीमारिया आज भी देवी-प्रकोप का फलन मानी जाती हैं । बीमारी होने पर बोलमा करने, आखड़ी लेने, बाधा लेने से लेकर किसी भी कार्य के लिए देवी-देवताओं की मनौती करने की इनमें मान्यता है ।

आदिवासियों की बस्ती मे प्रवेश करते ही वहा मिलने वाले देवी-देवताओं के देवरे, पूरबजों-पितरों तथा मातलोक के चीरे आदि देखकर इनके पारलौकिक विश्वास को झूठलाया नही जा सकता । शनिवार, रविवार या अन्य किसी भी शुभ दिन इन स्थानको पर लोगों को धुणते (भावाविष्ट) हुए देखा जा सकता है । अलौकिक आत्माए आती हैं तथा अपने गोडलों के माध्यम से लोगों के दुःख-दर्द का निवारण करती है । गोपनीय बाते बताई जाती है तथा भेट देकर लोगों को सावचेत किया जाता है ।

साधारण और नासमझ दिखने वाला आदिवासी भोपा देवता के 'भाव' के दौरान बडा असाधारण हो जाता है तथा अपूर्व बाते बताता है तो सभ्य समाज भी ठगासा रह जाता है ।

झाडफूंक :

झाडफूक तत्रमत्र और जादू टोना इनके जीवनचक्र का अंग है

बच्चों से लेकर बूढ़े तक की बहुत सारी बीमारियां तो झाडफूक से ही जाती रहती है । देवी देवता का भोपा इस कार्य में बडा पारंगत होता है । अन्य लोग भी इस काम में उस्ताद होते है । यह झाडफूक प्राय: घर का कचरा साफ करने के बुहारे, बुहारी से किया जाता है । झाडू से झाडा डालते समय झाडा डालने वाला कुछ मंत्र बोलता जाता है और मुह से फूक देने की क्रिया भी करता जाता है इसीलिए इसे झाड-फूक कहा गया है ।

यह फूक झाडा डालते समय झाडू, बुहारी पर या फिर रोगी पर डाली जाती है । झाडू के अलावा मयूरपख के झाडू से भी झाडा डाला जाता है । देवरे में देवता का झाडू मोरपखा होता है । अत: भोपा उसी से झाडा डालने का काम करता है । इसके अलावा नीम की छोटी-छोटी डालियों का भी झाडा डाला जाता है । ये डालिया पत्तेयुक्त होती है ।

एक आदिवासी ने मुझे शोभाबा का जिक्र किया जो तंत्रमंत्र और टोटको के बडे जानकार थे । कई तरह की दवाइया भी जानते थे । कई बीमार उनके पास पहुचते और वे झाडफूंक से इलाज कर देते ।

शोभाबा साप काटे को झाड़े से ठीक करते । बच्चो का फीयाकालजा ठीक करते । रगत्या का टोटका करते । इस टोटके में आठ माह के गर्भवास पर टोटका करते और बच्चा होने पर उसे जच्चा की आंवल के साथ गाड दिया जाता । इसमें सवा पाव शराब और नौ तरह का धान तथा कूकडे का छोटा बच्चा लगता है ।

सांप गोइरा का एलम बडा जबरा होता है । एक नाराणबा इनके साथ और थे । दोनों मिलकर यह साधते । बांबी से दूर बैठकर दूध का कटोरा रखते । मिट्टी के नौ नाग रखते । एक सौ आठ मणिया फेरते तो साप बांबी से निकल आता । वह पाच-छह बार जीभ से दूध चरपराता फिर बांबी में घुस जाता । तब नारेल की धूप दी जाती और उस साप को पुन बुलाया जाता ।

शुक्ल पक्ष की नागपंचमी पर कमर तक पानी में बैठ यह मंत्र साधा जाता है । सर्प को डील (शरीर) में बुलाने का भी मंत्र होता है । ऐसे मंत्र वाले को आजीवन तुरई भींडी आल आदि छोडनी पडती है । चौमासे में पगरखी (जूता) नही पहनी जाती है । रेड़ पडते समय भोजन छोडना पडता है । गृहस्थी से भी कुछ दिन अलग रहना पडता है ।

जिसे सांप ने काटा उसकी कथित लाश वृक्ष के बांध दी जाती है । पास में गोबर पीली लीपकर कुभकलश रख दिया जाता है । नीम के छोगे से एलम के साथ झाडा जाता है । झाड़े के साथ संवाद होता है । रोग मुक्त होने पर नौ नाथ बाबा (कनफटे जोगी) जीमाये जाते हैं ।

भैरूनाथ की साधना में लोंग की धूप दी जाती है । इत्थांतर कटोरियो पर शराब चढाई जाती है । त्रिशूल, लाल बिस्तर, लाल बखतरी तथा लाल लंगोट रखनी पडती है । इसमें सवा लाख मंत्रो का जाप होना है । भैरव साधने पर सबकुछ देता है । भैरव-गायत्री बोलते वक्त बडी शुद्धि रखनी पडती है । पेशाब करने पर भी नहाना पडता है । लाल भोजन, गेंहू की बाटी व गुड़ खाया जाता है । भैरव के पाव से लेकर सवा सेर तक गुलगले चढते है ।

मूठ के संबध में बताया कि हर दिन की मूठ है । पूरे बरस की 365 साधो तो भी कम है फिर जिसको चाहो ऊंचा नीचा करो ।

सांप का मंत्र .

सर्प उतारने वाले मत्रों की साधना भी करते हैं । यह साधना-सिद्धि चन्द्रग्रहण या फिर सूर्यग्रहण में श्मशान या फिर किसी मंदिर, देव स्थान में या फिर नदी-नालों के किनारे अथवा जल में बैठकर की जाती है । हर पूर्णिमा, अमावस्या तथा होली दीवाली की रात पर इस विद्या को दोहराया जाता है ।

आदिवासियो के मत्र में गुरु गोरखनाथ, हनुमान आदि की शपथ चलती है । साप का जहर उतारने का एक मत्र इस प्रकार है -

कारो हाप/गोरो हाप/रातो हांप उतरे तो उतारूं/नीं उतरे तो मारूं/करू गुरु गोरखनाथनी दुवाई लगाडू/ मारूं मंतर/धरती माता जाप करूं/साद हूरज ने धोक लगाडू/

अर्थात् काला साप, गोरा सांप, लाल सांप का जहर उतरे तो उतारूं । नहीं उतरे तो सांप को मारूं । गुरु गोरखनाथ की दुहाई करूं । मंत्र चलाऊं । धरतीमाता का जाप करूं । चांद सूरज को नमन करू ।

आदिवासियों में यह विद्या इस कदर प्रभावी देखी गई कि दूर से आते हुए सांप को मंत्रकर, उस पर ककड फैंककर स्थिर कर दिया जाता है । कई बार सर्प को शरीर में बुलाकर भी उससे सवाल-जवाब कर भग जाने को कहा जाता है । ऐसा भी सुना गया कि आस्तीक रूसी (ऋषि) का नाम ले कर, तीन बार ताली देकर भी सर्प को भगा दिया जाता है । पुराणों में इसका संकेत मिलता है । यथा -

आस्तीक्यं वचनं स्मृत्वां यः सर्पो न निवर्तते
शतया मिद्यते तस्य शीर्शं वृक्षं फलतया ।

कई वनस्पतियों में भी यह सामर्थ्य है कि उनके रहते साप उधर फटक ही नहीं सकता को ऐसी वनस्पतियों और जडी बूटियों का भी पूरा ज्ञान रहता है

भूत पावरा नामक ऐसा ही पौधा होता है जिसे ये अपने घरों में भी लगाते है ताकि वे इस भय से मुक्त रह सकें ।

सर्पदंश को लेकर भी आदिवासियों मे कई मान्यताएँ तथा उपचार प्रक्रियाएँ है । आमतौर पर जब भी किसी को सांप डस लेता है तो उसे पूरबज या बावजी के स्थान पर ले जाया जाता है । उदयपुर के वीरपुरा गाव में ताखाजी बावजी की प्रसिद्ध धाम है । यह गातोड नाम से भी विख्यात है । हर गांव मे इनके स्थानक मिल जाते है । कहीं-कहीं देवनारायण के स्थानक भी मिलते है ।

यहां भोपा को भाव आता है । वह साप के काटने का कारण तथा उपाय बताता है । कई देवरों में विष चूसा जाता है जबकि कहीं-कही अभिमंत्रित पानी छांट कर पीडित को विष रहित किया जाता है । आदिवासियों में सर्प साधना, नौकुली के सांप की साधना, नागराज की सिद्धि आदि विधिया है । अब ये विधिया लुप्त होती जा रही है । दरोली पचायत के भवरासिया गाव स्थित देवरे के नाम की जेवड़ी बाधनें पर कुत्ता काटने या अन्य जानवर के डसने पर उसका विष प्रभावी नहीं रह पाता है । यहां प्रति रविवार को चौकी लगती है जिसमें लोगो का आना जाना निरन्तर बना रहता है ।

आदिवासी भील-मीणो में आत्मा की अमरता को लेकर कई मान्यताए हैं । शास्त्र सम्मत बात के अनुसार भील भी यह मानते हैं कि स्थूल देह के नहीं रहने पर भी आत्मा का अस्तित्व रहता है । देह से निकलकर वह सृष्टिमय हो जाती है । मुक्त वायु की तरह वह कहीं भी आ-जा सकती है तथा शक्तिशाली हो जाती है । देह त्यागोपरात वह अधिक शक्तिवान हो जाती है तथा अकल्पनीय कृत्य करने का सामर्थ्य रखती है । आत्मा के प्रेतगति में जाने तथा पुनर्जन्म की भी आदिवासियों में मान्यता है ।

उदयपुर जिले के झाडोल, कोटडा, फलासिया, सराड़ा तथा खैरवाडा क्षेत्र के आदिवासियों का यह दृढ विश्वास है कि परिवार का हर सदस्य मरने के बाद पितर गति को प्राप्त होता है । इस पितर की स्मृति में स्थान तथा पुतली बनाकर उसकी पूजा भी की जाती है । ये पितर परिवार के हितैषी होते हैं । अन्न, धन तथा परिवार की सुख-समृद्धि के लिए पितर सदैव तत्पर रहते है । अनिष्ट की आशका का प्रयास भी करते हैं तथा पूर्व में चेतावनी देकर परिजनों को सावचेत कर देते है ।

इनमें पितर की मानता करने की पूरी विधि है । इसके अनुसार परिवार में यदि किसी सदस्य की मृत्यु हो जाये और वह प्रेतगति को प्राप्त हो तो विभिन्न तरीकों से अपना परिचय देता है । इसमें सपने में आकर कहना तथा परिजनों को विविध तरीकों से परेशान करना मुख्य है घर में विभिन्न बीमारिया होना पशुओं का दूध नहीं निकालने देना दूध

का अकारण फट जाना, विवाहित कार्य पूर्ण नहीं होना आदि [illegible] होते हैं तो परिजन भोपियाजी या अन्य किसी देवरे में, [illegible] ।

बोलसापारी :

भोपा द्वारा बताए जाने पर कि यह पूरवज का दोष है, [illegible] अगले दिनों में घर की गाड़ी ठीक चली तो आपकी प्रतिष्ठा करेंगे । बाद में पुनः भोपा से पूछकर मूर्ति लाई जाती है । यह मूर्ति बैठी हुई, खड़ी, घुड़सवार, अश्वारोही आदि प्रकार की होती है । पुरुष पूरवज की प्रतिमा श्वेत वस्त्र में लपेट कर तथा मातलोक (स्त्री पूरवज) की मूर्ति लाल वस्त्र में लपेटकर लाई जाती है । पूरवज के कथनानुसार उसकी प्रतिष्ठा घर-आंगन, खेत, बाड़े अथवा देवताओं के सामने कर दी जाती है । स्थापना का कार्य वैसाख अथवा कार्तिक मास की पूर्णिमा के अवसर पर किया जाता है ।

पूर्वज-प्रतिष्ठा :

पूरवज की स्थापना से पूर्व रातिजुगा दिया जाता है । रातिजुगा के अवसर पर महिलाए पारम्परिक गीत गाती है जिनमें पूरवजों की महिमा व कार्यों का वर्णन होता है । यथा -

पूरवज आया म्हांरी अलियां जी गलियां
फूल बिखेर्‌यां चंपा कलियां ओ राज
पूरवज भलां पधारिया .....।

इन गीतों के चलते, ढोल के ढमके पर पूरवज अपने गोडले के शरीर में प्रवेश करते है तथा अपनी उपस्थिति देकर मनवांछित वस्तु मांगते हैं । उल्लेखनीय है कि इस अवसर पर प्रेतात्मा वही वस्तु मांगती है, जो उसे देहकाल में विशेष प्रिय रही हो जैसे बीड़ी, पान, इत्र, अफीम, भग, चाय, दूध आदि । पूजा के अवसर पर पांच प्रकार की मिठाई, छुवारे, इत्र, भुने हुए चने, सेव पपड़ी, अफीम, नारियल, कांच-कंगा-तीर कमान गौरेया (वाद्य यंत्र) आदि सामान चौकी पर तैयार रखा जाता है । भोग के लिए अलग से चूरमा, चावल, अगरबत्ती, कच्चा दूध, मक्के की फूली, रोटी, आटा, शराब, कन्दोरा आदि भी रखे जाते हैं । मातलोक की पूजा में मेंहदी, लच्छा, काजल, फूंदी, सुरमा, कुमकुम आदि वस्तुएं रखी जाती हैं ।

पूरवज की प्रतिष्ठा के अवसर पर सवा मण का चूरमा बनाया जाता है तथा बकरे की बलि भी दी जाती है । प्रतिष्ठा के पश्चात हर वर्ष वैसाख या कार्तिक मास की पूर्णिमा पर उसके नाम का रातिजुगा दिया जाता है । इस अवसर पर गोडले को भाव होता है । परिवार वाले अपना दु:ख दर्द रखते हैं तथा पूरवज उसका समाधान बताते हैं ।

पुनर्जन्म की

आदिवासियों में आत्मा के पुनर्जन्म की भी अवधारणा मिलती है। कहते है, भगवान आत्मा को सुख दुःख के आधार पर अच्छी बुरी योनियों में जन्म देते है। कई आत्माओं को कल्याण के लिए बार-बार मनुष्य बनाते है तो कई आत्माओ को बारम्बार गर्भवास की पीड़ा भोगने की व्यवस्था करते है।

लासण :

आदिवासी महिलाएं जिन बच्चों की अकाल मृत्यु हो जाती उनके शरीर के किसी हिस्से पर काजल अथवा कुमकुम से चिन्ह कर देती हैं। मान्यता है कि वह चिन्ह उनके अगले जन्म में भी उसी स्थान पर मिलेगा। इसे लासण कहा जाता है। उदयपुर जिले के कई गांवो में आदिवासियों में 'लासण' की मान्यता मिली। कई जगह लासण देखे भी।

छांणी उदरी गाव में पूना भील ने वहीं के एक आदिवासी के पुनः जी उठने की दास्तान सुनाई। उसने बताया कि मृत्यु के बाद उसे यमराज के दरबार में ले जाया गया। वहां एक व्यक्ति वही देख-देखकर आने वाले के कर्मों का बखान कर रहा था।

उस व्यक्ति द्वारा काफी ढूंढने के बाद भी जब उदरी वाले मृतक का पता नहीं चला तो आदेश हुआ कि इसे पुनः मृत्युलोक में भेजा जाए। तब उसे एक खिडकी से तुरन्त नीचे गिराया। इधर श्मशान में उसका मृत देह जी उठा।

आदिवासियो में कई तरह के विश्वास, शकुन-विचार आदि भी प्रचलित है। तन्त्रोक्त टोना-टोटका, झाड़-फूक, गण्डा-ताबीज, वारा-फेरा-उतारा आदि तरीकों से इनमें बीमारियों और अन्य व्याधियों का इलाज करने की रीतियां चली आ रही है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नही कि समूचा आदिवासी समुदाय जादू-टोनों के आंक में जीता है।

टोना-टोटका :

टोना-टोटका सीखना हर आदिवासी के लिए अनिवार्य माना जाता है तथा ऐसा शायद ही कोई घर होगा जिसमें कोई टोना-टोटका नहीं जानता हो। कोटडा तहसील के आदिवासी पुरुष तथा महिलाएं कुछ वर्षों पूर्व तक अपनी पहली सन्तान की बलि तक चढा देते थे। आदिवासियों में काला जादू की मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, विद्वेषण, सम्मोहन आदि की कई क्रियाए प्रचलित हैं।

फंद-फांदो की भी इनमें मान्यता है। इसका अर्थ है किसी आत्मा का किसी स्त्री अथवा पुरुष के लग जाना। महिलाओं को डायन तथा चुड़ैल के फंद लगते है जबकि

पुरुष को भूत [illegible] आते हैं । [illegible] आत्मा [illegible] महिला के शरीर में उपस्थित होती है, [illegible] और विचित्र हरकतें होती हैं । [illegible] आत्माएं सुगरी (अच्छी) तथा नुगरी (दुष्ट) दो तरह की होती है ।

फंदफांदे .

आदिवासी इन फंद-फांदों का निवारण दो तरीकों से करते हैं । पहला उस आत्मा की मुराद पूरी करके तथा दूसरा उसके साथ मारपीट करके ताकि वह भाग कर छूमंतर हो जाए । फंद-फांदा लगने पर रोगी को भोपा अथवा किसी जानकार के पास ले जाया जाता है जहां आत्मा उसके शरीर में उपस्थित होकर अपनी इच्छा बताती है तथा इच्छापूर्ति कर दिए जाने पर वह अपनी राह लेती है ।

नुगरी सुगरी आत्माएं :

नुगरी आत्माएं न तो सामान्यतः उपस्थित होती है न ही अपनी इच्छा बताती है ; इस स्थिति में आदिवासी झाड़ा डालते हैं । लोबान या धूप के कलेजे की धूप देते हुए उसका आह्वान करते हैं । डाकनियें प्रायः साड़ी, लहंगा या कली, काजली और प्रसाधन की सामग्री किसी निश्चित स्थान - तिराहे, चौराहे या घर पर रख कर भाग जाती है जबकि प्रेतात्माओं के लिए मुर्गी, तम्बाकू, पान, शराब, मिठाई आदि रखी जाती है । विकराल आत्माओं के लिए ओझा या भोपा मंत्रों व शक्तियों का भी सहारा लेता है ।

वीर तथा सिकोतरा :

उदयपुर जिले का मेवल क्षेत्र वीरों तथा सिकोतरों के लिए प्रसिद्ध रहा है । ये ऐसे तांत्रिक-पिशाच होते हैं जो उड़द अथवा नींबू में रहते है । इन अभिमंत्रित उड़द अथवा नींबू को जिसके घर में रख दिया जाता है वहां नाना प्रकार के उपद्रव खड़े हो जाते हैं । पई गाव के एक आदिवासी ने बताया कि यह विद्या बहुत पुरानी है । कहते है शंकर भगवान के शरीर का मेल जब उतारा तो वह वीर बन गया । उसने कई वीरों को जन्म दिया जिन्हें आदिवासियों ने सिद्ध कर अपने अधिकार में कर लिए । वीर समूह में रहते हैं । एक उड़द में एक से अधिक वीर भी रह सकते हैं ।

पुतला सिकोतरा :

वीर का एक रूप पुतला होता है । यह प्रायः आटे का ही बना होता है । यह किसी परिवार में लडाई झगडा कराने, बेचैनी देने, अशांति फैलाने और परेशानी पैदा करने की दृष्टि से किया जाता है इसका असर समय विशेष के लिए होता है

[illegible] करनी होती है, उसके आसपास [illegible] खुदवाया जाता है जहा किसी की [illegible] रहता है तब तक पूरा परिवार दुःखी ही [illegible] है । किसी की किसी मे रूचि नहीं होती है [illegible] आती है । अच्छा सोचते एवं अच्छा करते हुए भी [illegible] भी पराया लगता है । होम करते हाथ जलने वाली [illegible] आ जाती है ।

कई बार घर [illegible] आती है कि कर्ज ही कर्ज चढ़ जाता है । बीमारी ही बीमारी [illegible] जो पूंजी संचित की हुई होती है उससे भी हाथ धोना पड़ता है । [illegible] तक से विमुख होने की स्थिति आ जाती है ।

डाकिन सिकोतरी

[illegible] बिना कुकर्म किये नहीं सधते । डाकन के पाच वीर होते हैं [illegible] हैं । वह जिसे डाकन बनाना चाहती है उसे [illegible] का भक्षण कर चुकी होती है वह सिकोतरी बन जाती है । लालबाई, फूलबाई सिकोतरी ही है । इनके जो लाल चूड़ी चढी रहती है वह सिकोतरी की ही प्रतीक है ।

भीलवाड़ा के पुर [illegible] खेमाखेड़ा गांवो में सिकोतरी स्थल है । सिकोतरी के भाव पुरुष में ही आते हैं, स्त्री में नहीं । सिकोतरी स्वयं ओतरती नहीं, अन्यों को ओतराती है ।

यह [illegible] हंसती हुई आती है । इसे सिद्ध करने के लिए या तो श्मशान या फिर हनुमानजी का स्थान ही उपयुक्त रहता है । लालबाई के लाल और फूलबाई के सफेद कपड़ा [illegible] है । कुंआरिया चंदेरिया और वामणिया में इनके थानक है ।

सिकोतरी अपनी सभी सहेलियों के साथ भी बडा भ्रमण करती है । पुराना किस्सा है उदयपुर में किन्हीं बारहठजी को सिकोतरी लग गई । वह प्रति रात उनके पास आकर सोती और उन्हें परेशान करती । इससे बारहठजी को चैन नहीं मिलती । जगह-जगह उन्होंने पूछताछ और इलाज करवाया पर सब व्यर्थ रहा । एक दिन चारभुजाजी का एक पंडा आया । उसने कुछ टोटका किया । जिस कमरे में रात को सिकोतरी प्रवेश करती थी, उसके बाहर जाल्या बांध दिया तब से सिकोतरी का भीतर प्रवेश रुक गया पर वह और उसके साथ वाली बाहर ही जोर-जोर से रोती रही

पुरुषों को भूत-प्रेत लग जाते हैं । इस दौरान जब कोई आत्मा आदिवासी पुरुष या महिला के शरीर में उपस्थित होती है, भाव [illegible] आते हैं । [illegible] है और विचित्र हरकतें होती है । [illegible] सुगरी (अच्छी) तथा नुगरी (दुष्ट) दो तरह की होती है ।

फदफांदे :

आदिवासी इन फंद-फांदों का निवारण दो तरीकों से करते हैं । पहला उस आत्मा की मुराद पूरी करके तथा दूसरा उसके साथ मारपीट करके ताकि वह घबरा कर छूमतर हो जाए । फंद-फांदा लगने पर रोगी को भोपा अथवा किसी जानकार के पास ले जाया जाता है जहा आत्मा उसके शरीर में उपस्थित होकर अपनी इच्छा बताती है तथा इच्छापूर्ति कर दिए जाने पर वह अपनी राह लेती है ।

नुगरी सुगरी आत्माएं :

नुगरी आत्माएं न तो सामान्यत: उपस्थित होती है न ही अपनी इच्छा बताती है । इस स्थिति मे आदिवासी झाड़ा डालते हैं । लोबान या मगर के कण्डों की धूप देते हुए उसका आह्वान करते हैं । डाकनिये प्राय: साड़ी-लहंगा या कुर्ती कांचली और श्रृंगार की सामग्री किसी निश्चित स्थान - तिराहे, चौराहे या घर पर रखवाकर भाग जाती है जबकि प्रेतात्माओं के लिए गूगरी, तम्बाकू, पान, शराब, मिठाई आदि रखी जाती है । विकराल आत्माओं के लिए ओझा या भोपा मंत्रों व शक्तियों का भी सहारा लेता है ।

वीर तथा सिकोतरा :

उदयपुर जिले का मेवल क्षेत्र वीरों तथा सिकोतरों के लिए प्रसिद्ध रहा है । ये ऐसे तांत्रिक-पिशाच होते हैं जो उडद अथवा नींबू में रहते है । इन अभिमंत्रित उडद अथवा नींबू को जिसके घर में रख दिया जाता है वहां नाना प्रकार के उपद्रव खड़े हो जाते हैं । पई गाव के एक आदिवासी ने बताया कि यह विद्या बहुत पुरानी है । कहते हैं शंकर भगवान के शरीर का मेल जब उतारा तो वह वीर बन गया । उसने कई वीरों को जन्म दिया जिन्हें आदिवासियो ने सिद्ध कर अपने अधिकार में कर लिए । वीर समूह में रहते हैं । एक उड़द में एक से अधिक वीर भी रह सकते हैं ।

पुतला सिकोतरा :

वीर का एक रूप पुतला होता है । यह प्राय: आटे का ही बना होता है । यह किसी परिवार में लड़ाई झगडा कराने, बेचैनी देने, अशांति फैलाने ओर परेशानी पैदा करने की दृष्टि से किया जाता है इसका असर समय विशेष के लिए होता है

ऐसी स्थिति में जिस घर-परिवार मे परेशानी पैदा करनी होती है, उसके आसपास या अहाते में यह पुतला ऐसी जगह छिपवाया अथवा रखवाया जाता है जहा किसी की निगाह नहीं पहुंच पाती है । जब तक पुतला वहां रहता है तब तक पूरा परिवार दुःखी ही रहता है । उसके सभी सदस्य चिडचिड़ापन लिये रहते है । किसी की किसी में रूचि नहीं होती है । काम कमाई धंधा सब चौपट पाये जाते हैं । अच्छा सोचते एव अच्छा करते हुए भी उसका परिणाम उलटा निकलता है । अपना भी पराया लगता है । होम करते हाथ जलने वाली स्थिति हो जाती है ।

कई बार यह परेशानी इतनी बढ जाती है कि कर्ज ही कर्ज चढ जाता है । बीमारी ही बीमारी फैल जाती है । गांठ की जो पूंजी सचित की हुई होती है उससे भी हाथ धोना पडता है । खेतकूड़े, धनदौलत और जायदाद तक से विमुख होने की स्थिति आ जाती है ।

डाकिन सिकोतरी .

वीर और सिकोतरा सिकोतरी बिना कुकर्म किये नहीं सधते । डाकन के पांच वीर होते है जो बहुत ही छिपा कर रखे रहते हैं । वह जिसे डाकन बनाना चाहती है उसे स्थानातरित कर देनी है । जो डाकन एक सौ का भक्षण कर चुकी होती है वह सिकोतरी बन जाती है । लालबाई, फूलबाई सिकोतरी ही है । इनके जो लाल चूड़ी चढी रहती है वह सिकोतरी की ही प्रतीक है ।

भीलवाडा के पुर माडल व खेताखेडा गांवो में सिकोतरी स्थल है । सिकोतरी के भाप पुरुष में ही आते हैं, स्त्री में नहीं । सिकोतरी स्वय ओतरनी नही, अन्यों को ओतराती है ।

यह रोती हुई या फिर हंसती हुई आती है । इसे सिद्ध करने के लिए या तो श्मशान या फिर हनुमानजी का स्थान ही उपयुक्त रहता है । लालबाई के लाल और फूलबाई के सफेद कपडा फूंदी चढती है । कुंवारिया चंदेरिया और वामणिाया में इनके थानक है ।

सिकोतरी अपनी सखी सहेलियों के साथ भी बडा भ्रमण करती है । पुराना किस्सा है उदयपुर में किन्हीं बारहठजी को सिकोतरी लग गई । वह प्रति रात उनके पास आकर सोती और उन्हें परेशान करती । इससे बारहठजी को चैन नहीं मिलती । जगह-जगह उन्होंने पूछताछ और इलाज करवाया पर सब व्यर्थ रहा । एक दिन चारभुजाजी का एक पंडा आया । उसने कुछ टोटका किया । जिस कमरे में रात को सिकोतरी प्रवेश करती थी. उसके बाहर जाड्या बाध दिया तब से सिकोतरी का भीतर प्रवेश रुक गया पर वह और उसके साथ वाली बाहर ही जोर जोर से रोती रही

एक रात यह गैना दरबार ने महलों में मूठ । [illegible] में [illegible] और परेशानी का पता लगा । तब दरबार ने [illegible] किसी [illegible] से [illegible] करने का आदेश दिया । कहते हैं, किसी के कहने से [illegible] सिकोतरी का प्रभाव मिटा । सिकोतरा अलग होता है जो [illegible] चीज होता है ।

आदिवासियों में मारण क्रियाओं में मूठ और कामण का [illegible] है । तत्काल मारण के लिए मूठ और धीरे-धीरे मारने के लिए कामण विधि का प्रयोग होता है । मूठ में मंत्रित उडद और काम्मण में पुतले बनाए जाते हैं । मूठ का मंत्र इस तरह चलता है -

आकाश लोक की दरोवली पाताल लोक का बाण

मूठ वाऊं मसाण की जो निकल जाए प्राण

नरसिंह वीर नाड़ा तोड़े तो भीम कालजा खाय ।

कामण पुतला :

कामण क्रियाओं में पुतले छोड़ने की कला का प्रभाव शनै: शनै: होता है । इसमें शरीर धीरे-धीरे गलने लगता है और जहां जहा पुतले को घात दिया जाता है वहां-वहां मनुष्य को असह्य पीडा होती है और वह बेचैन बना रहता है ।

यह पुतला पूरा मनुष्य का ही प्रतिरूप होता है । मनुष्य के ही आकार एवं शक्ल सूरत मे इसके दोनों हाथ पांव तथा सिर आदि होते हैं । यह पुतला अधिकतर मोम (काला मोम) का बनाया जाता है । जिस व्यक्ति को दर्द देना होता है, उसके नाम-ठाम के साथ उसकी मां के नाम की साधना करनी पडती है । यह साधना चालीस दिन की होती है । साधना का समय रात का रहता है । तांत्रिक इसकी साधना करता हुआ प्रति रात्रि उसके अंगों पर एक-एक तीर छोड़ता रहता है यह तीर बरू का होता है । तीर की जगह लोहे की आलपिन भी काम में ली जाती है ।

साधना पूरी होने पर इस पुतले को किसी ऐसी जगह छिपा दिया जाता है जहां प्राय. आम लोगो का आना जाना नहीं रहता हो । ऐसे स्थानों में गाव के पास तालाब, नदी, नाला या पोखर भी हो सकता है या फिर वृक्ष के नीचे की जमीन होती है । नदी नाले में जहा उथला पानी हो वहा यह पुतला छिपाकर किसी बड़े पत्थर से बांध दिया जाता है ताकि वह किसी जानवर के हाथ न पड़ सके ।

वृक्ष के नीचे गाडने की स्थिति में कोई बबूल वृक्ष चुना जाता है । श्मशान और कब्रिस्तान में भी यह क्रिया सम्पन्न की जाती है मोम के अलावा कपड़े और आटे का

पुतला भी चलता है । आटे का तो बहुत जल्दी गल जाता है । कपडे का पुतला आटे से अधिक उम्र लिये होता है । मोम का पतुला बहुत धीरे-धीरे गलता है । नमक व मिट्टी के पुतलों का भी यत्र-तत्र प्रभाव मिलता है ।

ज्यों-ज्यों पुतला गलता जाता है, उसी रफ्तार से संबंधित व्यक्ति को दर्द सताने लगता है और वह भी शरीर से गलने लगता है । इस पुतले में जोडों के स्थान पर जहां-जहां तीर पिन लगी होती है वहां-वहां उस पुरुष को भी तीर की तरह ही बुरी तरह रोग सालता है । वह कराहता रहता है और उसका जीना दूभर हो जाता है ।

ऐसी बीमारी का अस्पतालों में कहीं कोई निदान नहीं होता है । समझे बूझे लोग इसका पता लगाकर, जहां पुतला गाड़ रखा होता है वहा से निकाल लाते है तब ही रोगी की बीमारी का शमन होता है ।

कलवा :

कलवा भी एक ऐसी ही हवा होती है जो तान्त्रिक को ही नजर आती है । इसकी साधना मरे हुए बच्चे पर की जाती है । यह बच्चा नौ माह से अधिक उम्र लिये नहीं होता है । जिस दिन उसकी मृत्यु हो जाती है उसी दिन उसके गाडे हुए स्थान पर जाकर इसको नूता जाता है ।

नूतते समय यह कहा जाता है कि आज से मै तुझे दावत दे रहा हू । इस दावत में तुझे शराब और मिठाई खिलाऊंगा । दावत देने की यह साधना चालीस दिन की है जिसे प्रतिदिन रात्रि को साधनी पडती है । तान्त्रिक इसे साधने के लिए अपने साथ मिठाई और शराब की बोतल ले जाता है । मिठाई में सफेद मावा चलता है । यह साधना अर्ध रात्रि को बारह से दो बजे के बीच की जाती है ।

इसके लिए बच्चे के गाडे हुए स्थान के चारों ओर कार लगाई जाती है और उसके पास तान्त्रिक बैठ जाता है । इसकी बैठक के चारों ओर भी कार लगाई जाती है ताकि न तो गाडे हुए बच्चे को कोई अन्य शक्तियां ले जा सके और न तांत्रिक पर ही कोई आघात कर सके । साधना से पूर्व तांत्रिक बच्चे के ऊपर की सारी मिट्टी अलग करता है और तब उसके मुंह में शराब की धार देकर मिठाई रखता है और मंत्रों का जाप करता है । जाप करने के पश्चात् फिर उसे मिट्टी से पूर्ववत ढक देता है ।

बीस-तीस दिन बाद जब साधना पकाई पर होती है तब श्मशान में तरह-तरह की आवाजें आनी शुरु होती है । नाच के ठुमके सुनाई पडते हैं और डरावना वातावरण छाया रहता है । ऐसे समय तान्त्रिक यदि जरा भी डरपोक बन गया और हिम्मत हार बैठा तो

अनिष्टकारी शक्तियां उसे आ दबोचती हैं और बाजवक्त वह अपने प्राणों से भी हाथ धो बैठता है ।

कलवा साधने पर वह हर समय अपने मालिक (तांत्रिक) के हुकमदारी हजूरी मे रहता है । उनकी हाजरी मे रहते-रहते वह उसकी हर आज्ञा को, विनम्र चाकर की तरह शिरोधार्य करता है और उसकी सर्वप्रकारेण चाह की पूर्ति करता है । इस कलवे से प्रायः अनिष्टकारी कार्य ही अधिक कराये जाते हैं ।

कभी-कभी मालिक की सेवा करते-करते कलेवा परेशान हो जाता है और मालिक भी उसे ठीक से खाने-पीने को नहीं देता है तब वह अपने मालिक पर भी आघात कर बैठता है । कलवा साधने वाला तांत्रिक गृहस्थ होते हुए भी गृहस्थ नहीं होता । ऐसे साधको की गृहस्थी धीरे-धीरे चोपट होती रहती है और अन्त में कइयों का मरण करने के बाद उसकी भी दुर्गत हुई ही देखी जाती है । ऐसा भी सुना गया जब किसी कलवे ने ही अपने मालिक को पछाड़ देते हुए उसका कलेजा ही निकाल दिया ।

माल्या :

बच्चों में ही एक माल्या और होता है । जब किसी बच्चे की मृत्यु हो जाती है और वह प्रेत योनि पकड लेता है तो माल्या कहलाता है । इसका कहीं मन्दिर या देवरा नहीं होता । यह बच्चे बच्चियों को ही लगता है । जिन्हें लगता है उन्हें उल्टियां होने लगती हैं । दस्ते लगनी शुरु होती है और जी मचलाने लगता है । तब मंत्र द्वारा सात मुट्ठी अनाज माल्या लगे बच्चे पर फिराकर चारों दिशाओ में फैंकने से इसकी हवा जाती रहती है ।

आदिवासियो की इन रहस्यमयी तंत्र साधनाओं के लिए पूरी पढ़ाई करनी पडती है । इसके लिए भोपा वर्ष पर्यत इच्छुक को अपनी कलाएं सीखाता है । नवसीखिया नवरात्रि से लेकर कार्तिक पूर्णिमा की अवधि में सीखी हुई कलाओं का तिराहा, चौराहा, रास्ता, घाटा, पहाड की चोटी, बरगद के पेड के नीचे, श्मशान में तथा हनुमानजी के स्थान पर दोहरान करता है ।

रियारा-सियारी :

आदिवासियों में सियारा तथा सिंयारी जैसी आत्माओं की भी मान्यता है । कहते है सिंयारी कोई भूखी आत्मा होती है जो घी खा जाती है । इसलिए आदिवासी जब घी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जब भी ले जाते हैं तब उसमें तिनका डालते हैं । इससे सियारी का प्रकोप नही हो पाता है । सिंयारा विद्या जानने के बाद साधक दूसरे के घरपेटे की गुप्त बाज भी जान सकता है

तान्त्रिक महिलाएं :

तान्त्रिक विद्या में पुरुष ही निष्णात नहीं होते, महिलाओं की भूमिका भी कम प्रभावी नहीं होती । सौलह विद्याओं में इस विद्या का प्रचलन बहुत ही प्राचीनकाल से होता आ रहा है । पुरुषों में इसकी साधना हित और अहित दोनों रूपों मे रही है जबकि स्त्रियों में इसकी साधना अनिष्टकारी ही रही है । इसका कारण यह माना जाता है कि महिलाए प्राय: ईर्ष्यालु और वैमनस्य पालने वाली होती है । दूसरों के उत्कर्ष, अच्छेपन और विकासमान के प्रति उनकी प्रवृत्ति जलन लिये होती है और प्रकृति से भी उनकी मनोवृत्ति बडी संकुचित होती है इसलिए अच्छा सोचना, अच्छा करना, अच्छा कहना और अच्छा सहना उनके वश का नहीं होता ।

तांत्रिक महिलाएं अधिक नही होती । इनके लिए गांव का वातावरण ही अधिक ठीक रहता है इसलिए गांवों में प्राय: हर गांव मे इनका प्रभाव देखने को मिलेगा । ऐसी महिलाएं चुपचाप नितांत गोपनीय रूप में अपनी साधना करती है और गुप्त रूप में ही प्रयोग करती है । ऐसे प्रयोग तीन रूप लिये होते हैं - डायन, मैली व स्यारी । इनका प्रभाव महिलाओं पर ही पड़ सकता है । इनमें सर्वाधिक शक्तिशाली डायन होती है । उससे उतार में मैली । स्यारी सबसे कम शक्तिदायक होती है । ऐसा ही इनका कार्यक्षेत्र भी होता है ।

गावो में कई बार यह सुना जाता है कि किसी की हंडिया से दूध गायब हो गया या कि दही कोई चुरा ले गया । कभी छाछ फेरते रहने पर भी उसमें मक्खन नहीं आ पाता है । ऐसी घटनायें निश्चय ही संबधित व्यक्ति को परेशानी में डालती है । वह सोचता ही रहता है कि सारी चीजे पूर्ण देखभाल में रहती हुई भी कैसे जादू की तरह हवा हो जाती हैं जबकि इन्हें चुराने वाला कोई कभी देखा भी नहीं जाता है और कभी घर भी सूना नहीं छोडा जाता है । ऐसी स्थिति में यह बात एक कान से दूसरे कान चलती रहती है । कभी-कभी कोई समझा बुझा व्यक्ति मिल जाता है । नहीं मिलने पर देव-देवरे इसकी पूछना कर पता लगाया जाता है ।

स्यारी :

यह स्यारी का कार्य होता है । स्यारी साधने वाली महिला जहां भी इस तरह दूध दही बिलोवना देखती है, तत्काल अपने घर आकर वही काम करने लग जाती है और तब उस क्रिया के साथ अपनी तंत्र विद्या का प्रयोग कर वह सारी चीज, दूध दही मक्खन आदि अपनी हंडिया में मगवा लेती है ।

तान्त्रिक महिला ऐसी खाद्य सामग्री अपनी ही काम में लेती है । उसे बेचती नही

है । बेचने की स्थिति मे उसकी यह विद्या अकारथ हो जाती है । तब फिर नहीं साधी जा सकती । इनके इस कार्य से पीछा छुड़ाने के लिए महिलाए बड़ी होशियारी और चालाकी से काम करती हैं । ऐसी स्थिति में जब स्यारी मक्खन चुराती है तो उस हाँडया में मक्खन की बजाय गोबर रख दिया जाता है जिससे तान्त्रिक महिला की हाँडया में गोबर चला जाता है । इससे उसके स्वय का दूध-मक्खन खराब हो जाता है तब उसे समझने में कोई देर नही लगती कि उसकी यह चोरी पकड़ ली गई है और अब पोल खुल जानी है । ऐसी स्थिति में वह अपनी यह विद्या समेट लेती है ।

ऐसे ही गाय-भैस का दूध निकालते समय घरधनी या तो सम्बन्धित पशु का थन पकडे बैठा रहता है या फिर उस समय से पूर्व या फिर पश्चात् दूध निकालता है ताकि स्यारी के दूध निकालने का समय टल जाये जिससे वह उनका दूध न चुरा सके । गर्म दूध पर इसका वश नहीं चलता है ।

मैली :

स्यारी से अधिक जानकार और असरकार मैली होती है । इसमें बस निकाले हुए दूध को फटा देने की क्षमता होती है । यह बारह वर्ष तक के बच्चों की आंखें खराब कर देती हैं । पुरुषों पर इसका भी कोई प्रभाव नहीं चलता पर कोई-कोई जब अधिक विद्या साध लेती है तो उसकी आखों में दर्द और रोशनी कम कर सकती है । ऐसी ही एक घटना मेरे गाव के पास के गामड़े में घटी । यह गामडा मेरे पिता-दादा के लेन्देन का था । वही मेरे बहनोईजी की भी दुकान करवाई गई थी । एक दिन मन्दिर के चोरे के वहा कुछ लोगो के साथ वे बैठे हुए बतिया रहे थे कि अचानक उनकी आंखों की रोशनी कम हो गई । इस बात का हाका सारे गांव में फूट गया । सभी उनके प्रति सहानूभुति व्यक्त करने उमड पडे । हम लोगों की परेशानी इतनी बढ़ गई कि कोई अनुमान नहीं लगा सकता ।

गांवो में जहा भी ऐसी खोटी चालें होती हैं, वहां लोगों को सब पता तो रहता ही है कि यह करामात किसकी हो सकती है । दुकान के पास ही एक बुढिया रहती थी जिसे सब लोग बाबीमा कहते थे कारण कि वह जात से बैरागी-साधु-बाबा थी । लोगों ने उसी पर शक किया और बहनोईजी को पूछा कि कहीं उससे तो साका नहीं पड गया तब उन्होंने एक घटना का उल्लेख किया कि कोई तीन-चार दिन पहले वह नमक लेने आई थी । मेरे पास नमक था नहीं सो देने से मना कर दिया ।

मोतबिर लोगों को समझने मे देर नही लगी कि यह उसी मेलड़ी का रखा हुआ दु:ख है । तय हुआ कि बाबीमा जब घर पर हो तब उसके हाथों में एक लूगड़ा जाकर दे आवें लूगड़ा तो दुकान में बेचने के लिए था ही उसे लेकर वे बाबीमा को दे आये

झूठा देने से उनकी आयु ठीक हो गई । बाद में लोगों ने बहनोईजी को कहा कि ऐसी औरतों से मनोरंजन नहीं करना चाहिए और जब भी ये किसी चीज की मागना करे, अपने पास नहीं हो तो भी उपलब्ध कर दे देनी चाहिए ।

कहा जाता है कि इनको झूठा खिला देने से मैली की यह विद्या, तंत्र साधना जाती रहती है परन्तु यह कार्य कोई हिम्मतवर साहसी ही कर सकता है । प्राय लोग ऐसी महिलाओं से दूर ही रहना पसन्द करते हैं और चाहते हैं कि उसकी छाया भी न देख सके । फिर किसी बिरले ने यह साहस कर भी दिया तो वह महिला भी इतनी भोली नही होती । कि इधर किसी ने उसे खाना को दे दिया और उधर उसने उसे चट कर लिया । लोगो मे अपने अनिष्ट होने का भय इस कदर व्याप्त रहता है कि कोई उसका नाम लेना भी नहीं चाहता । पूरा गांव ऐसी महिला से आतंकित रहता है । एक बार किसी मैली की विद्या झूठना दी जाती है तब फिर वह और उसकी साधना करने में असमर्थ रहती है ।

डायन :

डायन अथवा डाकन तो सर्वाधिक बलशाली होती है । इसके तो नाम से ही लोगों की कपकंपी छूटती है । यह जब किसी के लग जाती है तो उसका पीछा आसानी से नहीं छोड़ती । ऐसी डाकिन लगी महिलाएं भी अकाल मृत्यु को प्राप्त हुई देखी सुनी गई है । ये समय-असमय उन महिलाओं के शरीर में प्रवेश कर धुनती रहती हैं और नाना वस्तुओ की फरमाइश करती रहती हैं । प्रेतात्माओं की तरह इनका असर बना रहता है और ये बिगाड़ ही बिगाड़ करती पाई जाती हैं । बच्चों व जानवरों का जीव लेना तो इनके बायें हाथ का खेल होता है ।

डायन की अपनी सवारी है । रात को जब सारा जहान सोया रहता है तब यह जागृत होती है । इसका देवता महाबली हनुमान है । उसी के सम्मुख यह अपनी विद्या साधती है और हर मंगलवार को अर्द्धरात्रि के समय हनुमान मंदिर जाकर उसे कारगर रखने और बचाव करने का बल अथवा कल प्राप्त करती है । वहीं मंत्रों का उच्चारण कर सवारी को बुलाती है । यह सवारी प्राय. मगर होता है । रीछ भी होता है ।

सवारी के हाजिर होने पर अपने सारे कपड़े उतार कर वहा रख देती हैं और नग्न सवार होकर अपने शिकार की टोह में निकल पडती हैं । ऐसे समय जो इसे देखले अथवा इसकी निगाह जिस पर पड जाय, उसका अनिष्ट हुए बिना नहीं रहता । मंदिर से इसके प्रस्थान करने के बाद यदि कोई उसके कपडों को चुराने का उपक्रम करता है तो तत्काल उसकी सवारी मंदिर की ओर मुडकर कपड़ो की पहले सुरक्षा करती है ।

एक डायन यदि किसी दूसरी महिला को डायन बनाना चाहती है तो उसमें मंत्र

शक्ति (डा डी डच्च) का प्रवेश कराती है। यह प्रवेश या तो अपने झूठे खाने के माध्यम से या फिर बातों के माध्यम से कराया जाता है। मंत्र सिद्ध कर अपने द्वारा खाये हुए खाने का कुछ भाग खिला देने से उसके शरीर में उस मंत्र का प्रवेश हुआ मान लिया जाता है। बातचीत में किसी तरह की बात सुनाकर एक अन्य महिला से उसकी हामी भराई जाती है और इस माध्यम से अपना मंत्र प्रवेश कराया जाता है।

मंत्र की यह शक्ति वीर कहलाती है। जब वीर उसमें प्रवेश कर जाते हैं तब वह महिला भी डायन बन जाती है पर यह काम नितांत गुपचुप और गोपनीय ढंग से ही किया जाता है। ये वीर हनुमानजी की साधना करने पर ही हाथ लगते हैं।

डाकन की साधना और उसके सारे क्रियाकलाप अहित करने की साधना है। कुफल देने की साधना है। किसी से ईर्ष्या करने, द्वेष करने और कष्टों में उसे प्रताडित करने, बदला लेने, परेशान करने और घोर विपत्ति में डालने की साधना है। जिस घर में किसी महिला को डायन लगी होती है, उस घर का कोई सदस्य अमन चैन से नहीं रह सकता।

डायन जब किसी का बिगाड करने का मंत्रोच्चार करती है तो अपने घर ही रहती है और उस समय वह अकेली ही होती है। इस समय वह बड़ी विकृत स्थिति लिये होती है। उसके मुंह से लार गिरती रहती है और चेहरा भी बदसूरत लिये होता है। आंखे लाल पीली तमतमाहट देती है। ऐसे वक्त यदि किसी परिवारजन की निगाह भी उस पर पड जाती है तो वह कष्ट पाये बिना नही रहता।

डाकन, मैली और स्यारी केवल जीवित महिलाए ही होती हैं, हो सकती हैं और इनके सारे खेल भी महिलाओं पर ही होते हैं। उन्ही पर ये अपनी विघ्नदायिनी शक्तियां का प्रहार करती हैं। ये अपना तनिक भी कोई नुकसान नहीं करती हैं।

स्यारी किसी महिला का झूठन नही खाती। वह किसी के साथ बैठकर खाना भी नहीं खाती। किसी का झूठन खाने से उसकी विद्या भ्रष्ट हो जाती है जबकि डायन पर इस खाने का कोई असर नहीं होता। हां, यदि इस झूठन की बजाय कोई यदि उसी का मल उसे खिलादे तो उसकी यह विद्या निष्फल हो जायेगी और फिर वह इसे नहीं साध सकेगी।

समाज में क्या, अपने परिवार और जात बिरादरी में भी ऐसी औरतों की कोई कद्र नही करता। ऐसे घरो मे लोग न तो अपनी बेटी ही देना पसन्द करते है न बहू लाना ही चाहते है।

कई बार ऐसी महिलाए अपनी हरकतों का बढा देती हैं और गांववाले कई तरह

की मुश्किलों में आ जाते हैं तब सब मिल बैठकर गम्भीरतापूर्वक सोचते है और जब कोई मार्ग नहीं पाते है तो उसकी हत्या तक करा देने को उद्यत हो उठते है । यह काम बहुत ही गुप्त तरीके से होता है । इसके लिए मौके की तलाश देखी जाती है और निर्जन स्थान में या किसी की अनदेखी में यह काम तमाम कर दिया जाता है ताकि न रहे बांस न बजे बासुरी ।

लेकिन मान्यता यह है कि ऐसी महिला का गला घोंटने से ही निस्तारा नही मिलता । जब तक उसकी बोटी-बोटी अलग नहीं की जाती तब तक जडमूल से उसका खात्मा हुआ नहीं समझा जाता । इसलिए कुल्हाडी, फरसे या किसी तेज धारदार हथियार से उसके टुकड़े-टुकड़े कर देने की घटनायें भी सुनने को मिली ।

ऐसी घटना का कोई विरोध नहीं करता । इसके साथ हर व्यक्ति की आत्मस्वीकृति स्वतः ही होती है कारण कि उस महिला के रहते किसी को भी कभी भी कोई भी आफत घेर सकती है अतः उसका खात्मा पाकर और तो और स्वयं उसके परिजन भी चैन की सांस लेते हैं ।

वीरों की छानबीन में पता लगा कि इन अनिष्टकारी वीरो की संख्या भी 52 वीरों से कम नहीं है । यहां तो जो वीर जिस तरह का कष्ट दे, उसी नाम से वह पहचान देता दिखाई देता है । यथा जिस पीड़ा से शरीर दिन-प्रतिदिन गलता जाये, वह गलन्या वीर का दिया हुआ दुःख कहलाता है । जिससे शरीर बुरी तरह जलता रहे वह जलन्या वीर की पीड़ा समझ ली जाती है ।

इसी प्रकार धूजणी (कपकंपी) देने वाला धूजण्या वीर, कोढ से चाठे देने वाला कोढ्या वीर, आंखों में फूला देने वाला फूल्या वीर, दरबट देनेवाला दरबट्या वीर कहलाता है ।

इन बीमारियों का शमन करने के लिए अस्पताल का इलाज कारगर नहीं होता । अड़क इलाज ही ठीक बैठता है । गांवो में यों भी अस्पताल नहीं होते । यदि डाक्टर और अस्पताल उपलब्ध भी हो तब भी आदिवासी सबसे पहले लोक देवी-देवता की शरण पकड़ेगा । इन देवताओं के प्रति उसकी गहरी आस्था लगी रहती है और चूकि ऐसे दुःख भी आप उपन्ये नहीं होकर नुगरी शक्तियों के रावे हुए होते है तो वे देवता की कृपा से दुरस्त हुए भी लगते हैं ।

इसके लिए देवी-देवता को प्रसन्न करना आवश्यक होता है । रोगी के तदुरस्त हो जाने पर देवता को प्रसाद, नारेल, छत्तर, बलि आदि चढाने की बोलमा बोली जाती है किन्तु जब इसे पूरी करने में कोई चूक, भाग या भूल हो जाती है तो देवता उस रोगी की तत्काल खबर लेता दिखाई देता है । ऐसी स्थिति में वह पुनः उस रोगी में उस रोग को या किसी अन्य उससे भी भयंकर बीमारी का प्रवेश करा देता है ।

ऐसा होने पर कुछ लोगों को तो देवता की इस अपमान का पता चल जाता है और वे अपनी भूल सुधारने पाये जाते हैं पर जिन्हें पता नहीं चल पाता है वे फिर देवता की शरण पकड जब इस विपत्ति का जोरदार उलाहना देते है तब भोपे के माध्यम से देवता पहले की गई मनौती-शर्त की याद दिलाता है । इस पर रोगी के परिजन अपनी भूल स्वीकार कर मानना पूरी करते है पर कई बार देवता जब कड़ा हो जाता है तो सहज रूप मे अपनी दी हुई बीमारी नहीं समेटता है ऐसी स्थिति मे उसकी बड़ी आरजू और मिन्नतें करनी होती है । अन्य वहा उपस्थित लोग भी अपनी ओर से माफी मांगकर भूल का प्रायश्चित करने कराने की अरदास करते है तब ही जाकर स्थिति अनुकूल हो पाती है ।

ऐसी ही घटना एकबार मेरे देखने में आई जब एक देवरे में रोगी को रोगमुक्त कर दिया पर वह वायदे के अनुसार देवता की भेंट-भेंटावण करना भूल गया तब देवता उस पर गुस्सा हुआ और पहले से अधिक पीड़ित कर दिया । बाद में ब्याज सहित दुगुनी भेंट चढाने पर ही देवता मना और रोग से पिंड छुड़ा ।

मनोती पूरने के प्रसंग के भी इन आदिवासियों में कई कथा-किस्से सुनने को मिलते हैं । आदिवासियों के साथ रहते-रहते उनका बोरा बनिया बीमार हो गया । देवता ने उसे बलि में पाडा चढाने को कहा । बनिया चूंकि बनिया था । उस गांव में वह कमाने को बैठा था, खोने को नहीं फिर वह जैन था सो जीव-हिंसा उसके लिए वर्जित थी । बनिया सोचता रहा कि कोई ऐसी तरकीब निकाली जाए जिससे सांप भी मर जाय और लाठी भी नही टूटने पाये ।

तब उसने घासफूस का एक पाडा बनवाया और देवरे के वहां ले गया । भोपे से अरदास की कि पाडा हाजिर है । देवता को क्रोध आया कि बनिये ने आखिर समझ क्या रखा है । जो देवता पाडे के खून की धार का प्यासा है वह इस घास के पाड़े से क्या लेगा । लेकिन बनिये को एक सबक और देवता को अपनी प्रतिष्ठा देनी थी । उसी वक्त भोपा अपने हाथ में तलवार लिये उठा । जो पाडा घासफूस का खड़ा किया था वह असली पाडे में परिवर्तित हो गया । देवता न उसका लौह किया । देवरे में उपस्थित सारे जातरी देवता की जै जैकार करने लगे जिससे पूरा वनखड गूंज उठा लेकिन दूसरे ही क्षण उसी तलवार से उस देवता ने बनिये का काम भी तमाम कर दिया ।

एक और घटना में बनिये का ही उल्लेख मिलता है जिसमें, एक बनिया मनौती पूरने के प्रसग मे आटे का एक बड़ा सा पाडा बनवाता है और उसमें खून के प्रतीक के रूप में गुड का पानी उसमे खून के प्रतीक उसके पेट वाले हिस्से में रखवा देता है ताकि उसका वध करते समय खून के रूप में वह पानी छलक पड़े

मेरे अपने ही गाव कानोड के दक-परिवार में मैने काचरी-डोचरे का पाडा बनता देखा । इस पाडे के पाव की जगह चार बांस दियासलाई की सीके लगा दी जाती हैं । एक सीक पूंछ की जगह लगाई जाती है । इसके बाद चाकू छुरी से उसको काटकर आपस मे खा लिया जाता है । पूछने पर वह परिवार उसके पीछे की कोई घटना या कि इतिहास नही बता पाया । कहने को यही कहा कि बापदादे करते आये सो हम भी कर रहे हैं ।

इस क्षेत्र मे देव-देवियों के मन्दिरों देवरो का अध्ययन भी कई रहस्यों तथा इतिहास के बन्द पन्नों को खोलने वाला है । भीडर के पास जगल में बरेकणमाता का प्रसिद्ध स्थान है । इसे देखने पर लगता है कभी यहां बडा भव्य जैन मन्दिर रहा होगा पर कब कैसे यहा जैन प्रतिमा की बजाय लोकदेवी की अनगड़ प्रतिमा स्थापित हो गई, यह गहन अध्ययन का विषय है ।

लोक मे जो पूछना मैने की उससे तो यही कहा गया कि किसी समय यहां गूजरो की भैसें चर रही थी । उनमें एक पाडा भी था । एक दिन एक बुढ़िया वहां चलकर आई और उसने ग्वाले-गूजर से कहा कि मैं बहुत थकी हुई हूं, मुझे इस पाडे पर बिठाकर मदिर-दर्शन करा दो । गूजर कुछ कहे, उससे पूर्व ही बुढिया पाडे पर सवार हो गई और पाडा स्वत ही मदिर की ओर चल पड़ा । कहते हैं उसके बाद न तो वह बुढिया वहा दिखाई दी और न वह पाडा ही । लोगो ने कहा कि वह देवी थी जो यहां आकर स्थापित हो गई ।

पाडे को लेकर लोक जीवन मे कई कथा-आख्यान और टोटके-अनुष्ठान है जो बडे ही दिलचस्प है । पशुओं में कोई बीमारी नही आने पाये, इसके लिए भाद्र माह में किसी ऐसे संकरे रास्ते में पाडा मारकर डाल दिया जाता है जहां से पशुओ का निकास होता हो । तब पशु उसे लांगकर (कूदकर) निकलेगा । इससे यह मान लिया जाता है कि पूरे वर्ष पशु चंगा बना रहेगा ।

ताणे के पास ही पहाडी पर नवरात्रा में देवी को पाडे का भोग दिया जाता है तब उसका लौहकर पहाडी से नीचे की ओर गुडकाया जाता है । पाडा जिस दिशा की ओर जिस हालचाल मे गुडकाया है, उसी के अनुसार लोग आने वाले काल (समय) का अदाजा लगा लेते हैं और तदनुसार अपने गृहस्थ जीवन को संभाले रहते है ।



[illegible] आज के [illegible] [illegible] अपनी खून [illegible] आने [illegible] जाती रही है। [illegible] खून का प्रायश्चित्त [illegible] अनुभूत [illegible] है।

[illegible] देवता [illegible] [illegible] खून [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] खून [illegible] बलिया [illegible] लाठी भी नहीं छूने पाये।

[illegible] और देवता के [illegible] आवाज [illegible] देवता [illegible] [illegible] रखा है। [illegible] खून [illegible] लेकिन बलिये को [illegible] देवता को अपनी [illegible] अपने हाथ में तलवार लिये [illegible] में परिवर्तित हो गया। [illegible] देवता की [illegible] तलवार से उस देवता ने बलिये का काम भी तमाम कर दिया।

एक और नाटक में बलिये का भी उद्दाम विस्तार है जिसमें, एक बलिया मनौती पूरने के प्रसंग में आटे का एक बकरा का खड़ा बनवाता है और उसमें खून के प्रतीक के रूप में गुड़ का पानी उसमें खून के प्रतीक उसके पेट वाले हिस्से में रखवा देता है ताकि उसका वध करते समय खून के रूप में वह पानी छलक पड़े

30

लोकदेवता सगत्जी

मेवाड - महाराणा राजसिंह (1652-1680) बड़े पराक्रमी, काव्य-रसिक और गुणीजनों के कद्रदान थे साथ ही बड़े खूंखार, क्रोधी तथा कठोर हृदय के भी थे । इनका जन्म 24 सितम्बर 1629 को हुआ । इन्होंने कुल 51 वर्ष की उम्र पाई । इनके आश्रय में राजप्रशस्ति, राजरत्नाकर, राजविलास एवं राजप्रकाश जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे गये । राजसमद जैसी बडी कलापूर्ण एवं विशाल झील का निर्माण कराने का श्रेय भी इन्हीं महाराणा को है । इसकी पाल पर, पच्चीस शिलाओं पर राज प्रशस्ति महाकाव्य उत्कीर्ण है । 24 सर्ग तथा 1106 श्लोकों वाला यह देश का सबसे बड़ा शिलालेख है साथ ही शिलाओं पर खुदे हुए ग्रंथो में भी यह सबसे बड़ा काव्य-ग्रंथ हैं ।

महाराणा राजसिंह ने मेवाड़ पर चढ़ आई, बादशाह औरंगजेब की सेना का बड़ी बहादुरी से मुकाबला किया और उसे तितर-बितर कर बुरी तरह खदेड़ दी । इनके तीन पुत्र हुए । सबसे बडे सुल्तानसिंह, फिर सगतसिंह और सबसे छोटे सरदारसिंह । इनके कुल आठ रानियां थी । सबसे छोटी विचित्रकुंवर थी । यह बीकानेर राजपरिवार की थी ।

विचित्र कुंवर बहुत सुन्दर थी । महाराणा राजसिंह ने उनके सौंदर्य की चर्चा सुनी तो अपनी ओर से उससे विवाह का प्रस्ताव भिजवाया जो स्वीकार कर लिया गया । यह प्रस्ताव महाराणा ने तो अपने लिये भिजवाया था किन्तु बीकानेर वाले इसे कुंवर सरदारसिंह से विवाह का समझते रहे कारण कि विचित्रकुवर उम्र में बहुत छोटी थी । सरदारसिंह उससे मात्र तीन वर्ष बडे थे ।

विवाहोपरान्त विचित्रकुंवर और सरदारसिंह का सम्बन्ध माँ बेटे के रूप में प्रगाढ़ होता गया । अधिकाश समय दोनों का साथ-साथ व्यतीत होता । साथ-साथ भोजन करते, चौपड पासा खेलते और मनोविनोद करते । इससे अन्यों को ईर्ष्या होने लगी फलस्वरूप महलों में उनके खिलाफ छल प्रपंच एव धोखा षडयंत्र की सुगबुगाहट शुरु हो गई मुँह लगे लोग के कान भरने लग गये

इन मुँहलगों में उदिया भोई महाराणा का प्रमुख सेवक था। उसे रानी विचित्रकुवर और राजकुमार सरदारसिंह का प्रेम फूटी ऑख भी नहीं देखा गया। वह प्रतिदिन ही उनके खिलाफ महाराणा को झूठी मूठी बाते कहकर उद्वेलित करता। कई तरह के अंट सट आरोप लगाकर उन्हें लांछित करता। यहां तक कि दोनों के बीच नाजायज सम्बन्ध जैसी बात कहने में भी उसने तनिक भी सकोच नहीं किया। इससे महाराणा को दोनों के प्रति सख्त नफरत हो गई।

एक दिन उदिया ने अवसर का लाभ उठाते हुए महाराणा से कहा कि अन्नदाता माँ-बेटे की हरकतें दिन दूनी बढती जा रही हैं। जब देखों तब हँसी ठठ्ठा करते रहते है। साथ-साथ खेलते रमते हैं। साथ-साथ भोजन करते हैं और साथ-साथ सो भी जाते हैं। यह सब राजपरिवार की मर्यादा के सर्वथा प्रतिकूल है जो असह्य है और एक दिन बदनामी का बडा कारण सिद्ध होगा।

मुँहलगे उदिया का यह कथन महाराणा राजसिंह के लिए अटूट सत्य बन गया। उन्होंने जो कुछ सुना - देखा वह उदिया के कान-ऑख से ही सुना देखा अतः मन मे बिठा लिया कि रानी और कुंवर के आपसी सम्बन्ध पवित्र नही हैं। गुस्से से भरे हुए महाराणा ने उदिया को कहा कि कुंवर को मेरे समक्ष हाजिर करो।

प्रतिदिन की तरह कुंवर ग्यारह बजे के लगभग यतिजी से तत्र विद्या सीखकर आये ही थे। फिर भोजन किया और रानी जी के कक्ष में ही सुस्ताने लगे तब दोनों को नींद आ गई। उदिया के लिए दोनों की नींद अंधे को ऑख सिद्ध हुई। वह दौड़ा-दौडा महाराणा के पास गया और अर्ज किया कि रानीजी और कुंवरजी एक ही कक्ष में सोये हुए हैं, हजूर मुलाइजा फरमा लें। उदिया महाराणा के साथ आया और रानी का वह कक्ष दिखाया जिसमें दोनों जुदा-जुदा पलग पर पोढे हुए थे।

महाराणा का शक सत्य में अटल बन चुका था। उदिया बारी-बारी से पाच बार कुवर को हजूर के समक्ष हाजिर करने भटकता रहा पर कुवर जाग नहीं पाये थे। छठी बार वह जब पुनः उस कक्ष मे पहुँचा तो पता चला कि कुवर समोर बाग हवाखोरी के लिए गये हुए हैं। उदिया भी वहीं जा पहुँचा और महाराणा का संदेश देते हुए शीघ्र ही महल पहुँचने को कहा।

कुंवर सरदारसिंह बडे उल्लसित मन से पहुँचे किन्तु महाराणा के तेवर देखते ही वे घबरा गये और कुछ समझ नहीं पाये कि उनके प्रति ऐसी नाराजगी का क्या कारण हो सकता है। महाराणा ने कुंवर की कोई कुशल क्षेम तक नहीं पूछी और न मुजरा ही झेल पाये बल्कि तत्काल ही पास मे रखी लोहे की गुर्ज का उनके सिर पर वार कर दिया एक

बार के बाद दूसरा वार और किया तथा तीसरा वार गर्दन पर करते ही सरदारसिंह बुरी तरह लडखडा गये ।

राजमहल के शभु निवास में यह घटना 4.20 पर घटी । यहा से कुंवर सीधे शिवचौक मे जा गिरे । भगदड और चीख सुनकर राजपुरोहित, कुलगुरु सत्यानन्द और उनकी पत्नी वृद्धदेवी दौडे-दौडे पहुँचे । कुवर की ऐसी दशा देख दोनों हतप्रभ हो गये । वृद्ध देवी ने अपनी गोद में कुंवर का सिर रखा और जल पिलाया । प्राण पखेरु खोते कुंवर ने कहा - मैं जा रहा हूँ । पीछे से मेरी डोली न निकाली जाय । मुझे शैय्या पर ही ले जाया जाय ।

यही हुआ । महाराणा तो चाहते भी यही थे कि उनकी दाहक्रिया भी न की जाय किन्तु कुल गुरु, और गुरु पत्नी ने सोचा कि चाहे राजपरिवार से कितना ही विरोध लेना पडे किन्तु राजकुमार की शव यात्रा तो निकाली जायगी ।

शवयात्रा आयड़ के पुलिया पर पहुँची । वहीं पुलिया के चबूतरे पर अर्थी रखी गई । इतने मे पास ही में निवास कर रहे यतिजी को किसी ने राजकुमार सरदारसिंह के नहीं रहने की सूचना दी । यतिजी को इस पर तनिक भी विश्वास नहीं हुआ कारण कि सुबह तो राजकुमार उनके पास आये ही थे ।

यह यति चन्द्रसेन था जो बड़ा पहुँचा हुआ तांत्रिक था । इसके चमत्कार के कई किस्से जनजीवन मे आज भी सुनने को मिलते हैं । राजकुमार भी इनसे कई प्रकार की तंत्र विद्या में पारगत हो गये थे । यहां तक कि उन्होंने स्वंयमेव उड़ान भरने की कला में महारत हासिल करली थी । दौडे-दौडे यतिजी वहां आये । कुंवर को अपने तंत्र बल से जीवित किया । दोनों कुछ देर चौपड पासा खेले । उसके बाद यतिजी बोले - अब अर्थी वर्थी छोड़ो और पूर्ववत हो जाओ । इस पर राजकुमार बोले - 'नहीं' जिस दुर्गति से मैं मृत्यु को प्राप्त हुआ, अब जीना व्यर्थ है । इस पर यति ने पानी के छींटे दिये और कुवर को मृत किया । आमड की महासतियां जी में राजकुमार का दाह सस्कार किया गया । कहते हैं इस घटना से राजपुरोहित दपति का मन ग्लानि से भर गया और जीवित रहने की बजाय दोनों ही कुवर की चिता मे कूद पडे ।

उधर जब राजकुमार सरदारसिंह के निधन के समाचार बीकानेर की रानी विचित्रकुंवर को मिले तो वह अपने हाथ में सत का नारियल लेकर सती हो गई ।

महाराणा राजसिंह के सबसे बडे पुत्र सुलतानसिंह की भी हत्या की गई । यह हत्या सर्वऋतु विलास मे भोजन में जहर देकर की गई यद्यपि इस में की कोई भूमिका नहीं थी किन्तु उनके में होने और फिर हत्या करने वालों

बार के बाद दूसरा वार और किया तथा तीसरा वार गर्दन पर करते ही सरदारसिंह बुरी तरह लडखडा गये ।

राजमहल के शभु निवास में यह घटना 4.20 पर घटी । यहां से कुंवर सीधे शिवचोक मे जा गिरे । भगदड और चीख सुनकर राजपुरोहित, कुलगुरु सत्यानन्द और उनकी पत्नी वृद्धदेवी दौड़े-दौडे पहुँचे । कुंवर की ऐसी दशा देख दोनों हतप्रभ हो गये । वृद्ध देवी ने अपनी गोद में कुंवर का सिर रखा और जल पिलाया । प्राण पखेरु खोने कुवर ने कहा - मै जा रहा हूँ । पीछे से मेरी डोली न निकाली जाय । मुझे शैय्या पर ही ले जाया जाय ।

यही हुआ । महाराणा तो चाहते भी यही थे कि उनकी दाहक्रिया भी न की जाय किन्तु कुल गुरु, और गुरु पत्नी ने सोचा कि चाहे राजपरिवार मे कितना ही विरोध लेना पडे किन्तु राजकुमार की शव यात्रा तो निकाली जायगी ।

शवयात्रा आयड़ के पुलिया पर पहुँची । वहीं पुलिया के चबूतरे पर अर्थी रखी गई । इतने में पास ही में निवास कर रहे यतिजी को किसी ने राजकुमार सरदारसिंह के नहीं रहने की सूचना दी । यतिजी को इस पर तनिक भी विश्वास नही हुआ कारण कि सुबह तो राजकुमार उनके पास आये ही थे ।

यह यति चन्द्रसेन था जो बडा पहुँचा हुआ तात्रिक था । इसके चमत्कार के कई किस्से जनजीवन मे आज भी सुनने को मिलते हैं । राजकुमार भी इनसे कई प्रकार की तत्र विद्या में पारंगत हो गये थे । यहां तक कि उन्होंने स्वंयमेव उड़ान भरने की कला में महारत हासिल करली थी । दौडे-दौडे यतिजी वहां आये । कुंवर को अपने तंत्र बल से जीवित किया । दोनो कुछ देर चौपड़ पासा खेले । उसके बाद यतिजी बोले - अब अर्थी वर्थी छोडो और पूर्ववत हो जाओ । इस पर राजकुमार बोले - 'नहीं' जिस दुर्गति से मैं मृत्यु को प्राप्त हुआ, अब जीना व्यर्थ है । इस पर यति ने पानी के छींटे दिये और कुंवर को मृत किया । आमड की महासतियां जी में राजकुमार का दाह संस्कार किया गया । कहते हैं इस घटना से राजपुरोहित दंपति का मन ग्लानि से भर गया और जीवित रहने की बजाय दोनों ही कुवर की चिता में कूद पडे ।

उधर जब राजकुमार सरदारसिंह के निधन के समाचार बीकानेर की रानी विचित्रकुवर को मिले तो वह अपने हाथ में सत का नारियल लेकर सती हो गई ।

महाराणा राजसिंह के सबसे बड़े पुत्र सुलतानसिंह की भी हत्या की गई । यह हत्या सर्वऋतु विलास में भोजन में जहर देकर की गई यद्यपि इस में की कोई भूमिका नहीं थी किन्तु उनके में होने और फिर हत्या करने वालों

की कोई खबर खोज नही की गई अत. इसका पाप भी उन्हीं को लगा । उनके जीवनकाल मे तीसरी हत्या उनके साले अर्जुनसिंह की की गई । ये मारवाड के थे और गणगौर पर सवारी देखने उदयपुर आए हुए थे । इनकी बहिन रतनकुवर थी जो राणाजी से विवाहित थी । ये करीब 35 वर्ष के थे । जब सर्वऋतु विलास में घूम रहे थे कि सामने आता एक इत्र बेचनेवाला दिखाई दिया । वह निराशा के भाव लिए था । अर्जुनसिंह से बोला "महलों में गया किन्तु निराश ही लोटा । किसी ने मेरा इत्र नहीं लिया । लगा यहा के महाराणा या तो इत्र के शौकीन नहीं है या अच्छे इत्र की उन्हें पहचान नहीं है ।" अर्जुनसिह को यह बात अखरी । उसने इसे मेवाड राज्य का अपमान समझा । मन ही मन सोचा कि अच्छा यही हो, इसके पास जितना भी इत्र है, सबका सब खरीद लिया जाय ताकि यह समझे कि जो इत्र उसके पास है वैसा तो यहां के घोडे पसंद करते हैं ।

यह सोच अर्जुनसिंह ने उसे इत्र दिखाने को कहा । इत्रवाला इत्र दिखाता जाता और अर्जुनसिंह उसे अपने घोडे की अमाल में उड़ेलने को कहते । ऐसा करते करते अर्जुनसिंह ने सारा इत्र खरीदकर, मुँह मागी कीमत देकर मेवाड के गौरव की रक्षा की । किन्तु मुँह लगे लोगों ने इसी बात को विपरीत गति-मति से महाराणा के सामने प्रस्तुत करते हुए कहा कि अर्जुनसिंह कौन होते है जिन्होंने इस तरह का सौदा कर मेवाड की इज्जत एव आबरू को मिट्टी मे मिला दी । क्या मेवाडनाथ का खजाना खाली है जो उन्होंने अपने पैसे से इत्र खरीदकर मेवाड को नीचा दिखाया । महाराणा को यह बात बुरी तरह कचोट गई । पीछोला झील में गणगौर के दिन जब नाव की सवारी निकली तो बीच पानी मे ही शराब के साथ जहर दिलाकर महाराणा ने उनका काम तमाम कर दिया । वे चलती नाम में ही लुढक गये और उनके प्राण पखेरु उड गये । ये ही अर्जुनसिंह आगे जाकर गुलाब बाग की सुप्रसिद्ध बावडी के निकट प्रगट हुए और सगत्जी बने ।

महाराणा राजसिंह ने उपुर्यक्त तीनों हत्याओं के लिए प्रायश्चित स्वरूप राजसमद का निर्माण कराया, ब्रह्मभोज दिया तथा गोदान कराया ।

दिनांक 6 जनवरी 2002 को रात्रि मे उदयपुर की मडी की नाल में जोग पोली स्थित दाता भवन मे महत मिठ्ठालाल चित्तौड़ा के निवास पर पहली बार गादी पर सगत्जी बावजी सरदारसिंह जी के दर्शन किये । गत 40 वर्षो से, विद्यार्थीकाल से चित्तौडा जी में इन बावजी के भाव आ रहे है । इस गादी पर बावजी ने मुझे ऊपर वर्णित समग्र जानकारी से परिचित करायाऔर कहा कि जिनकी मृत्यु हत्या-प्रसंग में होती है वे व्यंतरवासी देव बनते हैं । उनकी रूह भटकती रहती है किन्तु सम्मानपूर्ण स्थान (आसन) मिलने पर वे शान्त हो जाते है और उनकी आत्मा मानव कल्याण में लग जाती है ।

उदयपुर में सर्वऋतु विलास में जहां सुल्तान सिंह जी को जहर दिया गया वहां सगत्जी के रूप में उनकी प्रतिष्ठा की हुई है । ये सारे सगत्जी के स्वरूप मेवाड़ राजघराने से सम्बन्धित है । आजादी के बाद ये सगत्जी लोकजीवन में लोकदेवता के रूप में अधिक मान्य हुए । इनकी यह लोक प्रसिद्धि शनैः शनैः ग्रामीण क्षेत्रों मे भी बढ़ रही है । महत मिट्ठालाल के दाता भवन में, एक अलग कक्ष में सरदारसिंह जी का सगत्जी के रूप में देव स्थान है । सभी सगत्जी स्थलों पर हर शुक्रवार को चौकी लगती है । सगत्जी के भाव आते हैं जहा जनता जनार्दन की सभी प्रकार की समस्याओं का निराकरण होता है और दुःख दर्दो से मुक्ति मिलती है ।

महाराणा के मझोले पुत्र सगतसिंह की हत्या बदले की भावना से की गई । अर्जुनसिंह के पुत्रों ने यह हत्या घाणेराव सादड़ी में बर्छी के वार से की । वे उदयपुर आये और कुंवर सगतसिंह को बहला फुसला कर ले गये । कुंवर यह समझा कि मामेरे उन्हें लाड प्यार से ले जाया जा रहा है । सादडी में जहां उनकी हत्या की गई वहां छतरी बनी हुई है । बीकानेर में विचित्रकुंवर की स्मृति में भी छतरी बनी हुई है । उदयपुर में यतिजी की याद में आयड़ में और महासतियां जी मे सुलतानसिंह सगतसिंह और सरदारसिंह की छतरियां उनकी स्मृति शेष को जीवंत किये हुए हैं ।

शौर्य एव शक्ति से जीवंत प्रतीक होने के कारण ही इनका सगत नाम पड़ा । सगत का अर्थ शक्ति से है । आदरसूचक 'जी' लगाने के कारण ही इन्हें सगत्जी कहा जाने लगा ।







डॉ महेन्द्र भानावत

जन्म - कानोड़ जिला उदयपुर 13 नवम

शिक्षा - एम ए (हिन्दी),पीएच
विश्वविद्यालय, 1967 ।

प्रकाशित पुस्तकें - हिन्दी, राजस्थानी
बाल साहित्य विषयक पचास से अधिक पुर

लेखन-प्रकाशन - देश-विदेश की 350
पत्रिकाओ में 8 हजार से अधिक रचनाओं :

पत्र-पत्रिका सम्पादन - शोध पत्रिका ल
दिग्दर्शन पीछोला रगायन सुलगते प्रश्न
सम्पादन ।

स्तभ लेखन - जय राजस्थान, जलते दीप
ससार मनु टाइम्स तथा सुमन लिपि ।

सर्वेक्षण अनुसधान - राजस्थान गुज
महाराष्ट्र उत्तरप्रदेश, मणिपुर के लोक सा
परिवेश का ।

सदस्य मनोनयन - राज्य सरकार द्वा
सास्कृतिक केन्द्र, जवाहर कला केन्द्र रा
अकादमी, राजस्थान सगीत नाटक अकादमी
साहित्य सस्कृति अकादमी में ।

पुरस्कृत कृतिया - उत्तर प्रदेश हिन्दी स
राचणी राजस्थान के थापे अजूबा राजस्थान
औरत काव्य कृति पर मुबई की राज
एसोसिएशन द्वारा भारतीय भाषाओं मे श्रेष्ठ

विशिष्ट सम्मान - सृजन मच बड़ी तथा लो
सस्थान चुरू द्वारा स्वर्ण पदक । महाराणा मे
द्वारा महाराणा सज्जनसिंह पुरस्कार । वि
पत्रकारिता पुरस्कार । हिन्दी साहित्य सम्मे
साहित्य वारिधि सम्मानोपाधि ।

सेवा कार्य - उदयपुर के भारतीय लोक
निदेशक पद से सेवानिवृत्त 1995 में ।

सम्प्रति - स्वतत्र लेखन ।

निवास-352, श्रीकृष्णपुरा, सेंटपाल स्कूल
फोन (0294) 412174 (R) 521
E-mail m